भारत में रेलपथ।

लेखक

रामनिवास पोद्दार

(रामगढ़—सीकर)

परस्य बाह्य कर्माणि दृष्ट्वा मुह्यति यो नरः।
नाभ्यन्तर गुणान्वेषी सोऽत्रैव मूर्ख उच्यते॥

It is better to follow the real truth of things than an imaginary view of them.—Machiavelli.

वस्तु विशेष के अंतरंग के समीक्षण, गवेषण और विश्लेषण बिना ही उसके बहिरंग की मृगमरीचिका पर मोहित होना कदापि श्रेयस्कर नहीं।

सम्वत् १९८१ मू० २।)

Published by Pandit Baluram Sharma and Printed by Pandit Jiwaram Paliwal at the Adarsh Press, Agra.

पता—

आदर्श पुस्तकालय, चौक, आगरा।

दो शब्द ।

लेखक का अनुरोध है कि मैं इस पुस्तक के लिए दो शब्द लिख दूँ। मैं सहर्ष उनके इस अनुरोध का पालन करता हूं। हिन्दी साहित्य के प्रेमियों के लिए यह अत्यन्त हर्ष की बात है कि अब हिन्दी में ऐसे विषयों पर भी पुस्तकें लिखी जाने लगीं, और इन विषयों पर व्यवसायी समाज के उत्साही सदस्य लेखनी उठाने लगे। पोद्दार-परिवार हिन्दी-साहित्य की सेवा के लिए प्रसिद्ध है। श्रीयुत कन्हैयालालजी पोद्दार की रचना "अलङ्कार प्रकाश" और "हिन्दी मेघदूत विमर्श" आदि हिन्दी-साहित्य में अपना विशेष स्थान रखती है। उन्हींके सुपुत्र श्रीयुत रामनिवास पोद्दार की यह कृति उनकी वंश परम्परा के सर्वथा अनुकूल है। प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने भारतीय रेलों के सम्बन्ध में भारतवासियों के हृद्‌गत विचारों को प्रकट किया है। भारतीय रेलों के सम्बन्ध में भारतवासियों को बहुत सी शिकायतें हैं। राजनैतिक और आर्थिक परिषदों, समाचार-पत्रों तथा बड़ी व्यवस्थापिका सभा में ये शिकायतें बहुधा जनता और सरकार के सामने रक्खी जातीं हैं परन्तु अभी तक इन शिकायतों को दूर करने का कोई उल्लेखयोग्य प्रयत्न नहीं किया गया। ऐसी

अवस्था में यह बिल्कुल स्वाभाविक है कि भारतीय रेलों के सम्बन्ध में भारतवासियों का हृदय पक गया है। वह पका हुआ हृदय इन रेलों के सम्बन्ध में क्या सोचता है यही लेखक ने इस पुस्तक में व्यक्त किया है। अतः विषय की महत्ता और पुस्तक की उपयोगिता स्वयं-स्पष्ट है। हिन्दी में इस विषय पर यह पहली पुस्तक है। मुझे पूर्ण आशा है कि इस पुस्तक का समुचित स्वागत होगा और लेखक के प्रथम प्रयास का ध्यान रखकर विज्ञ समालोचक भाषा और शैली सम्बन्धी त्रुटियों को क्षम्य समझेंगे।

सोमवती अमावस्या,
फाल्गुन, विक्रम संवत् १९८१
आगरा।

श्रीकृष्णदत्त पालीवाल
साहित्यरत्न
एम० ए०, एम०एल० सी०

विषय सूची

एक आवश्यक सूचना।

इस पुस्तक में जिन जिन पुस्तकों और रिपोर्टों आदि के प्रमाण, निर्देश और अवतरण आदि दिये गये हैं, उनमें अधिकतर का तो पूरा नाम ही लिख दिया गया है; पर जिनका अनेक बार उल्लेख करना पड़ा है, उनके संक्षिप्त नाम का ही, सुविधा के लिये, उपयोग किया है। परन्तु जिनके लिये संक्षिप्त नाम का उपयोग किया है उनका पूरा परिचय परिशिष्ट में दे दिया गया है।

श्रीहरिः

प्रस्तावना।

यों तो विगत शताब्दी में विज्ञान-प्रसूत अनेकानेक आश्चर्यान्वित आविष्कार हुए किन्तु उन सब में रेलवे का उद्भव सर्वोपरि माना जाता है —Raper: Railway Transportation p. I. । वास्तव में रेलवे देश की समुन्नति और समुत्थान का एक महत्वपूर्ण साधन है। आधुनिक उन्नतिशाली देशों के विकास, उनके औद्योगिक अभ्युदय और साम्पत्तिक समुत्कर्ष में रेलों ने अनिर्वचनीय सहायता दी हैं। "रेलवे-आविष्कार के कारण पाश्चात्य देशों में सुख-समृद्धि की जो अभिवृद्धि हुई है, वह वस्तुतः विस्मयात्मक है—Macgeorge: Ways & Works p. 220." । यदि यह कहा जाय कि आधुनिक सभ्यताभिमानी ज़ातियों की ऊर्जितावस्था का अधिकतर श्रेय रेलवे को ही है तो कोई अत्युक्ति नहीं । रेलें देश का सर्वनाश भी कर सकती हैं। इसीलिये रेलवे के सम्बन्ध में कहा है कि "Irresponsible tyranny of blooted monopolists." । बात यह है कि यदि रेलों का दुरुपयोग किया जाय तो देश का अधःपतन भी अवश्यम्भावी है। इसके प्रत्यक्ष प्रमाण में हमारे यहाँ की रेलों के भीषण दुष्परिणाम हमारे सम्मुख हैं।

यहाँ विपरीत परिणाम होने का कोई आश्चर्य नहीं, क्योंकि गुण-दोष प्रायः संसर्ग से होते हैं—संसर्गजा दोषगुणाः भवन्ति –दण्डी। अतएव रेलवे के गुण-दोषों को भी संसर्गोत्पन्न समझना चाहिये। अर्थात्—

सुस्वादुतोयाः प्रभवन्ति नद्यः समुद्रमासाद्य भवंत्यपेयाः

जैसे नदियों का जल स्वादिष्ट है पर समुद्र के संसर्ग से अपेय—खारी—हो जाता है, उसी प्रकार यद्यपि रेलवे के अनेक अनिर्वचनीय अलभ्य लाभ हैं परन्तु विदेशी सरकार (Alien Government) के सम्पर्क से वे सारे लाभ हानि के रूप में परिवर्तित हो गये। अथवा यों कह सकते हैं कि भारत के दासत्व-शृङ्खला-बद्ध होने के कारण भारत निःशक्त हो रहा है अतः—

वनानि दहतो वन्हेः सखा भवति मारुतः
स एव दीप नाशाय कृशे कस्यास्ति सौहृदम्।

जैसे प्रबल वनाग्नि का तो पवन सहायक हो जाता है—उसे अधिकाधिक प्रज्वलित करता है, परन्तु वही पवन निर्बल दीपाग्निको—दीपक को—नाश करदेता है। अर्थात् 'निर्बल का कोई सहायक नहीं'—दैवोपि दुर्बल घातकः—इस किंवदन्ती के अनुसार रेलों ने भी भारत की उतनी सहायता नहीं की जितना उसकी निर्बलता के कारण उसका नाश किया।

निष्कर्ष यह है कि एक देश के उत्थान और पतन में रेलवे का स्थान बहुत उच्च है। अमेरिका आदि आधुनिक सुसम्पन्न और सुसभ्य देशों में भी रेलवे की समस्या एक जीवन-मरण का प्रश्न (A question of Life and Death) समझाजाता है। अतएव रेलवे का विषय देशहितैषी पुरुषों के लिये आलोच्य और विवेचनीय है। "रेलवे से हमारा इतना सम्बन्ध हो गया है कि हमारे लिये यह परमावश्यक है कि रेलवे द्वारा जो आर्थिक, सामाजिक, नैतिक और राजनैतिक प्रभाव और परिणाम उत्पन्न हुए हैं उनका सदैव ध्यानपूर्वक विचार करते रहें—Meyer; Ry. Legislation, p. 3." किन्तु दुःख है कि हमारे यहाँ इस विषय की चिन्तनीय उपेक्षा की गई है। यद्यपि राजनैतिक विषयों की चर्चा चिरकाल से चलरही है

किन्तु भारत की आर्थिक अवनति की ओर लोगों का ध्यान बहुत कम रहा है। भारतीय अर्थ-शास्त्र (Indian Economics) के जन्मदाता स्वर्गीय महादेव गोविन्द रानाडे का कहना है कि "साधारणतः लोगों का ध्यान विदेशीय आर्थिक-आधिपत्य की अपेक्षा राजनैतिक आधिपत्य की ओर अधिकतर आकर्षित होता है। वास्तव में आर्थिक आधिपत्य का इतना गहरा प्रभाव पड़ता है कि देश के प्रत्येक अवयव और कार्य शक्तियां, जिनपर देशका जीवन अवलम्बित है, अत्यन्त शिथिल होजाती हैं।" श्रीयुत रानाडे के शब्द अक्षरशः सत्य हैं। वस्तुतः आर्थिक बन्धन सबसे अधिक निकृष्ट है,—The economic bondage is the worst of all bondages.—Political Future of India, p. 136. । लार्ड मोर्ले ने एक बार कहा था कि 'If Government meddle wrongly with economic things then it goes to the very life, to the heart, to the core of national existance.—*The* Case for Indian Home *Rule*. p. 25. अर्थात् जब शासक देशकी आर्थिक बातों में अनुचित हस्तक्षेप करते हैं तब देश के जीवन पर कुठाराघात होता है।'

पहले भी कई शताब्दियों तक यहाँ विदेशियों का शासन था। किन्तु उनका केवल राजनैतिक ही प्रभुत्व था। उन्होंने आर्थिक आधिपत्य के लिये कभी स्वप्न में भी प्रयास नहीं किया। यही कारण था कि अंग्रेजों के पूर्ववर्ती विदेशी शासकों द्वारा अतुल धन विदेशों को चले जाने पर भी भारत की वर्तमान दुर्व्यवस्था नहीं हुई। न यहां के उद्योग-धन्धे, कला-कौशल, शिल्पचातुरी आदि ही क्रूर परचक्रों के शताब्दियों के गहन गर्त में विलुप्त हुए। और न उनके राजत्व-काल में ही भारत ने दुःख-दारिद्र्य का स्वप्न तक देखा। प्रत्युत: यहाँ के वाणिज्य-व्यवसाय का अभ्युदय हुआ और सम्पत्ति का

अभिवर्धन, क्योंकि "व्यापारे वसते लक्ष्मी"। १९१८ के सरकारी कमीशन का कहना है कि 'वह पश्चिमीय यूरुप जो आधुनिक औद्योगिक विकास का जन्म-स्थान है, जब जंगली जातियों का निवासस्थान था, उस समय तो भारत अपनी सुख, सम्पत्ति और कला-कौशल के लिये प्रख्यात था ही; किन्तु ईसा की १५वीं शताब्दी में, जब कि गोरे व्यापारी भारत में आये, उस समय भी भारत किसी भी समुन्नत यूरोपीय जाति से किसी भी अंश में दीन-हीन नहीं था' Industrial Com. Report, para. 1। इन बातों से स्पष्ट है कि अंग्रेजों के पूर्ववर्ती विदेशी शासकों का आर्थिक आधिपत्य न होने से उनके शासन-काल में भारत का अधःपतन नहीं हुआ, पर वह अन्य देशों से बहुत कुछ बढ़ा चढ़ा था। यहाँ के शासन की डोर ईस्ट-इण्डिया-कम्पनी के हाथ में आने पर उसने केवल राजनैतिक प्रभुत्व ही नहीं, आर्थिक आधिपत्य भी स्थापन करने का भरसक प्रयत्न किया और उसे येन केन प्रकारेण स्थापित भी किया—England holds not only the government, but virtually the commerce, the finance, and the industries of India—Digby, p. 169। इसी कारण भारत की वर्तमान शासन-प्रणाली को—The most extraordinary and fortuitous system of foreign domination known in the History of man.—Hyndman: Asia, p. 211. × × × The most colossal missionary undertaking in the History.—Cross: Self-Govt. in India, p. 2.—मानव जाति के इतिहास में अतीव असाधारण और अचिन्तनीय बताया जाता है।

उक्त आर्थिक आधिपत्य को स्थापन करने के लिये कम्पनी ने जो जो अमानुषिक अत्याचार किये उनका उल्लेख करने की कोई आवश्यकता नहीं। इतना लिखना ही

पर्याप्त है कि जिस समय आधुनिक सुसमृद्ध देश असभ्यता और अज्ञान की प्रगाढ़ अन्धकारमयी गोद में अत्यधिक दीन-हीन दशा में पड़े हुए बिलख रहे थे, उस समय प्रकृति सुन्दरी का ललित ललाम लीलाधाम भारत का सौभाग्य-सूर्य अपनी मनोरञ्जनी और विमलानन्ददायिनी शोभा और प्रखर किरण-कान्ति से दिग्दिगान्तरों को देदीप्यमान कर रहा था। जहाँ—

प्रहृष्टो मुदितो लोकस्तुष्टः पुष्टः सुधार्मिकः
निरामयो ह्यरोगश्च दुर्भिक्षभय वर्जितः
नगराणि च राष्ट्राणि धन धान्य युतानि च। वा० रामायण

और जिस भारत की विजय वैजयन्ती समस्त संसार में सुख, समृद्धि और स्वतंत्रता का उद्घोष करती हुई फहरा रही थी उस उन्नति के गगनभेदी उत्तुङ्गशिखरस्थ भारत का विशाल वैभव और अलौकिक प्रतिभा-प्रभा आज कहाँ है? यह कहते हुए हृदय शतधा विदीर्ण होता है कि कम्पनी की और तत्पश्चात् इंगलैंड-सरकार British Government की स्वार्थ-सलिल-सिंचित अर्थनीति [Fiscal *Policy*] के कारण आज वह सारी सुख-समृद्धि स्वप्न की सम्पत्ति के समान होगई! भारत धन-हीन और वैभव-विहीन होकर जीर्ण-विशीर्ण होगया! किसी भी विचारशील पुरुष को यह आशंका नहीं थी कि जो ईस्ट-इंडिया कम्पनी व्यापार के लिये संघटित हुई वह कुटिल-कूटनीति से भारत की राज्याधिकारिणी बन बैठेगी और युगान्तरकारी आर्थिक परिवर्तनों द्वारा भारत को अवनति के गहरे गड्ढे में ढकेल देगी और अन्यान्य देश ऐश्वर्य मदान्ध और युद्ध-प्रियता के दर्प से उसका परिहास करने पर तुल खड़े होंगे।

भारत में रेलवे का निर्माण भी उक्त अर्थनीति का ही एक सर्वोत्तम अङ्ग है। अथवा यों समझिये कि आर्थिक आधिपत्य के

विष वृक्षके सम्वर्धन और उसके सफल करनेके हेतु ही भारत में रेलवे का निर्माण हुआ। अतः इस विष-विटप को सम्पूर्णतः पल्लवित, कुसुमित और फलप्रद करने में रेलवे ने अतुल और अनिर्वचनीय सहायता की है।

प्रख्यात दार्शनिक हर्बर्ट स्पेन्सर [Horbert Spencer] ने विज्ञान जनित उन्नति को लक्ष्य कर लिखा है कि "यह कितने आश्चर्य की बात है कि एक ओर तो वस्तुओं का उत्कर्ष होता है और दूसरी ओर उनके दोषों के सम्बन्ध में अधिकाधिक कोलाहल होने लगता है—One of the most curious is the way in which, the more things improve, the louder become the exclaimation about their badness." । हर्बर्ट साहब को शायद यह पता न था कि विज्ञानजन्य विविध आविष्कार देशों को मिट्टी में किस तरह मिला देते हैं—पाश्चात्य सभ्यताभिमानी विजातियाँ विजित देशों में विज्ञान प्रसूत नवाविष्कृत प्रयोगों द्वारा किस प्रकार सभ्यता और न्याय के नाम पर अत्याचार करती हैं। परन्तु भारत में रेलवे का निर्माण वास्तव में इसी पिछली बात का एक छोटा-सा परन्तु महत्वपूर्ण जीता जागता उदाहरण है। स्वर्गीय दादाभाई नौरोजी ने लिखा है कि "भारत के वर्तमान शासन में जो जो नये नये परिवर्तन समुन्नति और समुत्कर्ष के नाम पर किये गये, वे गोरों के उदर-पोषण के नये नये उपाय हैं; और क्रमागत ह्रास को प्राप्त भारत के शोषण की नवीन नवीन युक्तियां हैं; अथवा देश को दासता की शृंखला में चिरकाल तक आबाध्य करने की प्रक्रियाएं हैं—Poverty and Un-British Rule in India, p 195.।"

वैसे तो यहां की रेलों की कीर्ति-कथा सदैव ही होती रहती है, पर गत रेलवे-कान्फरेंस में ६-१०-१९२४ को वाइसराय

लार्ड रीडिंग ने भाषण देते हुए कहा था कि "विगत ५०--६० वर्षों में रेलवे के कारण भारतवासियों की जो सामाजिक और आर्थिक उन्नति हुई है, वह वास्तव में बहुत अधिक है। रेल वृद्धि के साथ साथ भारत में सभ्यता और सुख-समृद्धि की अभिवृद्धि हुई है। इत्यादि।" बात यह है कि यद्यपि रेलवे के कारण भारत की हृदय-विदारक दुर्दशा हुई है तथापि रेलों के यशोगान की दुंदुभियों के तुमुल निनाद और शङ्खध्वनि से हमारे कान बहरे हो रहे हैं। इसका विषाद और विस्मय क्यों? जहां अन्याय को न्याय, अमानुषिक अत्याचारों को शान्ति और सुव्यवस्था, गुलामी के पाठों को सुशिक्षा, देश-प्रेम को क्रान्ति-वाद, देशोन्नति की महत्वाकांक्षाओं को विद्रोह--कांक्षा, दुःख दारिद्र्य को सुखसम्पत्ति, रक्तशोषण क्रिया को जीवनदान, भीषण कुठाराघातको अभयदान, कारुणिक क्रन्दन को काव्य-कलाप, अकथनीय अपकर्ष को अभूतपूर्व उत्कर्ष, नाश के मार्ग को वृद्धि का स्रोत, रौरव-रुदन को आनन्दाश्रु, बीभत्स ताण्डव नृत्य को रंगमंच का आनन्दप्रद अभिनव अभिनय, अधःपतन को सभ्यता का उन्मेष, बताया जाता है, यदि वहाँ कोई भारत में रेलों के लाभों का कीर्तिगान करे तो क्या आश्चर्य? हां, स्कूल-कालेजों में कपोल-कल्पित-कालिमा-कलंकित इतिहास के रटे हुए सबक, पार्लियामेंट की छलछद्मलिप्त वक्तृताएँ, नौकरशाही का वितण्डावाद, ईसाई पादरियों की स्वार्थ प्रपूरित गप्पें, वर्तमान शासन-प्रणाली के पृष्ठ-पोषकों का वाक्छल, आदि के पर्दे उठाने से अवश्य ही रेलवे-जन्य दुष्परिणामों के दुर्लभ दृश्य का दिग्दर्शन होने लगेगा और 'गजभुक्तकपित्थवत्' उन्नति का वास्तविक रहस्य प्रकट हो जायगा।

एक अंग्रेज लेखक का कहना है कि 'भारत में अंग्रेजी शासन के समर्थक और रेलवे के गुण-गान-गायक निरन्तर

यह कहने की तो धृष्टता करते हैं कि रेलों ने भारत का असीम उपकार किया किन्तु इस कथन की पुष्टि में वे एक प्रमाण भी नहीं देते—General T. H. Fischer, R. E.,—The Imperial and Asiatic Quarterly Review, Oct. 1903.'। इस प्रकार क्या निराधार भ्रान्तियों का पोषण और वस्तु-विशेष की सुख्याति प्रसारित हो सकती है ? दादाभाई नौरोजी के शब्दों में 'जब तक केवल गति से ही पदार्थों की उत्पत्ति होने का महत्त्वपूर्ण आविष्कार विज्ञान प्रसव न करेगा (Until the great discovery is made of converting motion into matter....—Poverty and Un-British Rule in India, p. 181), अर्थात् रेलों की गति मात्र से ही धन का उद्भव न होने लगेगा तब तक वर्तमान आर्थिक परावलम्बन की दारुण दुरावस्था में रेलें हमारा कुछ भी हित नहीं कर सकतीं, क्योंकि—

आमयो येन भूतानां जायते यश्च सुव्रत
तदेव ह्यामयं द्रव्यं न पुनाति चिकित्सितम् ।

रेलवे की जिस प्राणघातक नीति के कारण वर्तमान अधोगति हुई है, उसी के द्वारा भारत का उद्धार कैसे हो सकता है? रेलों ने भारत को किस प्रकार गारत किया यह तो इस पुस्तक के गह्वर में गर्भित है । यहाँ तो यह लिखना ही यथेष्ट है कि रेलों से भारत का यत्किञ्चित भी हितसाधन नहीं हुआ । यदि विवाद के लिये यह भी मान लें कि वाहन और पर्यटन में रेलों ने कुछ सहायता पहुँचाई है तब भी रेलवे से जो जो भीषण दुष्परिणाम हुए हैं उनकी तुलना में इसके जो भ्रमपूर्ण लाभ दृष्टिगोचर हो रहे हैं, वे सर्वथा अपर्याप्त हैं; और—

अल्पस्य हेतोर्बहु हातुमिच्छन्
विचारमूढः प्रतिभासि मे त्वम् ॥

यद्यपि आर्थिक आधिपत्य के कारण और विशेषतः रेलवे के कारण भारत का अत्यधिक अनिष्ट हुआ है, तथापि इस विषय की उपेक्षा हो रही है। इसका कारण इस विषय के अध्ययन और आन्दोलन का अभाव है। अमेरिका आदि देशों में इस सम्बन्ध में बहुत कुछ अध्ययन, अध्यापन और आन्दोलन है—Acworth: Rys. and *Traders*. p. 8–9.। अतः यहाँ की जनता रेलवे की विविध समस्याओं से समुचित परिचित है। यहाँ अध्ययन न होने का कारण तो यह है कि, यहाँ अर्थ-शास्त्रीय साहित्य का अभाव है। रेलवे सम्बन्धी पुस्तक तो किसी भी देशी भाषा में नहीं है। हाँ, एक दो भारतीय रेलवे विशारदों ने अंग्रेजी भाषा में दो चार पुस्तकें लिखी हैं अवश्य, परन्तु इतने से ही क्या हो सकता है? दूसरी बात यह है कि यहाँ अर्थशास्त्रीय शिक्षा की व्यवस्था नहीं। पाश्चात्य देशों में अर्थशास्त्रीय शिक्षा द्वारा विद्यार्थियों को देश की सच्ची आर्थिक अवस्था का परिज्ञान करा कर देश की सुख-सम्पत्ति की वृद्धि के उपाय बताये जाते हैं। यहाँ के कालेजों में जो विद्यार्थी अर्थशास्त्र का अध्ययन करते हैं, उन्हें न तो अपने देश के आर्थिक अधःपतन का ही ज्ञान होता है और न उन्हें उसके उद्धार की ही कोई बात समझाई जाती है। यहाँ तो पाश्चात्य अर्थशास्त्रियों के सामान्य सिद्धान्तों से परिचित करादेना ही अर्थशास्त्रीय शिक्षा की पराकाष्ठा मानी जाती है। यहाँ के विद्यार्थियों को रेलवे के सम्बन्ध में तो कुछ भी नहीं सिखाया जाता पर अन्य देशों में रेलवे विषय का अच्छी तरह अध्यापन कराया जाता है। जैसे शिकागो-यूनीवर्सिटी *Bachelor of Transport* और Bachelor of Railway Economics की उपाधियां देती है।

अर्थशास्त्रीय बातों का आन्दोलन न होने का प्रधान कारण यह है कि यहां के सामयिक पत्र पत्रिकाएँ इस विषय की प्रायः चर्चा ही नहीं करतीं। रेलवे-विषय के लेखों का तो कहीं नाम तक नहीं! हाँ, यहाँ के अंग्रेजी भाषा के पत्रों में 'कम्पनी-संचालन' और 'सरकारी-संचालन' की समस्या के सम्बन्ध में कभी कभी भले ही कुछ लिखा हुआ दीख जाय। अमेरिका आदि देशों के मासिक पत्रों की बातें रहने दीजिये, वहाँ के दैनिक पत्रों में भी प्रति दिन एक-एक दो-दो कालमों में रेलवे सम्बन्धी विचार रहते हैं। आन्दोलन का दूसरा साधन सभा-समितियाँ हैं। यहाँ की कांग्रेस आदि राजनैतिक संस्थाओं में और अन्यान्य व्यापारिक समितियों में देश की साम्पत्तिक अवनति का कभी कोई विचार और आन्दोलन नहीं होता! न यहाँ की व्यवस्थापक सभाओं में ही देश के आर्थिक अधःपतन की आलोचना की जाती। पुरानी (१८६१, १८६९, १८९२ और १९०९ में संस्थापित) कौंसिलों में तो इन बातों का सर्वथा अभाव था ही, किन्तु नवीन सुधारों के अनुसार जो वर्तमान में हैं, उनमें भी इस ओर लोगों का ध्यान बहुत कम है। 'सरकारी-संचालन' और 'कम्पनी-संचालन' आदि रेलवे सम्बन्धी साधारण विषयों पर तो यदा कदा कुछ विवाद हो जाता है, पर रेलवे की घातक नीति और उसके भीषण दुष्परिणामों के विषय में कभी कोई आन्दोलन नहीं हुआ!

❀ ❀ ❀ ❀

हमारी सुख-समृद्धि का जहाज आज अंग्रेज सरकार British Government की अर्थनीति के उर्मिमालासमाकुल महासागर में भयंकर, जटिल और दुर्गम आवर्त में पड़ा

हुआ अजर्जरित हो निस्सहाय अवस्था में भटक रहा है। इस महा संकट से उद्धार करने के लिये जो साधारण प्रक्रियाओं का अद्यावधि प्रयोग किया गया वे सारी निष्फल सिद्ध हुईं और इस महासागर के अतल तल में विलीन हो गईं। अतएव इसके कर्णधारों को चाहिये कि वे बुद्धिमानी और सावधानी से काम लें और न्याययुक्त एवं निर्भीक मार्ग का अवलम्बन करें जिससे इसके उद्धार की मधुर ज्योत्स्ना की झलक तो दृष्टिगत हो और इसके सर्वनाश के सम्बन्ध में जो नानाप्रकार की कल्पना-तरङ्गें हृदय को विकल कर रही हैं, वे कुछ तो शान्त हों।

यहां की रेलों के अत्याचारों का दृश्य देख कर तो सहसा दार्शनिक मिल John Stuart Mill के शब्द याद आते हैं—"अपने देश का आप शासन करना तो यथार्थ है, पर एक देश का दूसरे देशवाले शासन करें यह कभी सम्भव नहीं। हां, एक देशवासी दूसरे देशवासियों को अपने स्वार्थ के लिये अपने अधिकार में रखसकते हैं। परन्तु यदि शासन का अर्थ प्रजाहित है तो दूसरे देशवासी एक देश का हित कदापि नहीं कर सकते।" क्योंकि विदेशीजन स्वेच्छाचारी होते हैं, और वे व्यवस्थापक [Legislative], शासक [Executive], और न्याय-सम्बन्धी [Judicial] शक्तियां अपने हाथ में रखते हैं। जिसका फल राजनैतिक विज्ञान के आचार्य माण्टस्क्यू Montesquieu के शब्दों में बहुत अनर्थकारी है—"व्यवस्थापक और शासक-शक्तियां जब एक हो जाती हैं तब देशकी स्वतंत्रता का नाश होना स्वाभाविक है। क्योंकि निरंकुश शासकमण्डल स्वेच्छानुसार नियम---कानून—बनाकर स्वच्छंदता से उनका प्रयोग करते हैं। जब न्याय सम्बन्धी शक्ति भी शासकों के हाथ में पड़जाती है तब तो महा भयंकर अत्याचारों का होना

अवश्यम्भावी है। जब तीनों का सम्मिश्रण हो जाता है उस अवस्था में देश का जीवन अनिवार्यतः जर्जरित हो जाता है।" विदेशी शासन के अनर्थकारी परिणामों को विचार कर ही राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन का कहना है कि 'एक देशका उसी देशके वासियों द्वारा उसी देश की हितदृष्टि से जो शासन होता है, वही एक देशका वास्तविक शासन है।' कुछ भी हो, अंग्रेज जाति उन्नतिशील और संसार की एक सर्वोपरि शक्ति-शाली जाति है। उससे सम्बन्ध होना एक गौरव की बात है। किन्तु इंगलैंड की भारत में जो शासन प्रणाली है वह निस्सन्देह स्वार्थसिंचित, अतः भारतवर्ष के लिये प्राणघातक है। इसलिये हम भारतवासी वर्तमान शासन प्रणाली का मूलोच्छेद करना चाहते हैं और औपनिवेशिक स्वराज्य से भी संतुष्ट और सुखी हो सकते हैं।

* * * *

हमारा किसी के प्रति विद्वेष और घृणा नहीं। जो कुछ लिखा है वह सद्भावनाओं से भावान्वित होकर। पर हम चाहे कितनी ही सत्य आलोचना क्यों न करें, हमारे भाव कितने ही शुद्ध क्यों न हो, पर वाइसराय की कार्यकारिणी कौंसिल के भूतपूर्व सदस्य मि० ह्विटबी के शब्दों में 'भारतवासियों द्वारा शासकों की स्वार्थपरता की बातें करना सदैव ही दोष समझा जाता है —Of course, the people of India will be wrong: they always must be wrong when they impute selfish motives to the ruling race!— Mr. Whitby Stoke's minute Dt. 13. 3. 1879. । इसका प्रतिकार क्या ?

हम इस पुस्तक को अंग्रेजी में लिखाना चाहते थे और कई प्रकरण अंग्रेजी में लिख भी डाले थे। यद्यपि अंग्रेजी में लिखने से परिश्रम कम होता और शायद लोग पुस्तक को अपनाते भी

अधिक, पर हिन्दी में इस विषय की पुस्तक का अभाव देख और हिन्दी द्वारा सर्वसाधारण की अधिक सेवा होने की आशा से हिन्दी में ही लिखना उचित समझा। यह आशङ्का अवश्य है कि हिन्दी में हलकी पुस्तकों की भरमार होने के कारण लोग शायद इसे देखे ही नहीं। यह सर्वथा सत्य है कि पुस्तक की भाषा और शैली प्रशस्त, परिष्कृत और रोचक नहीं, उसमें न ओज है, न तेज। न भाव प्राञ्जल हैं और न शब्द विन्यास ही अभिनव। किन्तु विषय न्यूतन और वस्तुतः अत्यन्त महत्वपूर्ण है। और पुस्तक में सन्निवेशित विचारों को युक्तियुक्त और प्रमाणों से परिपूर्ण करने का यथासाध्य प्रयत्न किया है। अतएव—

युक्तियुक्तमुपादेयं वचनं बालकादपि
अन्यत्तृणमिव त्याज्यं यदुक्तं पद्मयोनिना।

निरूपन-शैली आदि की हीनता उपेक्षणीय है। किन्तु इस गम्भीर विषय के परिशीलन के लिये सतत अनुरोध है।

प्रसंग आने पर रेलवे सम्बन्धी बातों के अतिरिक्त भी कई महत्वपूर्ण समस्याओं का विचार करने का लोभ हम संवरण नहीं कर सके। किन्तु उसे विषयान्तर न समझना चाहिये—प्रतिपाद्य विषय की पुष्टि के लिये ऐसा करना परमावश्यक था। प्रत्येक बात का विचार यथास्थान करने का भरसक उद्योग किया है। प्रसंगवश कहीं कहीं एक बात दुबारा भी लिखदी गई है, उसके लिये यही कहना है कि—

Once printing may not suffice,
Though printing be not in vain;
And the mem'ry failing once or twice,
May learn, if we print again.

अङ्कों [Figures] के सम्बन्ध में सरकार द्वारा प्रकाशित पुस्तकों से ही सहायता ली गई है। सरकारी अङ्क-हिसाब

Statistics निर्दोष और निष्पक्ष नहीं, अतः विश्वासजनक भी नहीं। अङ्क प्राप्त करने का और कोई साधन न होने से, इन पर ही अवलम्बित रहना पड़ता है। आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता की एक यह भी विशेषता है कि पददलित जाति का कथन प्रमाणभूत नहीं मानाजाता! अतएव जो प्रमाण दिये गये हैं, वे प्रायः सारे सरकारी रिपोर्टों और गोरे लेखकों के हैं। जिन बहुसंख्यक पुस्तकों आदि के अध्ययन, अवलोकन और सहायता से यह पुस्तक लिखी जासकी है, उनके लेखकों और प्रकाशकों के प्रति हम हृदय से कृतज्ञता प्रदर्शित करते हैं। पण्डित श्रीकृष्णदत्तजी पालीवाल साहित्यरत्न, एम० ए०, एम० एल० सी०, ने इस पुस्तक के संशोधन में जो कष्ट उठाया एतदर्थ हम आपके हृदय से आभारी हैं। हमारे अनुज भ्राता सीताराम, नारायणप्रसाद और मदनगोपाल ने इस पुस्तक के लिखने में जो सहायता दी उसका हमें गौरव है।

सर्वथा प्रतिकूल परिस्थिति में हमने इस पुस्तक को लिखने का दुस्साहस किया है, अतएव जैसी इच्छा थी वैसा हम इसे न लिख सके। दूसरे, हमारा यह प्रथम ही प्रयास है अतः इसमें अनेकानेक त्रुटियाँ रह गई हैं, जिनके लिये सहृदय पाठकों से क्षमा प्रार्थी हैं।

दृष्टं किमपि लोकेऽस्मिन्न निर्दोषं न निर्गुणम्।
आवृणुध्वमतो दोषान्विवृणुध्वं गुणान्बुधाः॥

प्रार्थी--
रामनिवास पोद्दार।

॥ श्रीहरिः ॥

भारत में रेलपथ।

पहिला प्रकरण

ऐतिहासिक विवरण और वर्तमान अवस्थिति

भूमि का आकर्षण (terrestrial attraction), उसका संघर्षण (frictional resistance) और आन्तरिक्ष प्रतिबन्धन (resistance of atmosphere) गति (movement) के अवरोधक प्रधान प्राकृतिक कारण हैं। इन बाधाओं में दो अनिवार्य हैं, अतिमानुष हैं। हां, भूमि का संघर्षण बहुत कुछ अंश में कम किया जासकता है। इस संघर्षण को कम करने के लिये ही रेलपथ का आविष्कार और आविर्भाव हुआ है। किस अंशतक रेलवे के कारण संघर्षण पर विजय प्राप्त हुई यह निश्चयात्मक नहीं कहा जा सकता; पर इतना अवश्य है कि जो एक घोड़े की शक्ति तीन फीट प्रति सैकण्ड की गति से तीन सहस्र पौंड वजन साधारण सड़क पर लेजा सकती है, वह रेलपथ पर तीस

सहस्र पौंड और जल पर दो लाख पौंड लेजा सकती है* ।

आरम्भ में लकड़ी या पत्थर का रेलपथ था। अर्थात् अधिक भार से लदी हुई घोड़ा-गाड़ियों को चलाने के लिये पत्थर या लकड़ी की रेलें (६-६ इंच चौड़े लम्बे लम्बे चपटे टुकड़े) सड़क के दोनों तरफ समानान्तर से समतल गाड़दी जाती थीं। इस रेलपथ को छोड़ कर गाड़ियों के पहिये सड़क पर इधर उधर भी हो जाते थे, अतएव १८ वीं शताब्दी के आरम्भ में लकड़ी की रेलों पर लोहे के पत्तर लगाकर उनके दोनों किनारे ऊपर को मोड़ दिये गये, जिससे पहिये रेलपथ को छोड़ कर इधर उधर न हो सकें। कुछ समय बाद रेलों को सड़क की सतह से ऊपर उठा दिया गया; रेलें लकड़ी की न लगाकर लोहे की लगाईं गईं और रेलों के किनारे न मोड़ कर पहियों के किनारे नीचे को मोड़ दिये गये अर्थात् पहियों को नालीदार (grooved wheel rim or double fringed wheel) बनाया गया—आज कल पहियों का एक ही किनारा मुड़ा रहता है। रेलों को सड़क से ऊँचा कर देने के कारण रेलपथ के लिये पृथक् सड़कें बनानी पड़ीं। १८ वीं शताब्दी में ही वाष्पशक्ति संचालित यंत्र का आविष्कार हो चुका था। पर चलयंत्र—(locomotive) रेलवे इंजिन—का आविष्कार १९ वीं शताब्दी में ही हुआ। सबसे पहले इंगलैंड में ही सन् १८२५ में इंजिन से रेलपथ पर गाड़ियां चलाई गईं और सन् १८३० में रेलवे द्वारा यात्रियों का आवागमन

* Colson's Transports and Tariffs, Ch. vi, p. 1.
Chisholme: Handbook of Commercial Geography, Introduction, xxxiv.

आरम्भ हो गया। उस समय इञ्जिन, डिब्बों और सड़क आदि में जो जो त्रुटियां थीं वे गत शताब्दी के अन्त तक समय समय पर नये नये आविष्कारों द्वारा सुधरती रहीं हैं।

यहां रेलवे बनाने के लिये १८४० में ही इङ्गलैंड में आन्दोलन आरम्भ हो गया था†। १८४४ में कुछ अंग्रेज व्यापारियों ने ईस्ट-इण्डिया-कम्पनी से प्रस्ताव किया कि 'यदि सरकार मूल धन पर तीन प्रति सैकड़ा लाभ देने की प्रतिज्ञा करे तो हम कम्पनी संगठित कर भारत में रेलवे बना सकते हैं'। कम्पनी ने इस विषय में अपने प्रतिनिधियों को लिखा‡ और एक रेलवे विशेषज्ञ को इस काम के लिये यहां भेजा। इन महाशय ने वस्तुस्थिति पर विचार कर यह अनुमति दी कि 'रेलवे के लिये संगठित होने वाली कम्पनी को भूमि मुफ़्त और मूलधन पर कुछ निश्चित लाभ दिया जाय'। कौंसिल ने भूमि मुफ़्त देना स्वीकार किया पर निश्चित लाभ देना अनुचित समझा। इस निर्णय के समय लार्ड हार्डिंज कलकत्ते में नहीं थे। लार्ड महाशय ने कलकत्ते पहुंच कर कहा कि 'एक मात्र सैनिक दृष्टि से भी रेलवे-कम्पनी को कलकत्ते से दिल्ली तक के रेलपथ के लिये पांच लाख रुपये का वार्षिक दान देना आवश्यक है। केवल भूमि ही मुफ़्त देने से क्या होगा?' इस विषय में दो तीन वर्ष तक लिखा पढ़ी होती रही। लार्ड डलहौजी यहां रेलवे

† Macgeorge: Ways and Works, p. 299

‡ *Court of Director's Despatch Dt. 7th. May 1845.*

बनाने के लिये बहुत उत्सुक थे। सन् १८४८ में जब वे गवर्नर-जनरल बनकर यहां आये, तब उन्होंने अपनी उत्कट उत्कण्ठा को सफल करने के लिये अविकल उद्योग किया। जिसका तत्काल फल यह हुआ कि १७ अगस्त १८४९ को ईस्ट-इण्डियन और ग्रेट-इंडियन-पेनिन्सुला नामक दो रेलवे-कम्पनियाँ संगठित हो गईं।

इन कम्पनियों के साथ निम्नलिखित शर्तें थीं। सरकार भूमि मुफ्त और कम्पनी के मूलधन पर ५ प्रति सैकड़ा प्रति वर्ष ब्याज देगी। इस निश्चित ब्याज को गारन्टी-इन्टरेस्ट कहते हैं। ५ प्रति सैकड़े से जितना अधिक लाभ (सर्प्लस प्रोफिट) होगा वह भी कम्पनी को दे दिया जायगा। अर्थात् रेलवे से ५ प्रति सैकड़े से कम लाभ होने पर कम्पनी को ५ प्रति सैकड़ा देने को सरकार बाध्य होगी पर इससे अधिक लाभ होने पर वह सारा भी कम्पनी को देदिया जायगा। लाभ का हिसाब ६-६ महीनों से होगा। कम्पनी को उसके लाभ के रुपये लंडन में एक रुपये की २२ पैंस के हिसाब से मिलेंगे। ९९ वर्ष बाद रेलवे-सड़क आदि अचल चीजें सरकारी सम्पत्ति होजायगी—सरकार को इनका मूल्य नहीं देना पड़ेगा। इंजिन डिब्बे आदि चल चीजों को उचित मूल्य पर सरकार खरीदने को बाध्य होगी। ९९ वर्ष पहले भी सरकार कम्पनी से रेलवे ले सकेगी, पर इस अवस्था में सरकार को कम्पनी के शेयरों का बाज़ार भाव मूल्य देना पड़ेगा। २५ वर्ष पहले किसी तरह भी सरकार रेलवे नहीं ले सकेगी। हां, कम्पनी जब कभी अपनी रेलवे सरकार को देना चाहेगी तब सरकार कम्पनी का मूलधन मात्र देकर उसे लेने को बाध्य होगी।

ये शर्तें कम्पनियों के लिये इतनी लाभप्रद थीं कि इन शर्तों पर और भी अनेक कम्पनियाँ संगठित हो गईं। १८५२ में मद्रास-रेलवे-कम्पनी, १८५५ में बोम्बे-बरोदा-सेंट्रल-इंडिया-रेलवे-कम्पनी, १८५८ में सिंध-पंजाब-देहली, ईस्टर्न-बंगाल और ग्रेट-सदर्न रेलवे कम्पनियाँ संगठित हुईं। सबसे पहले १६-४-१८५३ को ग्रेट-पेनिन्सुला-रेलवे का २० मील रेलपथ बम्बई से थाने तक तैयार हुआ था।

१८६२ में इंडियन-ब्रांचरेलवे कम्पनी नियुक्त हुई। इसे गारन्टी नहीं दी गई। सरकार ने इसे भूमि मुफ़्त और २० वर्ष तक एक सहस्र रुपये प्रतिमील प्रति वर्ष दान (Subsidy—सबसीडी) देना स्वीकार किया। १८६७ में यह कम्पनी गारन्टी कम्पनी होगई और इसका नाम अवध-रुहेलखण्ड-रेलवे-कम्पनी हो गया। १८६४ में इण्डियन ट्राम्बे कम्पनी का संगठन हुआ। यह कम्पनी गारन्टी रहित थी, पर १८७० में यह भी गारन्टी कम्पनी होगई और इसका नाम करनाटक-रेलवे-कम्पनी पड़ गया। और १८७४ में यह ग्रेट सदर्न-रेलवे कम्पनी में मिल गई। इन दोनों के समूह का नाम साउथ-इंडियन-रेलवे-कम्पनी हो गया। इस प्रकार काट छांट हो कर आठ कम्पनियाँ शेष रहीं—(१) ईस्ट इंडियन, (२) ईस्टर्न-बंगाल, (३) सिंध-पंजाब देहली, (४) अवध-रुहेलखण्ड, (५) साउथ इंडियन, (६) ग्रेट-इंडियन-पेनिन्सुला, (७) बोम्बे-बरोदा सेंट्रल इंडिया और (८) मद्रास रेलवे-कम्पनी। इन आठों कम्पनियों के रेल-पथों को क्रमशः १८७९, १८८४ १८८६, १८८९, १८९१, १९००, १९०५ और १९०८ में कम्पनियों के शेयरों का बाज़ार भाव मूल्य देकर सरकार ने खरीद लिया। खरीदने के

पश्चात् मद्रास रेलवे को दो भागों में विभक्त कर दिया। एक भाग का नाम मद्रास-एण्ड-सदर्न-मरहटा कर दिया और दूसरे को साउथ-इण्डियन रेलवे में मिला दिया। अवध-रुहेलखण्ड, ईस्टर्न बंगाल और सिंध-पंजाब-दहली रेलपथों का सरकार स्वयं संचालन करने लगी। ईस्ट इंडियन, ग्रेट-इंडियन पेनिन्सुला, बोम्बे बरोदा सेंट्रल-इंडिया, साउथ-इंडिया और मद्रास-एण्ड-सदर्न-मरहटा रेलपथों को पुरानी गारन्टी कम्पनियों को न्यूतन शर्तों पर प्रतिनिधि रूप से संचालन करने के लिये दे दिया।

सन् १८५९ में कलकत्ता एण्ड साउथ-ईस्टर्न-रेलवे-कम्पनी गारन्टी नियम पर और १८६३ में निलहट्टी-रेलवे-कम्पनी सबसीडी नियम पर संगठित हुईं। इन कम्पनियों को लाभ न होने से इन्होंने १८६८-६९ में अपने अपने रेलपथों को मूलधन लेकर सरकार को दे दिया। यद्यपि ये रेलपथ हानिकारक थे तथापि नियमानुसार सरकार लेने को बाध्य थी। सरकारी रेलपथों में ये ही सब से पहले थे। जब सरकार ने १८८४ में ईस्टर्न-बंगाल-रेलवे खरीदी तब इन्हें उसी में मिला दिया। सरकार को गारन्टी कम्पनियों से बहुत हानि हो रही थी अतएव १८६९ में सरकार ने नये रेलपथों को स्वयं बनाना और उनका स्वयं संचालन करना निश्चय किया। १८७० से १८८० तक सारे नये रेलपथ सरकार ने स्वयं बनाये। १८७३ में राजपूताना-मालवा-रेलवे, १८७५ में पंजाब-नोर्दर्न और १८७८ में इंडसवेली रेलवे बनाई गईं। राजपूताना-मालवा रेलवे बोम्बे-बरोदा-एण्ड-सेंट्रल इंडिया रेलवे कम्पनी को संचालन के लिये दे दिया।

पंजाब नोर्दर्न और इंडस वेली रेलपथों को सिंध पंजाब देहली रेलवे के खरीदने पर उसमें मिला दिये और इन तीनों के समूह का नाम नोर्थ वेस्टर्न-रेलवे कर दिया। १८६१ में सरकार ने आसाम बंगाल रेलवे को बनाना आरम्भ किया परन्तु १८६२ में इसे एक कम्पनी को संचालन और प्रबन्ध के लिये दे दिया। यह कम्पनी आसाम बंगाल-रेलवे कम्पनी के नाम से सचालन कर रही है। १६०० में इंडियन-मिडलैंड-रेलवे ग्रेट-इंडियन-पेनिन्सुला रेलवे में मिला दी गई। १८८७ में बंगाल-नागपुर-रेलवे नामक कम्पनी को संगठित कर नागपुर-छत्तीसगढ़ रेलवे उसे संचालन के लिये दे दिया। १८६७ में बर्मा-रेलवे-कम्पनी को रंगून-इरावदी-रेलवे और १८६० में रुहेलखण्ड-कमायूं रेलवे कम्पनी को और बंगाल नोर्थ वेस्टर्न-रेलवे कम्पनी को क्रमशः लखनऊ-बरेली-रेलवे और तिरहुत-रेलवे संचालन के लिये दे दी गई।

सारांश यह है कि नोर्थ-वेस्टर्न (एन० डब्लू०*), अवध रुहेलखण्ड (ओ०आर०), ईस्टर्न-बङ्गाल (ई० बी०), आदि रेलों का सरकार स्वयं संचालन करती है। ईस्ट-इंडियन (ई० आई०), ग्रेट इंडियन-पनिन्सुला (जी० आई० पी०), बोम्बे-बरोदा-एण्ड सेन्ट्रल इंडिया रेलवे (बी० बी० सी० आई०), साउथ इंडियन (एस०आई०), मद्रास-एण्ड-सदर्न-मरहटा (एम०एस०एम०), आसाम-बंगाल (ए०बी०), बंगाल-नागपुर (बी०एन०), बरमा रेलवे, आदि आठ सरकारी रेलपथों का संचालन प्रतिनिधि

* कोष्टकों में रेलों के संक्षिप्त नाम हैं। सुविधा के लिये आगे संक्षिप्त नामों का ही उपयोग किया गया है।

कम्पनियां करती हैं। इनमें ई० आई० आदि प्रथम पांच रेल-पथों का संचालन पुरानी गारन्टी कम्पनियां ही प्रतिनिधि रूप से करती हैं। शेष तीन नई प्रतिनिधि कम्पनियां हैं। रुहेलखण्ड–कमायूं रेलवे कम्पनी (आर० के०) और बंगाल नोर्थ वेस्टर्न-रेलवे कम्पनी (बी०एन०डब्लू०) स्वतंत्र हैं। ये अपने अपने रेलपथों के साथ सरकारी लखनऊ-बरेली और तिरहुत रेलपथों का प्रबन्ध और संचालन भी करती हैं।

उपर्युक्त आठों प्रतिनिधि कम्पनियों ने थोड़ी थोड़ी पूंजी सरकार को दे रक्खी है। अर्थात् सरकारी रेलपथों में इन कम्पनियों का भी कुछ धन लगा हुआ है। इन कम्पनियों को पुरानी गारन्टी कम्पनियों के समान गारन्टी इंटरेस्ट मिलता है। रेलवे से जो लाभ होता है उसमें से सरकारी मूलधन का ब्याज और गारन्टी–इंटरेस्ट आदि काट कर जो शेषलाभ (सर्प्लस-प्रोफिट)रहता है वह सरकार और कम्पनियों में बांट लिया जाता है। एक निश्चित समय उपरान्त सरकार कम्पनी से रेलपथ लेसकती है। उदाहरणार्थ आसाम बंगाल-रेलवे कम्पनी की शर्तें देखिये। कम्पनी ने सरकार को २५ लाख पौंड (२२५ लाख रु०) दे रक्खे हैं। इस धन पर उसे तीन प्रति सैकड़ा गारन्टी इंटरेस्ट मिलता है। सर्प्लस-प्रोफिट सरकार और कम्पनी के मूलधन के परिमाण पर विभक्त होता है। सरकार १९३१ के पहले कम्पनी से रेलवे नहीं ले सकती। अगर सरकार १९३१ में न लेगी तो पुनः १०–१० वर्ष (कई कम्पनियों से ५–५ वर्ष की भी शर्त है) के मध्य में नहीं ले सकेगी

अर्थात् १८३१ के पीछे सन् १८४१ में अथवा १८५१ में ही सरकार रेलपथ ले सकेगी, पहिले नहीं। जब सरकार रेलवे लेगी तब कम्पनी को उसका मूलधन, जो १५ लाख पाउंड है, मिल जायगा। निम्न लिखित सूची से सारी प्रतिनिधि कम्पनियों के मूलधन आदि के सम्बन्ध में ज्ञान हो जायगा—

नाम	कं० की पूंजी (पौंड)	गारन्टी प्र० सै०	सर्प्लस का विभाग	सरकार कब स्वाधीन कर सकती है
ए० बी०	१५,००,०००	३	मूलधन के परिमाण में	१८३१
बी० एन०	३०,००,०००	४	,,	१८५०
बी०बी०सी०आई	२०,००,०००	३	,,	१८४१
बरमा०	३०,००,०००	२॥	तृतियांश कम्पनी का	१८२८
ई० आई०	६३,५०,०००	४	२६ लाख तक पंचमांश,	
			शेष में शतांश कं० का	१८२४
ओ०आई०पी०	२५,६५,०००	३	बीसवां भाग कं० का	१८२५
साउथ-इंडियन	१०,००,०००	३॥	मूलधन के परिमाण में	१८४५
एम०एस०एम०	५०,००,०००	३॥	,,	१८३७

इस समय सरकारी सहायता—सबसीडी—प्राप्त ११ रेलवे कम्पनियां हैं। आर० के० और बी० एन० डब्लू० रेलवे कम्पनियां भी इसी संख्या में हैं। इन ११ कम्पनियों में से ६ को केवल भूमि मुफ्त मिली है। शेष ५ को भूमि मुफ्त मिली है और सरकार इन्हें इस हिसाब से धन की सहायता देती है जिससे कम्पनी को एक निश्चित प्रति सैकड़ा (३ से ५ प्रति सैकड़े तक का नियम है) लाभ हो सके। निश्चित लाभ से अधिक लाभ होने से वह सरकार और कम्पनी के मध्य समान भाग में विभक्त कर लिया जाता है। सरकार एक वर्ष पूर्व सूचना देकर इन कम्पनियों के रेलपथों को खरीद सकती है। खरीदने के समय से पहले पांच वर्षों में कम्पनी को प्रति वर्ष जितना औसत लाभ हुआ है उससे २५ गुणा अधिक मूल्य सरकार देगी। हां, यह मूल्य मूलधन से कम अथवा मूलधन से २० प्रति सैकड़ा अधिक न होगा। इन कम्पनियों के रेलपथों का संचालन ई० आई० आदि प्रधान रेलपथों द्वारा भी होता है। कई कम्पनियां अपने अपने रेलपथ का स्वयं संचालन करती हैं। कौन किसका संचालन करता है, इसका विवरण आगे लिखा है। कई छोटी छोटी गारन्टी-कम्पनियों के रेलपथ भी हैं। सरकार इनकी पूंजी पर निश्चित लाभ देती है, और नियम सबसीडी कम्पनियों के समान हैं। सन् १९०० में रिबेट (Rebate) नामक एक विचित्र प्रकार की कम्पनियों का संगठन हुआ। इन कम्पनियों के रेलपथ ई० आई० आदि प्रधान प्रधान रेलपथों की शाखाएं हैं। इनका (रिबेट कम्पनियों के रेलपथों का) संचालन और प्रबन्ध प्रधान प्रधान रेलपथ ही करते हैं। कम्पनी के शाखा पथ की चौड़ाई—गाज (Gauge)—प्रधान पथ के समान होने पर इंजिन, डिब्बे प्रधान

पथ के काम में आते हैं। गाज छोटा बड़ा होने से इंजिन आदि कम्पनी को बनाने पड़ते हैं। शाखा पथ की कुल आमदनी (Gross earnings) का आधा भाग संचालन व्यय के लिये प्रधान पथ रख लेता है और आधा भाग स्वामी कम्पनी को दे देता है। इसके अतिरिक्त शाखापथ के कारण प्रधानपथ को जो आमदनी (Gross earnings) होती है उसका भी लगभग आधा भाग प्रधानपथ स्वामी कम्पनी (शाखा पथ कम्पनी) को उसके मूलधन पर एक निश्चित लाभ (किसी कम्पनी से ३ प्र० सै० और किसी से ३॥, ४॥, या अधिक से अधिक ५ प्र० सै० हैं) होने के लिये दे देता है। प्रधानपथ की उक्त आमदनी का जो आधा भाग शाखा कम्पनी को दिया जाता है उसे ही 'रिबेट' कहते हैं। इन कम्पनियों के रेलपथों को खरीदने के नियम सबसीडी-कम्पनियों के समान हैं। इस समय २७ 'रिबेट' कम्पनियां हैं। केवल ६ कम्पनियां ऐसी हैं जिन्होंने मूल्य देकर भूमि प्राप्त की है। इन्हें किसी प्रकार की सरकारी सहायता नहीं मिलती। इन कम्पनियों का रेलपथ केवल ७८ मील है। इन कम्पनियों के रेलपथ को भी सरकार सबसीडी कम्पनियों के रेलपथ के समान खरीद सकती है। ५ रेलपथ डिस्ट्रिक्ट बोर्डों की सम्पत्ति है, जिनका संचालन प्रधान पथ करते हैं। डिस्ट्रिक्ट बोर्डों द्वारा सहायता—सबसीडी—प्राप्त कम्पनियों के भी आठ रेलपथ हैं।

यहां की देशी रियासतों ने १८७० में रेलवे बनाना आरम्भ किया था। देशी राज्यों के रेलपथों का संचालन और प्रबन्ध देशी राज्यों द्वारा और प्रधान पथों द्वारा होता है।

हैदराबाद निज़ाम के राज्यान्तर्गत अधिकतर रेलपथ निज़ाम सरकार-द्वारा-प्राप्त-गारन्टी कम्पनी के हैं। जिन देशीराज्यों के रेलपथों का सञ्चालन प्रधान पथों द्वारा होता है उन की (देशी राज्यों के रेलपथों की) कुल आय में से ४० से ५० प्रति सैकड़ा सञ्चालन व्यय के लिये प्रधानपथ ले लेता है अथवा जितना व्यय होता है उतना काटकर शेष लाभ रियासत को देदिया जाता है। किसी किसी देशी राज्य के रेलपथ का सञ्चालन प्रधानपथ रिबेट नियम पर भी करता है। जैसे बी० बी० सी० आई० रेलवे कम्पनी जैपुर राज्य की रेलों का संचालन करती है। जोधपुर-बीकानेर रियासत की रेलों के साथ सरकारी रेलवे का भी सञ्चालन होता है। सरकारी रेलपथ द्वारा जोधपुर बीकानेर राज्य को जो आय होती है उसमें से सञ्चालन व्यय काट कर शेष लाभ सरकार को दे दिया जाता है। देशीराज्य भी दूसरे देशीराज्यों के और कम्पनी के रेलपथों का सञ्चालन करते हैं। इनका परस्पर में उपर्युक्त नियम ही है।

भिन्न भिन्न रेलपथों का किस समूह [System] में किस नाम से संचालन होता है; समूह विशेष का कौन संचालन करता है; प्रत्येक समूह में कौन कौन से और किस किसके रेलपथ सम्मिलित हैं; इत्यादि सारी बातों का ज्ञान निम्नलिखित सूची से भली भांति हो जायगा। सूची में जो सांकेतिक प्रयोग हैं, उनका भावार्थ इस प्रकार है:—

सरका०	सरकार की सम्पत्ति।
कम्पनी०	कम्पनी की सम्पत्ति, जिसे सरकार से कोई सहायता नहीं मिलती।

देशी रा०	देशी राज्य की सम्पत्ति। जिस राज्य की सम्पत्ति है उसका नाम ब्रेकट में लिख दिया गया है।
कं० सहा०	सरकार या डिस्ट्रिक्ट बोर्ड द्वारा गारन्टी या 'सबसीडी' के रूप में सहायता प्राप्त कम्पनी की सम्पत्ति।
कं० रिबे०	रिबेट प्राप्त कम्पनी की सम्पत्ति।
कं० देशी०	देशी राज्य द्वारा गारन्टी प्राप्त कम्पनी की सम्पत्ति
डिस्ट्रिक्ट०	डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की सम्पत्ति।
कं० विदे०	पोर्चूगीज आदि विदेशियों के अधीनस्थ भारत में रेलपथ के निर्माण के लिये संगठित कम्पनी की सम्पत्ति।
मीलें	रेलपथ की लम्बाई की द्योतक हैं।
गाज	रेलपथ की चौड़ाई का द्योतक है। चौड़ाई चार प्रकार की हैं:- ५ फीट ६ इंच । ३ फीट $3\frac{3}{8}$ इंच । २ फीट ६ इन्च । २ फीट। सूची में हमने ३ फीट $3\frac{3}{8}$ इन्च के लिये केवल ३-३ ही लिखे हैं।
स्वामी कं०	'रिबेट', 'सबसीडी', 'गारन्टी' और सहायता रहित कम्पनी अर्थात् वह कम्पनी जिसने रेलवे में अपना धन लगा रक्खा है।

किस किस रेलपथ का किस के द्वारा किस नाम से सञ्चालन होता है?	किसकी सम्पत्ति है?	मीलें	गाज
(क) सरकार द्वारा सञ्चालितः—			
१–ईस्टर्न बंगाल रेलवे नाम का सरकार संचालित जो रेलवे समूह है उसमें निम्नलिखित रेलपथ शामिल हैं—			
ईस्टर्न–बंगाल रेलवे	सरका०	५६४	५-६
,, ,,	,,	१०३१	३-३
,, ,,	,,	३५	२-६
सारा–सिराजगंज रेलवे	कं० रिबे०	५३	५-६
खुलना बागरहट रेलवे	,,	२०	२-६
कूंच बिहार-रेलवे (कूंच)	देशी रा०	३३	३-३
		१७३६	
२–नोर्थ-वेस्टर्न–रेलवे नामक सरकार संचालित जो रेलवे समूह है उसमें:—			
नोर्थ-वेस्टर्न-रेलवे	सरका०	४०८४	५-६
कालका शिमला आदि	,,	३२९	२-६
अमृतसर पट्टी	कं० रिबे०	५४	५-६

सदर्न-पंजाब	कं रिबे.	४२५	५-६
हुशियारपुर-जलन्धर	"	४५	"
हुशियारपुर-फगवाडा	"	४५	"
मन्ढ्राभान	"	४६	"
सियालकोट-नरवाल	"	३८	"
सदर्न-पंजाब (जलन्धर)	"	१३०	"
सदर्न-पंजाब (लुधियाना)	"	१५२	"
जकोबाबाद-काशमीर	"	७७	२-६
लाडखाना-जकोबाबाद	"	३२	"
जम्मू-काशमीर (काशमीर)	देशी रा०	१६	५-६
खानपुर-चचारन (भावलपुर)	"	२२	"
लुधिआना-धुरी-जाखल (जींद)	"	७९	"
राजपुर-भटिन्डा (पटियाला)	"	१०८	"
		५६८२	
३–अवध रुहेलखंड रेलवे नाम का सरकार संचालित जो रेलवे समूह है उसमें:—			
अवध रुहेलखण्ड	सरका०	१५११	५-६
हरद्वार-दहरा	कं. सहा.	३२	"
		१५४३	
४–पडन रेलवे का सरकार संचालन करती है	सरका०	२९	३-३

५-जोरहट रेलवे का आसाम सरकार संचालन करती है	सरका०	३२	२-०
(क) सरकार संचालित सारे रेलपथों का जोड़		६०२२	
(ख) प्रतिनिधि कम्पनियों द्वारा संचालितः—			
६-ग्रेट-इण्डियन-पेनिन्सुला रेलवे नाम का इसी नाम की कम्पनी द्वारा संचालित जो रेलवे समूह है उसमें:—			
ग्रेट-इण्डियन पेनिन्सुला	सरका०	२८६१	५-६
धोंद-बारामती	क. रिबे.	२७	२-६
इलिचपुर-पवतमहल	,,	११८	,,
पचोरा-जामनेर	,,	३५	,,
पुलगांव-आरवी	,,	२२	,,
मथरान-लाइट	,,	१३	२
भूपाल-इटारसी (भूपाल)	देशी रा०	❀	
भूपाल-उज्जैन (भूपाल ग्वालियर	,,	११३	५-६
बीना-बरना (ग्वालियर)	,,	१४७	,,
		३३३६	

❀ यह सरकार और भूपाल राज्य की सम्मिलित सम्पत्ति है अतः सरकारी रेलवे के साथ इसे लिख दिया गया है।

७–बङ्गाल नागपुर रेलवे नाम का इसी नाम की कम्पनी द्वारा संचालित जो रेलवे समूह है उसमें—			
बङ्गाल नागपुर आदि	सरका०	१६०२	५-६
गोंडिया-चांद, पुरलिया-रांची आदि	,,	७६८	२-६
टूमसर-तिरोदी	,,	४५	२
पानपोश-रायपुर	कं० रिबे०	१३	५-६
मयूर भांज	,,	७१	२-६
पारला की मण्डी	देशी रा०	२५	२-६
		२८५४	
८–बोम्बे–बरोदा–सेंट्रल–इण्डिया रेलवे नाम का इसी नाम की कम्पनी द्वारा सञ्चालित जो रेलवे समूह है उसमें—			
बोम्बे-बरोदा०	सरका०	१००८	५-६
राजपूताना-मालवा आदि	,,	१८१०	३-३
पालनपुर-देसा	देशी रा०	१७	,,
भड़ोच जाम्बूसर	सरका०	३०	२-६
तापती वेली	कं० रिबे०	१५६	५-६
अहमदाबाद-धोलका	,,	३४	३-३
अहमदाबाद परानतीज	,,	८६	,,
नागदा उज्जैन (ग्वालियर)	देशी० रा०	३३	५-६

आनन्द तारापुर (बरोदा)	देशी० रा०	२१	५-६
तारापुर कम्बे (कम्बे)	,,	१२	,,
भान्द्र	,,	४०	३-३
गायकवाड़-महसाना (बरोदा)	,,	२३१	,,
जैपुर स्टेट (जैपुर)	,,	१२२	,,
राजपीपली-स्टेट (राजपीपली)	,,	३६	२-६
		३६४२	
९ ईस्ट-इंडियन रेलवे नाम का इसी नाम की कम्पनी द्वारा सञ्चालित जो रेलवे समूह है उसमें-			
ईस्ट-इण्डियन	सरका०	२५४१	५-६
दहली-अम्बाला-कालका	कं० सहा०	२०६	,,
जींद-पानीपत (जींद)	देशी रा०	२६	,,
		२७७३	
१० आसाम-बंगाल-रेलवे नाम का इसी नाम की कम्पनी द्वारा सञ्चालित जो रेलवे समूह है उसमें:—			
आसाम बंगाल	सरका०	८६९	३-३
चम्पारपुर-सीलघाट	कं० सहा०	५१	,,
मेमनसिंह-भैराव बाजार	कं० रिबे०	१०१	,,
		१०२१	

११–मद्रास-एण्ड-सदर्न मरहट्टा रेलवे नाम का इसी नाम की कम्पनी द्वारा संचालित जो रेलवे समूह है उसमें—			
मद्रास एण्ड सदर्न०	सरका०	१०४१	५-६
"	"	१७७९	३-३
टनेली-रपेली	डिस्ट्रिक्ट०	२१	५-६
बेजवाड़ा मछलीपट्टम	"	५२	३-३
कोलार फील्डस (मैसूर)	देशीरा०	१०	३-३
हिन्दूपुर (मैसूर)	"	५२	५-६
कोल्हापुर (कोल्हापुर)	"	२९	३-३
सांगली (सांगली)	"	५	"
वेस्ट–इण्डिया पोर्चुगीज	कं० विदे०	५१	"
		३०४०	
१२–साउथ–इंडियन रेलवे नाम का इसी नाम की कम्पनी द्वारा संचालित जो रेलवे समूह है, उसमें–			
साउथ–इण्डियन	सरका०	४३६	५-६
"	"	९३१	३-३
कृष्णागिरी	"	९८	२-६
सुरमंगला–सालम	डिस्ट्रिक्ट०	४	५-६
टनजोर–पलाची	"	१६०	३-३
कोचीन–शोरनूर (कोचीन)	देशी रा०	६५	"
ट्रावनकोर (ट्रावनकोर)	"	९६	"

पेरलाम-करेकल	कं० विदेशी	१५	३-३
पांडेचरी	,,	८	,,
		१८५३	
१३-बरमा-रेलवे नाम का इसी नाम की कम्पनी द्वारा संचालित जो रेलवे समूह हैं उसमें-	सरका०	१६२२	३-३
(ख) प्रतिनिधि कम्पनियों द्वारा संचालित सारे रेलपथों का जोड़		२०१४१	
(ग) स्वामी कम्पनियों द्वारा संचालितः—			
१४-निजाम-गारन्टी स्टेट रेलवे नामका इसी नाम की कम्पनी द्वारा संचालित जो रेलवे समूह है उसमें:—			
निजाम गारन्टी-स्टेट }	कं० देशी	३३०	५-६
हैदराबाद-गोदावरी }		३९२	३-३
बेजवाडा	सरका०	२१	५-६
ईंगोलो ब्रांच और गढ़वाल (निजाम)	देशीरा०	१५९	३-३
		९०२	

१५-बंगाल-नोर्थ-वेस्टर्न रेलवे नाम का इसी नाम की कम्पनी द्वारा संचालित जो रेलवे समूह है उसमें:-			
बंगाल-नोर्थ-वेस्टर्न	कं० सहा०	१२४८	५-६
कानपुर-बहवाल	सरकार	८२	,,
तिरहुत	,,	८१४	३-३
		२१४४	
१६-रुहेलखंड-कमायूं रेलवे नाम का इसी नाम की कम्पनी द्वारा संचालित जो रेलवे समूह है उसमें:—			
रुहेलखंड-कमायूं	कं० सहा०	२५६	५-६
लखनऊ-बरेली	सरकार	३१६	३-३
१७-बंगाल प्रोविंशियल रेलवे नाम का इसी नाम की कम्पनी द्वारा संचालित जो रेलवे समूह है उसमें:—			
बंगाल-प्रोविंशियल	कम्पनी	३३	३-३
दसघड़ा-जमालपुर	कं० सहा०	८	,,
१८-दार्जीलिंग-हिमालय रेलवे नाम का इसी नाम की कम्पनी द्वारा संचालित जो रेलवे समूह है उसमें:—			
दार्जीलिंग-हिमालय	कं० सहा०	५१	२
हिमालय-एक्सटेंशन	कं० रिबे०	९६	२

१९–बंगाल डुआर्स रेलवे नाम का इसी नाम की कम्पनी द्वारा संचालित जो रेलवे समूह है उसमें:—			
बंगाल–डुआर्स	कं० सहा०	३६	३·३
डुआर्स–एक्सटेन्शन	,,	१२१	,,
२०–आसाम रेलवे एन्ड ट्रेडिंग कम्पनी द्वारा संचालित जो रेलवे समूह है उसमें:—			
डिबरू–सदिया	कं० सहा०	८६	३·३
लेडो–टिकाक	कम्पनी	५	,,
२१–गुजरात रेलवे कम्पनी द्वारा संचालित जो रेलवे समूह है उसमें:—			
चम्पानेर शिवराजपुर	कं० रिबे०	३३	२·६
गोधरा लूनबाडा	,,	२६	,,
नादे कपद	,,	३०	,,
२२–ई० आई० डिस्ट्रीलाईजर्स कम्पनी कुलसेकर पट्टनम रेलवे का संचालन करती है	कम्पनी	१८	२
२३–चेटी एंड सन्स ट्रिवेलोर रेलवे का संचालन करते हैं	कम्पनी	२	२
निम्न लिखित पृथक् पृथक् रेलवे का उसी नाम की कम्पनी द्वारा संचालन होता है			

२४ अहमदपुर कटवा	कं० सहा	३२	२-६
२५ अरकान लाइट	,,	१८	,,
२६ बांकुड़ा दामोदर	,,	६०	,,
२७ बरद्वान कटवा	,,	३३	,,
२८ फतवाह इसलामपुर	,,	२७	,,
२९ कालीघाट फलटा	,,	२६	,,
३० बारसी लाइट	,,	११८	,,
३१ देहरी-रोहतक	,,	२४	,,
३२ सहादरा सहारनपुर	,,	९३	,,
३३ तेजपुर बलीपारा	,,	२०	,,
३४ आरा ससराम	,,	६५	,,
३५ बरसट बसीरहट	,,	५२	,,
३६ बखतीरपुर-बिहार	,,	३३	,,
३७ जेसोर झेनोदा	,,	३७	,,
३८ हवड़ा आम्टा	,,	४४	२
३९ हवड़ा-शेरवला	,,	२०	,,
४० जगाधरी लाइट	कम्पनी	३	,,
४१ मड़या-लाइट	,,	१६	३-३
(ग) स्वामी कं० द्वारा संचालित सारे रेलपथों का जोड़		४८८८	

(घ) देशी राज्यों द्वारा संचालित—			
४२—जोधपुर बीकानेर रेलवे नाम का जोध० बीका० राज्यों द्वारा संचालित जो रेलवे समूह है उसमें:—			
जोधपुर राज्य की रेलवे	देशीरा०	६०६	३-३
,, ,, ,,	,,	२५	२
बीकानेर ,, ,,	,,	४६८	३-३
जोधपुर हैदराबाद	सरका०	१२४	,,
मीरपुर भुडो	कं०सहा०	५१	,,
मीर पुर खादरो	,,	५०	,,
		१३५७	
४३—गोंडाल राज्य द्वारा संचालित—			
गोंडाल राज्य की रेलवे	देशीरा०	१०६	३-३
जतेसर-राजकोट (जुनागढ़, राजकोट आदि)	,,	४६	,,
खिजड़िया धारी	,,	३७	,,
पोरबन्दर राज्य की	,,	४१	,,
४४—मैसूर राज्य द्वारा संचालित—			
बिरूर शिमोगा, चितलद्रुग	देशीरा०	५६	३-३
मैसोर	देशीरा०	२०४	३-३
कोलार डिस्ट्रिक्ट	,,	६४	२-६
मैसोर लाइट	,,	२७	२
बंगलोर चिक	कं० देशी०	३६	२-६

४५ बरोदा-राज्य द्वारा संचालितः-			
बडेलो छोटा उदयपुर	देशीरा०	२३	२-६
कलाम्ब, डमाई, कोसाम्बा आदि (बरोदा)	,,	२७९	,,
निम्न लिखित रेलों का उसी नाम के राज्य संचालन करते हैं:—			
४६ भावनगर रेलवे	देशीरा०	२४०	३-३
४७ जामनगर	,,	५४	,,
४८ जूनागढ़	,,	१४०	,,
४९ मोरवी	,,	९३	२-६
५० उदयपुर-चित्तोड़गढ़	,,	६७	३-३
५१ ग्वालियर लाइट	,,	२५०	२
५२ कच्छ रेलवे	,,	३७	२-६
५३ धौलपुर ,,	,,	५१	,,
देशी राज्यों द्वारा संचालित रेलपथों का जोड़		३२१४	
सारे रेलपथों का जोड़		३७२६५	

उपर्युक्त अङ्कों का सारांश यह है कि भारत में (१९२२तक) ३७,२६५ मील रेलपथ हैं। जो ३७,२६५ मीलें हैं वे केवल पथ की लम्बाई [Truck Lines] को सूचक हैं। कहीं कहीं सैकड़ों मीलों तक दुहरी, तिहरी लाइन भी हैं। स्टेशनों पर तो अनेक लाइनें हैं। सारी लाइनों की तो लम्बाई लगभग ५० सहस्र मील है। जो ३७,२६५ मील रेलपथ है उस में १८,३१८ मील ५-६ फीट चौड़ा, १५,२७१ मील ३-३ फीट चौड़ा, ३,०४१ मील २-६ फीट चौड़ा, और

६३५ मील २ फीट चौड़ा रेलपथ है। इस ३७,२६५ मील रेलपथ में—

सरकारी	२६,७९० मील,
देशी राज्यों का	४,४४३ मील,
स्वामी कम्पनियों का	५,७९५ मील, और
डिस्ट्रिक्ट बोर्डों का	२३७ मील, रेलपथ है। पर—

सरकार	९,०२२ मील का
प्रतिनिधि कम्पनियाँ	२०,१४१ मील का
स्वामी कम्पनियाँ	४,८८८ मील का, और
देशी राज्य	३,२१४ मील का

संचालन और प्रबन्ध करते हैं। सरकार जो ९०२२ मील का संचालन करती है उसमें सरकारी रेलों ७६१५, कम्पनियों की ११४९ और देशी राज्यों की २५८ मील हैं। प्रतिनिधि कम्पनियां जो २०,१४१ मील रेलवे का संचालन करती हैं उसमें सरकारी रेलवे १७८२८, देशी राज्यों की १०६६, स्वामी कम्पनियों की १०१०, और डिस्ट्रिक्टबोर्डों की २३७ मील हैं। स्वामी कम्पनियों द्वारा जो ४८८८ मील रेलवे का संचालन होता है उसमें सरकारी रेलवे १२३३, कम्पनियों की अपनी ३४९६, और देशी राज्यों की १५९ मील है। देशी राज्यों द्वारा जो ३२१४ मील रेलपथ का सञ्चालन होता है उसमें सरकारी ११४, कम्पनियों की १४० और देशी राज्यों की अपनी २९६० मील है।

३१ मार्च १९२२ तक रु० ७,१८,७१,३७,००० रेलों में व्यय हुए हैं। इसमें ३७,२६५ मील तैयार रेलपथ के अतिरिक्त जो २१४७ मील रेलपथ १९२२ में तैयार हो रहा था उसमें

३१-३-१९२२ तक जितना व्यय हो चुका था वह भी शामिल है। उपर्युक्त रकम का हिसाब इस प्रकार है:—

सरकारी रेलपथ में	रु० ६,४१,०७,००,००० ‡	
देशी राज्यों के रेल० में	रु० २३,६२,५१,०००	*
कम्पनियों के रेलपथ में	रु० ४८,७१,१२,०००	*
डिस्ट्रिक्ट बोर्डों के रेल०	रु० १,३१,०४,०००	*

ये अङ्क सरकारी रिपोर्टों के आधार पर हैं। किन्तु वास्तव में इससे बहुत अधिक धन व्यय हुआ है। देशी राज्यों और कम्पनियों आदि के अङ्कों में केवल भूमि का मूल्य ही शामिल नहीं है पर सरकारी रेलपथ के मूल्य में बहुत न्यूनता है [देखो, तीसरा प्रकरण]। सरकारी रेलों में व्यय हुए धन के विषय में पृथक् पृथक् सरकारी रिपोर्टों में भिन्न भिन्न अङ्क हैं। वार्षिक रेलवे रिपोर्ट के *Ry. Report* 1921--22, Vol. II, App. 4) अनुसार सरकार के रु० ५,०६,१२,०३,००० और प्रतिनिधि कम्पनियों के रु० ७६,२९,५४,००० [आठों प्रतिनिधि कम्पनियों की पूंजी और उनके द्वारा सरकारी रेलों के लिये लिया हुआ ऋण] लगे हुए हैं। अर्थात् कुल रु० ५,८२,४१,५७,००० । इस रकम में रु० ३९,०७,२३,९९० †

‡ *Retrench. Com. Report*, p. 89.

* Ry. Report (1921-22) *Vol.* II, Appendix 4.

† Ry. Report [1921-22] Vol. I, p. 9. कई पुरानी गारण्टी कम्पनियों के रेलपथों का मूल्य सरकार ने किस्तों द्वारा देना स्वीकार किया था। लगभग ५ करोड़ रुपये किस्तों के और उनके व्याज के प्रति वर्ष दिये जाते हैं। जो ३९ करोड़ दिये गये हैं, वे केवल किस्तों के हैं।

किस्तों के जोड़ने से सरकारी रेलों का मूल्य रु० ६,२१,४८,७०,९६० होता है। पर उक्त सरकारी रिपोर्ट में किस्तों के ३९ करोड़ काट कर ही शेष रु० ५,८२,४१,५७,००० लिखे जाते हैं। १९२३ में जो धन किस्तों का दिया है वह काटने से १९२२-२३ की रिपोर्ट में और भी कम मूलधन लिखागया है। अर्थात् १९२१-२२ में ५८२॥ करोड़ रुपये लिखे गये हैं और १९२२-२३ में २२॥ करोड़ रुपये और व्यय होने से ६०५ करोड़ रुपये लिखे जाने चाहिये पर लिखे गये हैं केवल ६०३ करोड़ ही; क्योंकि १९२२-२३ में जो २ करोड़ रुपये किस्तों के दिये गये वे काट लिये गये हैं। यह मूलधन को कम दिखाने की एक विचित्र रीति है। इस सम्बन्ध में तीसरे प्रकरण में विचार किया गया है। वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार किस्तों की रकम न काटने से ६२१ करोड़ रुपये होते हैं पर रिट्रेंचमेन्ट कमेटी के अनुसार किस्तों की रकम न काटने से ६४५ करोड़ रुपये होते हैं। सरकारी आयव्यय के हिसाब में ६०० करोड़ से भी कम लिखा हुआ है। यह समस्या इतनी जटिल है कि भारत मंत्री की कौंसिल के अर्थसदस्य भी इसे न सुलझा सके*! हमने रिट्रेंचमेंट कमेटी के अङ्क का ही उपयोग किया है।

नियंत्रण और प्रबन्ध।

सारे रेलपथ [देशी राज्यों की रेलों के सहित—रेलवे एक्ट धारा १(२)] भारत सरकार के शासनाधिकार में हैं [रेलवे एक्ट

*Acworth Com. Report, Vol. II, p. 181–200.

धारा ७(२)]। सरकारी आज्ञा बिना रेलवे का निर्माण नहीं हो सकता[रेलवे एक्ट धारा १६(१)]। रेलपथों का नियंत्रण (Control) और निरीक्षण (Supervision) पहले प्रान्तीय सरकारों के पी० डब्लू० डी० विभाग द्वारा होता था। १८७१ से सरकारी रेलों का संचालन और अन्य रेलों का नियंत्रण और निरीक्षण एक सरकारी इंजीनियर (Consulting Engineer) द्वारा होने लगा। कार्य अधिक होने के कारण कुछ समय बाद यह कार्य एक डाइरेक्टर (Director of Railways) के अधीन कर दिया गया। मि० रोबर्टसन, जो यहाँ की रेलों के सम्बन्ध में विचार करने के लिये नियुक्त किये गये थे, की अनुमति* के अनुसार सन् १६०५ में रेलवे बोर्ड की स्थापना हुई†। रेलवे बोर्ड में तीन सदस्य हैं। बोर्ड भारत सरकार की कार्यकारिणी (Executive) कौंसिल के व्यापार विभाग (Commerce and Industry) के सदस्य के अधीन है। बोर्ड भारत के सारे रेलपथों का नियंत्रण और सरकार संचालित रेलपथों का प्रबन्ध करता है। सरकार संचालित भिन्न भिन्न रेलवे समूह का संचालन पृथक पृथक् मैनेजर करते हैं। जैसे एन० डब्लू० रेलवे समूह का संचालन एक मैनेजर करता है। प्रतिनिधि कम्पनियों द्वारा संचालित रेलों का प्रबंध पृथक् पृथक् कम्पनी के बोर्ड (Board of Directors) करते हैं। ये बोर्ड लण्डन में हैं। एक सरकारी डाइरेक्टर आठों प्रतिनिधि कम्पनियों के बोर्डों का सदस्य है। सरकारी डाइरेक्टर को सर्वोपरि अधिकार (*Power of Veto*) है। प्रतिनिधि कम्पनियों के समान ही स्वामी कम्पनियों द्वारा संचालित रेलों का प्रबन्ध होता है।

* Robertson's *Report*, p. 16-18

† Railway Board Act,(*IV* of 1905).

जो स्वामी कम्पनियां इङ्गलैंड में संगठित हुई हैं उनके बोर्ड लण्डन में हैं और जो भारत में संगठित हुई हैं उनके बोर्ड कलकत्ते, बम्बई और कराची में हैं। लण्डन बोर्डों ने अपना एक एक प्रतिनिधि—एजेंट—संचालन कार्य के लिये यहाँ भेज रक्खा है। एजेंट पर ही सारा कार्य भार निर्भर है।

प्रत्येक रेलवे समूह का संचालन-कार्य कई विभागों में विभक्त है। सारे विभाग सरकारी मैनेजर अथवा कम्पनी के एजेंट के अधीन हैं। [१] इञ्जिनियरिंग विभाग का कार्य रेलवे सड़क और स्टेशन आदि को सुरक्षित रखना है। [२] इञ्जिन, डिब्बे आदि बनाना, उनका जीर्णोद्धार और नियन्त्रण करना "मेकेनिकल-इञ्जिनियरिंग" विभाग का कार्य है। [३] भाड़े की नियुक्ति, माल और यात्रियों के आवागमन का प्रवन्ध आदि "ट्रैफिक" विभाग का कार्य है। इसी विभाग के प्रधानाध्यक्ष को "जनरल-ट्रैफिक मैनेजर" कहते हैं। [४] हिसाव किताव का प्रवन्ध चीफ़ आडीटर या चीफ़ अकाउन्टेन्ट के अधीन है। [५] रेलवे के लिये आवश्यक वस्तुओं को संचित रखने का एक भिन्न विभाग है। यह विभाग चीफ-स्टोर-कीपर के अधीन है। [६] यात्रियों और रेलवे कर्मचारियों की सुविधा के लिये एक डाक्टरी विभाग भी है। प्रत्येक विभाग के अधिष्ठाता के अधीन अनेक कार्यकर्ता हैं। जैसे जनरल-ट्रैफिक मैनेजर के अधीन डिप्टी ट्रैफिक मैनेजर, डिस्ट्रिक्ट ट्रैफिक-सुपरिंटेंडेंट आदि। रेलवे के एजेंटों और मैनेजरों की एक समिति है जिसे रेलवे कान्फरेंस कहते हैं। यह समिति रेलपथों के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में विचार और निर्णय करती है और रेलवे एक्ट की ४७ वीं धारा के अनुसार संचालन आदि के

नियमोपनियम बनाकर उन्हें सरकार से स्वीकृत कराती है। इंजिन आदि की मरम्मत और अन्यकार्यों के लिये पृथक् पृथक् रेलपथों के पृथक् पृथक् कारखाने (Workshops) हैं। जैसे ई० आई० का लिलुवा में, जी० आई० पी० और बी० बी० सी० आई० का परेल (बम्बई) में, बी० एन० का खड़गपुर में, एन० डब्लू का लाहौर में और ओ० आर० का लखनऊ में है।

भाड़ेका नियंत्रण।

यात्रियों के लिये चार दर्जे हैं पर माल के लिये पहले पांच दर्जे थे और अब १ अप्रिल १९२२ से दस हैं। मालको प्रथम श्रेणी Class का भाड़ा सबसे कम है। अन्य श्रेणियों का क्रमशः अधिकाधिक है। अर्थात् १० वीं श्रेणी का सब से अधिक है। पत्थर लकड़ी, कोयला, घास, अन्न, नमक और तिलहन आदि प्रथम श्रेणी में हैं। गुड़, खांड़, मिठाई, कागज, जूट, आटा और लोहा आदि दूसरी श्रेणी में; जल, तेल, फल, सोड़ा आदि तीसरी श्रेणी में; ऊन, मदिरा, मशीनें, चमड़ा, रुई आदि चौथी में; घृत, कपड़ा, दूध आदि छठी में; मोटरें, रेशमी कपड़ा, आदि आठवीं में; घड़ी, बाजे, दियासलाई आदि नवमी में; और रसायनिक द्रव्य आदि दसवीं श्रेणी में हैं। वर्गीकरण Classification का प्रधान आधार वस्तु विशेष का मूल्य है। इसके अतिरिक्त और भी कई कारण हैं। अतएव एक

ही वस्तु का न्यूनाधिक भाड़ा लिया जा सकता है। जैसे रुई की गांठ चौथी श्रेणी में है पर खुली हुई रुई छठी श्रेणी में है। इसका कारण यह है कि खुली हुई रुई को रखने के लिये अधिक स्थान की आवश्यकता होती है अतएव भाड़ा भी अधिक है। गुड़ और खांड़ का एक ही श्रेणी में होना कहाँ तक उचित है वह समझ में नहीं आता। मदिरा चौथी श्रेणी में है पर जल तीसरी श्रेणी में और दूध छठी श्रेणी में !! यात्रियों और माल का भाड़ा सरकारी आज्ञानुसार लिया जाता है। मालका वर्गीकरण सरकार करती है। प्रत्येक वर्गके लिये सरकार ने कम से कम [Minimum] और अधिक से अधिक [Maximum] भाड़ा नियुक्त कर दिया है:—

वर्ग	अधिक से अधिक भाड़ा प्रति मन प्रति मील पाई	कम से कम भाड़ा प्रति मन प्रति मील पाई
१	$\frac{३८}{१००}$	$\frac{१०}{१००}$ (वर्ग १ और २ दोनों के लिये)
२	$\frac{४२}{१००}$	

३	$\frac{५८}{१००}$	
४	$\frac{६२}{१००}$	
५	$\frac{७७}{१००}$	
६	$\frac{८३}{१००}$	$\frac{१६६}{१०००}$
७	$\frac{९६}{१००}$	
८	$\frac{१०४}{१००}$	
९	$\frac{१२५}{१००}$	
१०	$\frac{१८७}{१००}$	

रेलवे सञ्चालक—एजेंट या मैनेजर—वर्ग विशेष की वस्तु के लिये उपर्युक्त 'कम से कम' और 'अधिक से अधिक' भाड़े के अन्तर्गत इच्छानुसार भाड़ा ले सकते हैं।

यहां की रेलों से एक वर्ष में (१९२१-२२ में) ५८, ७०,२३,००० यात्रियों ने यात्रा करके ९,३३,०२,००० [illegible] लाख

का आवागमन हुआ; कुल आमदनी (Gross earning) ९२,८८,६७,००० रुपये हुई; संचालन व्यय ७०,७९,९५,००० रुपये हुआ। शेष आय २२,०८,७२,००० रुपये हुई। औसत में प्रत्येक प्रथम श्रेणी के यात्री ने १२१ मील, दूसरी श्रेणी के यात्री ने ७४ मील, मध्यम श्रेणी के यात्री ने ७२ मील और तीसरी श्रेणी के यात्री ने ३७ मील यात्रा की [*Ry*. Report, (1921-22) Vol. II, Appendix 8 and 9.]।

दूसरा प्रकरण।

निर्माणोद्देश्य और परिणाम।

संसार के भिन्न भिन्न देशों में रेलवे का निर्माण कहीं राज्य—सरकार—द्वारा, और कहीं देश के धनिकों द्वारा हुआ है। राज्य के और धनाढ्यों के निर्माणोद्देश भिन्न भिन्न होते हैं। राज्य राजनैतिक दृष्टि से और धनिक अपने धन से लाभ उठाने के उद्देश से रेलवे बनाते हैं। राज्य द्वारा रेलवे के निर्माण होने का एक मात्र उद्देश राजनैतिक लाभ ही नहीं, परन्तु राजकीय आय की वृद्धि और जनता की सुखसमृद्धि भी है। अनेक देशों में राज्य अपने निर्मित रेलपथों द्वारा आर्थिक लाभ की लोभ-लालसा न रख कर सर्व साधारण को अधिक से अधिक सुख और सुविधा पहुंचाना ही अपना कर्तव्य समझते हैं। धनाढ्यों का उद्देश्य प्रधानतः आर्थिक लाभ ही होता है। यहां की रेलों का निर्माण सरकार द्वारा हुआ है। यद्यपि आदि में धन इङ्गलैण्ड के धनाढ्यों का था किन्तु ईस्ट इण्डिया कम्पनी उन्हें निश्चित लाभ देने को बाध्य थी। अर्थात् इङ्गलैण्डवालों को उनकी पूँजी का निश्चित लाभ मिलता था, अतएव उनका धन सरकार को ऋण दिया हुआ समझा जा सकता है। और ऋण द्वारा निर्मित वस्तु ऋणी की सम्पत्ति होती है नकि ऋणदाता की। अस्तु।

रेलवे व्यापारिक और औद्योगिक उन्नति का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अङ्ग है। यदि रेलों का संचालन देश के समुत्थान के समुद्देश से सुचारुरूप से किया जाय तो देश का अनिर्वचनीय उपकार हो सकता है। अर्थशास्त्र की भिन्न भिन्न समस्याओं से रेलवे का बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है—The Railways have become vitally interwoven with varied and complicated phases of economic life.—Raper, p. 7. । श्रमविभाग (Division of Labour), वस्तुओं की उत्पत्ति (Production), सम्प्रविभाग (Distribution) और वस्तुओं के उपयोग [Consumption] आदि से रेलवे का बहुत कुछ सम्पर्क है*। रेलवे के सम्बन्ध में यहां तक कहा जाता है कि मानव जाति के हित के लिये रेलवे के समान अन्य कोई आविष्कार अद्यावधि नहीं हुआ†। वस्तुतः रेलों ने संसार में एक प्रकार का युगान्तर उपस्थित कर दिया है—एक नवीन सृष्टि रचदी है‡। रेलों के असंख्य लाभों के विषय में प्रायः सभी अर्थशास्त्रज्ञ सहमत हैं§। रेलवे से प्रधान प्रधान लाभ ये होते हैं:—

(१) यात्रियों और वस्तुओं के आवागमन की सुविधा।

* Williams; *Ry*. Economics, p. 23-30.

† Macgeorge: Ways and Works, p. 219-20; Raper: Ry. *T*ransportation, p. 1.

‡ Meyer: Ry. Legislation, p. 8,3.

§ Mill, Economy, Ch. 12, p. 184 [Ashley's Ed. 1920]; *B*astable; Theory of International Trade, p. 32-33

(२) रेलवे जन्य नवीन कार्यक्षेत्र उपलब्ध होने से देश वासियों का मानसिक विकास और आर्थिक अभ्युत्थान।

(३) रेलवे की आवश्यक वस्तुओं के लिये मांग उत्पन्न होने से और रेलवे द्वारा प्रत्यक्ष सहायता मिलने से देश के उद्योग धन्धों का परिष्कृत और उत्तेजित होना और नवीन नवीन उद्योग धन्धों का उद्भव।

(४) देशी और विदेशी व्यापार की अभिवृद्धि।

(५) दुर्भिक्ष का दमन, और कृषि-कृषकों का उत्कर्ष।

(६) देश में सुख-समृद्धि की वृद्धि और स्वतंत्रता का संरक्षण। इत्यादि।

एक अमेरिकन लेखक का कहना है कि "रशिया मञ्चूरिया को अधीन करने के लिये रेलवे का उपयोग करता है। परशिया का रेलपथ संधि के कठोर नियमों से उसकी रक्षा करता है। टिगरिस की खाड़ी के रेलपथ में अतुल धन व्यय कर जर्मनी वहाँ यूरुप का व्यापार-केन्द्र स्थापित कर लाभ उठाना चाहती है। जर्मन लोग अपने देश में राष्ट्रीय संगठन के लिये रेलवे का विस्तार कर रहे हैं। कनाडा संहारक ड्यूटियों के प्रतियोग में रेलों का प्रयोग करता है†।" जर्मनी और बेलजियम में रेलों के कारण आश्चर्यजनक उन्नति हुई है‡। संयुक्त राज्य अमेरिका की वर्तमान सुख-समृद्धि का अधिकतर श्रेय वहां की रेलों को ही है*। निष्कर्ष यह है कि विदेशों

† Meyer: Ry. Legislation, p. 5–6.

‡ Mr. Lloyd George—Prime Minister,
[Banerjea; Fiscal Policy, p. 210].

* Mr. Priestley [1904],-Ghose: Ry. Extensions, p. 23.
Meyer: Ry. Legislation, p. 3–4.

में रेलवे के कारण सुख-शान्ति, स्वतंत्रता और सम्पत्ति का शुभागमन हुआ है। विदेशी रेलों ने बेकन के 'रेलवे के कारण जाति का समुत्थान होता है' शब्दों को अक्षरशः चरितार्थ किया है। और यह असंदिग्ध रूप से कहा जा सकता है कि आधुनिक सभ्यताभिमानी देशों की उन्नतावस्था का प्रधान कारण रेलें ही हैं। किन्तु यह कहना कि रेलों के कारण भारत की आशातीत, अभूतपूर्व और अनिर्वचनीय उन्नति हुई है सर्वथा असत्य अतः भ्रान्तिमूलक है। वास्तव में रेलों के कारण भारत का किञ्चित भी उपकार नहीं हुआ, किन्तु निस्सन्देह चिन्तनीय अधोगति अवश्य हुई है।

एक अंग्रेज़ लेखक का कहना है कि 'रेलवे अन्य यूरुप की आश्चर्यान्वित उन्नति देखकर लोगों को भारत में भी रेलवे की आवश्यकता प्रतीत हुई, पर भारतीय रेलों में विदेशी पूंजी के उपयोग से कितनी भयंकर हानि होगी, इसका न तो शासकों ने विचार किया और न इस ओर अर्थशास्त्रज्ञों ने ही ध्यान दिया! रेलों द्वारा धन-शोषण के रूप में भारत के हृदय का जो अविकल रक्त-शोषण हुआ है और जो औद्योगिक पौरुष-स्रोत शुष्क हो गया है, उस महती क्षति की तुलना में रेलवे के लाभ सर्वथा अपर्याप्त हैं*।' यही नहीं, किन्तु हमारे देश के सामाजिक और साम्पत्तिक अङ्ग-प्रत्यङ्गों के जर्जरित होने का मूलभूत कारण रेलवे ही है। ग्रामीण-जीवन और वहां के उद्योग धन्धों के सर्वनाश का, वहाँ की स्वच्छ जल वायु के दूषित होने का एक मात्र कारण रेलवे है। रेलवे ने

* Thornton: The *Indian Tribute*, p. 77-78.
[Digby, p. 204-5]

वर्ण-व्यवस्था को अतल-तल में डुबाकर देश को अकर्मण्य बना दिया है। सर दीनशा वाचा का कहना है कि 'रेलवे के कारण भारत की जो दुर्दशा हुई है, वह भीषण रूप से अपरिच्छिन्न दीख रही है। जो जनता संतुष्ट और सुखी थी, वह आज रेलवे के कारण उद्योग धन्धों के नष्ट होने से मजूरों के रूप में परिणत हो अत्यन्त दुःखमय दुरावस्था को प्राप्त हो गई है'। × × 'रेलों के कारण उद्योग धन्धों के नष्ट होने से भारतवासियों के लिये आजीविका का एक मात्र साधन कृषि रहगया है। इसका दुष्परिणाम दुर्भिक्षों की वृद्धि के रूप में सम्मुख है†।' + + 'भारत में रेलों का निर्माण इतनी शीघ्रता से हुआ कि जनता को यह अवसर और अवकाश ही नहीं मिला कि वह नवीन कर्मक्षेत्र में पहुंच कर संस्थापित हो सकती। अतएव उद्योग धन्धों के उच्छिन्न होने के अतिरिक्त, आय के अन्य मार्ग भी अवरोधित हो गये।' जिन महाशय के ये शब्द हैं, वे आगे लिखते हैं कि 'रेलवे के दुष्परिणामों को संक्षेप में यों कह सकते हैं कि पहिले भारत स्वयं अपनी आवश्यकता पूरी करता था पर अब वह विदेशों पर अवलम्बित है। जैसे पहले वस्त्र यहीं बनते थे पर अब इंगलैण्ड से आते हैं। पहले वह धन धान्य परिपूर्ण था, अब वहां दारिद्र-देवका अभिनय होरहा है‡'। इस प्रसंग में महात्मा गांधी के शब्द विशेषतः ध्यान देने योग्य हैं। आपका कहना है "रेलें न होतीं तो अँग्रेजों का पञ्जा भारत पर इतना दृढ़ नहीं हो सकता था। प्लेग का फैलना, दुर्भिक्ष, महँगी और अकाल मृत्यु आदि का

† Loveday: *Indian Famines*, p. 107.

‡ A. K. Connel: Economic Revolution of India, p. 53

कारण रेलें ही हैं। रेलों के कारण तीर्थस्थानों की गंदुति हो रही है। पहले यात्रा करना कष्टसाध्य था अतएव सच्चे धार्मिक ही तीर्थ स्थानों को जाते थे। अब तो तीर्थ क्षेत्र बदमाश गुण्डों के अड्डे हो रहे हैं (भारतीय स्वराज्य)"। यहां की रेलों के अनेक भीषण दुष्परिणामों का विचार करने पर यह सार निकलता है कि:-

[१] रेलों ने देश की स्वतंत्रता की रक्षा नहीं की किन्तु देश को चिरकाल के लिये दासता की शृङ्खला से जकड़ दिया।

[२] रेलों में व्यय हुई पूँजी के प्रतिफल में आय नहीं हुई पर अत्यन्त हानि हुई और हो रही है!

[३] देश के धनिकों को लाभ नहीं हुआ, किन्तु विदेशी पूंजी का उपयोग किया गया जिससे देश का अकथनीय अहित हो रहा है!

[४] पर्यटन में सुख और सुविधा तो कहां, परन्तु निस्सहाय तीसरे दर्जे के यात्रियों के साथ पैशाचिक जुल्म हो रहा है!

[५] माल के आवागमन में एक नहीं, अनेक विघ्न-बाधाएँ और असुविधाएँ हैं!

[६] देशवासियों को रेलवेजन्य क्षेत्र में स्थान नहीं मिला, किन्तु विदेशियों को अत्यधिक वेतन देकर नियुक्त किया गया जिससे और अनेक हानियों के अतिरिक्त देश को अत्यधिक आर्थिक क्षति हो रही है!

[७] रेलवे की आवश्यक वस्तुएँ यहां नहीं खरीदी जातीं,

अतएव यहां के उद्योग धन्धों का विकास नहीं हुआ।

[८] देशी व्यापार और उद्योग धन्धों की उन्नति नहीं हुई। हां, रेलवे ने उन्हें समूलतः अवश्य नष्ट कर दिया!

[९] देश में सुख समृद्धि की अभिवृद्धि नहीं हुई, पर देश निस्सन्देह दीन-दुर्बल हो गया है!

[१०] कृषि और कृषकों का अभ्युदय नहीं हुआ, जो हुआ वह उनके प्रति कुठाराघात!

[११] दुर्भिक्ष का दमन तो दूर रहा, पर हो रही है उसकी दुर्दमनीय उत्तरोत्तर वृद्धि!

अर्थात् रेलों के कारण विदेशों को जो जो अलभ्य लाभ हुए, भारत केवल उन्हीं से वञ्चित नहीं रहा परन्तु रेलवे ने भारत को गारत कर दिया!

इन बातों की सविस्तार विवेचना आगामी प्रकरणों में की जायगी। इस प्रसंग में तो इतना ही विचार करना आवश्यक है कि यहाँ अन्य देशों से विपरीत परिणाम होने का कारण क्या है? यदि सच पूछा जाय तो यह असंदिग्ध रूप से कहा जा सकता है कि उपर्युक्त भीषण दुष्परिणामों का एक मात्र कारण निर्माणोद्देश की विभिन्नता है। रेलवे बनाने का मूलभूत उद्देश्य भारत का लाभ नहीं किन्तु इंगलैंड का लाभ है। अर्थात् यहाँ के उद्योग-धन्धों को नष्ट कर अंग्रेज़ी वस्तुओं का यहां अधिकाधिक प्रचार करना; इंगलैंड के कारखानों के लिये रुई आदि कच्चा द्रव्य प्राप्त करना; हमारी दासता के

* Digby, p. 259.

बन्धनों को सुदृढ़ और सुदीर्घ बनाना; इंगलैंड में निरर्थक पड़े हुए धन को उत्पादक बनाना; यहां की रेलों के लिये आवश्यक वस्तुएँ इंगलैंड में तैयार कराकर वहां के कारखानों की उन्नति करना; आजीविका रहित अनेक अयोग्य अंग्रेजों को यहां के रेलवे कार्य के प्रतिष्ठित पदों पर नियुक्त कर उनके जीवन निर्वाह के लिये मार्गोद्घाटन करना; उपनिवेशों की उन्नति के लिये श्रमजीवियों को एकत्रित और उन्हें यहां से निर्यात करने का साधन प्राप्त करना; और ब्रिटिश साम्राज्य के विस्तार के लिये संसार के भिन्न भिन्न देशों में युद्ध करने के लिये यहां सेना का सुसंगठन करना; इत्यादि उद्देश्यों से यहां रेलवे का निर्माण हुआ है। यद्यपि वर्तमान व्यवस्था, जिसका चित्र चित्रण आगामी प्रकरणों में किया है, इस बात की साक्षी देती है कि निर्माण के मूलउद्देश्य उपर्युक्त ही थे न कि भारत का हित, तथापि विषय की गम्भीरता और महत्ता के कारण उक्त कथन की पुष्टि में निम्नलिखित कुछ महत्व पूर्ण बातों पर विचार करना परमावश्यक है, जिससे निर्माणोद्देश के विषय में सन्देह और संशय को किंचित भी स्थान न रह सके:—

(१) भारत में अंग्रेजी शासन प्रणाली का चरम लक्ष्य।

(२) ईस्ट इण्डिया कम्पनी और उसके पीछे अंग्रेज सरकार (British Government) की भारत सम्बन्धी आर्थिक नीति Fiscal Policy.।

(३) निर्माणोद्देश के सम्बन्ध में आदि प्रवर्तकों का कथन और अन्य अंग्रेजों का इस विषय में मत।

(४) यहां रेलवे की आवश्यकता ?

(५) असामयिक निर्माण।
(६) अंग्रेज व्यापारियों का हस्तक्षेप।
(७) गारंटी कम्पनियों की शर्तें।
(८) प्रत्यक्ष हानि होने पर भी रेलवे की उत्तरोत्तर वृद्धि।
(९) भाड़े की विषमता, गोरों की नियुक्ति और आवश्यक चीजों का इङ्गलैण्ड में खरीदना।
(१०) विदेशी पूंजी का उपयोग। इत्यादि।

(१) शासन प्रणाली का चरम लक्ष्य।

भारत में अंग्रेजों की शासनप्रणाली का मूल उद्देश्य स्वार्थ-सिद्धि है। उस सिद्धि की प्रक्रियाओं से भारत का कितना ही अनिष्ट क्यों न हो, परन्तु उससे शासक बिलकुल विचलित नहीं होते। १९२० में कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ने यूरुप से लिखा था कि "यहां आने पर यह तो स्पष्ट हो गया है कि हम मांसाहारी जीवों के चङ्गुल में फँस गये हैं। पञ्जाब के हत्याकाण्ड के सम्बन्ध में पार्लियामेंन्ट में जो विचार हुआ, उससे प्रत्यक्ष है कि शासकों की नस नस में क्रूरता का संचार हो रहा है। डायर के नर-संहार को अमानुषिक अत्याचार कह कर भी उसकी भूरि भूरि प्रशंसा करना और यहां की स्त्रीजाति को भी हमारे रक्त के लिये पिपासाकुल देख-कर मुझे अत्यन्त विस्मय हुआ है। इनसे हमारे हित की आशा करना केवल दुराशा मात्र है (बङ्गला 'प्रवासी')।" × × "भारत में अंग्रेजों के शासन का उद्देश प्रथम भारत का और अन्त में अंग्रेजों का लाभ नहीं, किन्तु आदि, अन्त, सर्वत्र और सर्वदा अंग्रेजों का ही लाभ है*।" × × × ×

* Digby, p. 36; Cross: Self-Govt. in India, p. 6.

"हमें यह स्पष्ट स्वीकार करना चाहिये कि हम (अंग्रेज) भारत में अपने लाभ के लिये राज करते हैं†।" × × "हमें इस बात का ससाहस प्रतिवाद करना चाहिये कि 'हम भारत में भारत के लाभ के लिये शासन करते हैं' क्योंकि ऐसी मिथ्या बातों के कारण विदेशी हमारा (अंग्रेजों का) उपहास करते हैं‡।" और भी कई अंग्रेजों का यही मत है*। लार्ड सलिसबरी ने, जब वे भारत मंत्री थे, भारत सरकार को लिखा कि "भारत का रक्त अवश्य निकालना चाहिये–Secretary of State for India's minute Dt. 26th April, 1875।"

† Herbert Taylor; The Future of India, Contemporary Review xxxix [1881], 474-76;

‡ Mclean, M. P., "Voice of India" vii [1889], 302.

* "The English in India", Westminster Review, Lxix (1858), 199;

"The Climate and the Work", Cornhill Magazine, VI [1862], 244;

M. E. Grant Duff: "India, Political and Social" Contemporary Review, xxvI [1875], 357-86;

G. H. Keene: "John Bull's Eastern Estate", Westminster Review, CXLVII [1897], 357-66;

Arthur Sawtell: India under British Rule" —Proceedings of the Royal Colonial Institute, XXXVII [1906], 291;

George Chesney: "The Value of India to England," Ninteenth Century Review, III [1878],227-238;

H. Fielding Hall "The Competition Wallah" Fortnightly Review, XCIX [1913], 270-89.

बङ्गाल के शासक ओनशोर ने स्वीकार किया था कि अंग्रेजों के शासन का उद्देश केवल स्वार्थ लिप्सा है*। यहाँ की कार्यकारिणी कौंसिल के भूतपूर्व अर्थ सदस्य के शब्दों में 'अब भी बहुत से अंग्रेजों का यह कहना है कि भारत को अंग्रेजों ने विजय (?) किया अतः उसका शासन उसी प्रकार होना चाहिये जिसमें इङ्गलैन्ड का हित हो†।'

इन बातों से स्पष्ट है कि भारत में अंग्रेजी शासनप्रणाली का चरम लक्ष्य स्वार्थ-साधन के अतिरिक्त कुछ नहीं है। इस स्वार्थ-स्रोत को अविच्छिन्न प्रवाहित रखने के लिये हमारा निर्दयता से दमन किया जाता है। यहां के अत्यधिक और अनावश्यक सैनिक व्यय का, जो संसार में सबसे अधिक है, कारण भारत को परचक्रों—विदेशियों के आक्रमणों—से रक्षा करना नहीं है‡। महान सैनिक शक्ति बनाये रखने का प्रधान प्रयोजन भारतवासियों को दमन करना ही है, जिससे स्वार्थ-सिद्धि की प्रक्रियाओं में किसी प्रकार की विघ्न-बाधा उपस्थित न हो सके। इसी कारण अनेक दमनकारी प्रचंड कानून§ बनाये गये हैं—To secure and maintain these

* Shore; Indian Affairs.

† Acworth Com. Report, Vol. II, para 8229.

‡ Lord Lansdowne.—*Royal, Com. Report*, Vol. *II*, para 15996 [Rai; England's Debt, p. 107].

§ Bengal State Prisoners Regulations [3 of 1818]; State Prisoners Act 34 of 1850, and 3 of 1858; Press and Books Act 25 of 1867, 14 of 1922. The Dramatic Performances Act 19 of 1876.

advantages [Commercial exploitation and etc.] India must be held in close leash by military force and repression.—Cross: Self—Govt. In India, p. 6-7। प्रसिद्ध रालट एक्ट, पंजाब का हत्याकाण्ड, मारशल ला, हन्टर कमेटी-रिपोर्ट, उसपर पार्लियामेंट में विचार, और डायर फण्ड आदि ज्वलन्त उदाहरण उपर्युक्त कथन का समर्थन करते हैं। अतएव शासन के मूलभूत उद्देश्यों पर विचार करने से सहज ही समझ में आजायगा कि रेलवे जैसा महत्व-पूर्ण कार्य शासनोद्देश के अन्तर्गत ही है न कि हमारी हित कामना से ।

(२) कम्पनी और अंग्रेज सरकार की अर्थ नीति।

रेलवे निर्माण के समय और उसके पूर्व और पश्चात् ईस्ट-इंडिया कम्पनी की जो अर्थनीति थी और अँग्रेज सरकार की जो अर्थ नीति रही है, उससे भी रेलवे के निर्माणोद्देश्य का सच्चा पता लगता है। कम्पनी ने किस कुटिल कूटनीति, घृणित उपायों और नृशंस अत्याचारों द्वारा भारत को अपहृत किया—उस पर शासनाधिकार प्राप्त किया—उसका रोमाञ्च-कारी विवरण अप्रासंगिक है। यहाँ तो कम्पनी की तत्कालीन अर्थनीति के सम्बन्ध में ही विचार करना है। यद्यपि हेस्टिंग

पीछे के पृष्ठ से——

Penal Code [4 of 1898], Sec. 124 A and 153A;
Criminal Procedure Code [5 of 1898], Sec. 108, 144;
The Explosive Substances Act, 6 of 1908;
Cri. Law Amend. Act 14 of 1908, 5 of 1922, 8 of 1913.
Seditious Meetings Act, 10 of 1911 और Arms Act.

का महाराज नन्दकुमार को फांसी देना, अवध की बेगम के साथ अत्यन्त निष्ठुर व्यवहार और रुहेलखण्ड के विध्वँस के लिये सैना-विक्रय आदि अर्थ-नीति के ही अङ्ग थे, तथापि इन बातों की विवेचना अनावश्यक है। इस प्रसङ्ग में इतना लिखना ही पर्याप्त है कि '१७५० से १८०० तक अँग्रेजों का प्रधान कार्य भारत के धन का अपहरण करना था। किस मार्ग से धन प्राप्त किया जाय, यह वास्तव में कोई प्रश्न नहीं था*।' किन विकट युक्तियों द्वारा धन-शोषण किया गया, इसका अनेक अँग्रेजों ने मर्मस्पर्शी शब्दों में उल्लेख किया है। उनके लेखों को आज कौन पढ़ता है? आदम स्मिथ के लेख† केवल पौराणिक गाथाएँ रह गये हैं‡! बर्क [E Burke] और मैकोले ने भी बहुत कुछ लिखा है¶! उनके ग्रन्थ पुस्तकालयों की शोभा मात्र हैं! उनका पढ़ना गिबिन के 'रोमन साम्राज्य का पतन' [Gibbin: Decline and Fall of the Romans.] के समान समझा जाता है! यद्यपि बर्क आदि के लेख हृदय ग्राही हैं तथापि उनका सम्बन्ध आजकल हमारी आँखों के सामने जो हो रहा है उस से क्या है, यह लोग नहीं समझते§!

वारिन हेस्टिंग के पास जब अपना और सैनिकों का वेतन देने को भी धन नहीं रहता था, तब भी उसे करोड़ों रुपये येन केन प्रकारेण यहां से इंगलैंड भेजने पड़ते

* Digby, p. 24.

† Smith: Wealth of Nations, Bk. IV, Chap. VII.

‡ Macdonald; Govt. of India, p. 125.

¶ 9th Report; Macaulay: Hastings and Clive.

§ Digby, p. 25.

थे*। कम्पनी के प्रतिनिधि बात बात में धन का अपहरण करते थे†। भारतवासियों का जो शताब्दियों का संचित धन अँग्रेजों ने लूट कर लण्डन भेजा, उसके मूल्य का अनुमान करना असम्भव है। हां, वह अरबों रुपये से कम नहीं था—यूरुप में उस समय जितना धन था उसके परिमाण में वह बहुत अधिक था। सम्भवतः कभी किसी को इतना लाभ नहीं हुआ जितना अंग्रेजों को यहां की लूट से हुआ‡।

१८५७ के सिपाही विद्रोह का कारण गाय और सूअर की चर्बी-मिश्रित कारतूस थे। अर्थात् विद्रोह का कारण अंग्रेजशासकों का दोष और प्रमाद था। पर विद्रोह-दमन का व्यय भारत से लिया गया§। अनेक अंग्रेजों के मत से भी यह न्यायोचित नहीं था¶। साम्राज्य की वृद्धि और प्रतिष्ठा के लिये विदेशों में जो युद्ध हुए उनके व्यय के करोड़ों रुपये भी भारत को देने पड़े**। सारांश यह है कि भारत के धन का अपहरण निर्दयता

* Macaulay; Hastings; Macdonald: Govt. of India, p. 125; J. *B*ruce; Plans for British *I*ndia, p. 314-15.

† Lecky: History of England, Vol. III, [1883] p. 76.

‡ Adams; *C*ivilization and Decay, p. 263, 305; Hyndman: Asia, p. 202.

§ Lecky: Map of Life, [England's Debt, p. 89].

¶ Major Wingate: Our Financial Relation with India; John Bright's Speech on India Loan, March, 1859.

** Royal *C*om. on Ind. Expenditure, Rep. Vol. II, p. 305.

और निर्लज्जता से किया गया। और अब भी प्रति वर्ष अतुल धन का दोहन और शोषण होरहा है। इस दोहन के सम्बन्ध में १४ वें प्रकरण में लिखा गया है। यहां इतना लिखना ही बहुत है कि इस वार्षिक दोहन (Drain) को कोई २५-३० करोड़ बताता है और कोई अरबों रुपये। उदाहरणार्थ देखिये—

३०-४० करोड़ रु०—

H. M. Hyndman: Bleeding to Death, 19th Century Review, VIII (1880) p. 165.

St. Nihal Singh: Unrest in India, Arena, XXXVIII (1907), p. 604.

Sir Theodore Morison: Economic Transition of India [1911], p. 203.

The Grievances of India, Dark Blue Magazine, III [1872], p. 325.

Parliamentary Debates, 4th Ser., Vol. III [1892], Col. 106.

५०-६० करोड़ रु०—

H. M. Hyndman: Bankruptcy of India [1886], p. 56--58; Asia, p. 234--5,

A. J. Wilson: An Empire in the Pawn, [1911], p. 61-65,

E. Pratt: India and her friends, Westminster Review, CXLVII (1897), p. 646.

एक अरब रु०—

J. S. Keay: The Spoliation of India, 19th Century Review, XIV (1883), p. 5, 16.

तीन अरब रु०—

A. Sawtell: *India under British Rule*, Proceedings of the Royal Colonial Institute, XXXVII [1906-7], 290.

कुछ भी हो, इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि यह वार्षिक दोहन ६०-७० करोड़ से कम नहीं है। इस दोहन के कारण [बंगाल के एक अंग्रेज़ शासक के शब्दों में] भारत का सुख समृद्धि का सुसमय स्वप्न की सम्पत्ति के समान हो गया है*।

१७५७ के पलासी-युद्ध की विजय के पश्चात् कम्पनी के नौकरों ने बिना ड्यूटी व्यापार करना आरम्भ कर दिया था†। यह कार्य बंगाल के देशी व्यापार के लिये इतना अनिष्टकारक था कि वारिनहेस्टिंग को भी इस बात पर दुःख प्रकट करना पड़ा‡। प्रसिद्ध इतिहासज्ञ जेम्स मिल ने इस विषय को लक्ष्य कर लिखा है कि "One of the most remarkable instances upon record of the power of interest to extinguish all sense of justice, and even of shame..............the narrow sighted selfishness of commercial cupidity had rendered the council...obstinately inaccessible

---

* Shore. *Indian Affairs*.

† View of Bengal, p. 48; A Narrative of the Transactions in Bengal, Vol. I, p. 24.

‡ Letters of Hastings to the Govt. Dt. 13th and 25th May 1762.

to the plainest dictates of reason. justice and policy. Mill: History of India, Vol. III, Bk. IV, Chap. 5, p. 337.

अर्थात् स्वार्थ की शक्तियां न्याय और लज्जा को किस प्रकार तिलाञ्जलि दे देती हैं, उसका यह एक ज्वलन्त उदाहरण है।" स्वयं कम्पनी ने भी राज शक्ति द्वारा अंग्रेजी उद्योग-धन्धों के अभ्युदय के लिये यहाँ के कारीगरों का प्रत्यक्ष रूप में विनाश किया §। १७ मार्च सन् १७६९ के पत्र में कम्पनी ने लिखा कि 'कारीगरों को अपने घरों में काम न करने दिया जाय*।' पार्लियामेंट्री कमेटी का कहना है कि 'इस पत्र में भारत के उद्योग-धन्धों और कारीगरों को नष्ट-भ्रष्ट करने की प्रक्रियाओं का अच्छी तरह उल्लेख था। वास्तव में इसका उद्देश्य एक औद्योगिक देश को अंग्रेज़ी कारखानों की उन्नति के लिये केवल कच्चे पदार्थ उत्पन्न करने का क्षेत्र बनाना था‡'।

कम्पनी ने यहां के कारीगरों के प्रति, विशेषतः जुलाहों के प्रति, जो कल्पनातीत अत्याचार किये, उनकी कारुणिक कहानी अनेक अंग्रेजों ने लिखी है†। कम्पनी के स्वामियों—डाइरेक्टरों—

§ Dutt, Vol. I, p. 45.

* Ninth Report, Appendix 37. ‡ p. 64.

† William Bolts: Indian Affairs (1772), p. 73; Prof. Muir: The Making of British India, p. 89; M. Martin: Indian Empire, Vol. I, p. 560; Macaulay: Hastings and Clive.

ने भी प्रसंगवश यह स्वीकार किया था कि 'भारत के उद्योग-धन्धों को नष्ट करने के लिये जो भयङ्कर अत्याचार हम कर रहे हैं, उनके समान कभी किसी देश में नहीं हुए— Most tyrannic and oppressive conduct that was ever known in any age or country—The Court of Director's Letter Dt. 17th May 1766, to Lord Clive, House of Commons Committee, 3rd Report, 1773, Appendix p. 440' । १८४० को पार्लियामेंट्री सिलेक्ट कमेटी के सदस्य ब्रौकले (Brocklehurst) ने कहा था कि भारत से जो वस्त्र इंगलैण्ड में आते हैं, उनके समान इंगलैण्ड के कारखानों में तैयार नहीं हो सकते। इसलिये यदि भारत के वस्त्र यहां आते रहे तो, इंगलैंड के कारखाने जीर्ण शीर्ण हो जायंगे। अतएव भारतीय जुलाहों का सर्वनाश करना उचित ही है*।

सन् १८१३ में भी यहां के बने हुए वस्त्र इंगलैंड में ५०--६० प्रति सैकड़े के लाभ से बिकते थे†। अतएव उनकी मूल्य वृद्धि करने के लिये उन पर ७०-८० प्रति सैकड़ा ड्यूटी लगाई गई। इस सम्बन्ध में वहां 59 Geo. 3, Ch. 52 (Consolidated) कानून था। संहारक ड्यूटी के लगने पर भी यहां के वस्त्र सस्ते और सुन्दर होने के कारण इंगलैंड में बिकते रहे। इसलिये वहां ऐसा नियम बनाया गया जिसके कारण यहां के वस्त्रों का उपयोग करने वाले को दण्ड

* Report of Parliamentary Select Com. 1840, (Rai: England's Debt, p. 139).

† Mill: History, Vol. VII, Bk. I, Ch. VIII, p. 538.

दिया जाता था*। खांड, मिर्च, काफी आदि पर तो ४०० प्रति सैकड़ा तक ड्यूटी थी†। इस अत्याचार के सम्बन्ध में अब भी पार्लियामेंट के कई मेम्बरों ने दुःख प्रकट किया है‡। कई अंग्रेजों ने मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया है कि 'इंगलैंड के लाभ के लिये भारत के उद्योग धन्धों का सर्वनाश किया गया§'। अब भी लोग यह चाहते हैं कि भारत का द्वार अंग्रेजी वस्तुओं के लिये खुला रहे और यहाँ के उद्योग-धन्धों की उन्नति न हो††।

उक्त अत्याचारों का प्रत्यक्ष फल यह हुआ कि १७८७ में ढाके में एक करोड़ रुपये की मलमल बनी थी और ३० लाख की इंगलैंड गई थी, पर १८१७ में बिलकुल नहीं गई। और ढाके की आबादी दो लाख से केवल ७५ सहस्र रह गई! भारत में सर्वत्र यही दुर्व्यवस्था होगई थी¶। लोगों का कहना है कि यहां के उद्योग-धन्धे विज्ञान जनित विविध विधानों द्वारा तैयार हुई विदेशी वस्तुओं की प्रतिस्पर्धा में स्वयं नष्ट हो गये। एक प्रसिद्ध अंग्रेज का कहना है कि 'यदि भारत के

* Lecky: History of England in the 18th Century.

† Imp. Gazetteer, Vol. III, p. 42;
Parliamentary Select Com., 1831, Report, p. 581.

‡ Times, London 14th March 1917.

§ A. Toynbee: The Industrial Revolution of the 18th Century in England, p. 58; Shore: Indian Affairs; Fuchs: Trade policy of Great Britain, p. 272.

†† Major Ralph Glyn. M. P.,
(Acworth Com. Report, Vol. II, para 3676).

¶ Cotton: New India, p. 107–8.

माल पर इंगलैंड में संहारक ड्यूटी न होती तो वाष्प-शक्ति से सञ्चालित होने पर भी मैंचेस्टर की मिलों का जीवन सम्भव नहीं था। अंग्रेजी कारखानेवाले भारत के जुलाहों से न्याय मार्ग से प्रतिद्वन्द्विता नहीं कर सके, अतएव राजशक्ति द्वारा यहां के जुलाहों का सर्वनाश किया गया† !'

सन् १८०० तक यहां के ही जहाजों में विदेशों को माल जाता था¶। इंगलैंड के जहाजियों के यह कहने पर कि 'भारत के जहाजों से हमारा व्यवसाय नष्ट हो रहा है और हम भूखों मर रहे हैं, कम्पनी ने जहाज बनाने की यहां की कारीगरी का नाश करने के लिये यहां के जहाजों में माल का आना जाना रोक दिया‡। कम्पनी इतनी स्वार्थान्ध थी कि केवल मालगुजारी की थोड़ीसी वृद्धि के लिये पुराने जमींदारों से भूमि छीनकर अधिक मालगुजारी देने वालों को देदी*। जमींदारों का भूमि से, जिस पर उनका प्रभुत्व प्राचीन समय से चला आ रहा था, वंचित करना अन्याय था ही, पर कृषि पर भी इसका बहुत बुरा असर पड़ा। जिन्होंने अधिक मालगुजारी पर भूमि ली, वे वास्तव में कृषक नहीं थे—उद्योग धन्धों के नष्ट होने के कारण उन्हें कृषि की शरण

† Mill: History, *Vol*. VII, Bk. 1, Ch. 8, p. 538.

¶ Lord Wellesley's Letter to Directors, 1800; *Taylor*: History of India, p. 216.

‡ The Court of Directors Letter Dt. 27th Jany. 1801. [App. 47, Supplement to 4th Rep. E. I. Co. p. 23–24]

* Dutt, Vol. 1, p. 43.

सेमी पड़ी थी। कृषि कार्य से अपरिचित जनों के हाथ में भूमि आजाने से कृषिपर भीषण प्रहार होना स्वाभाविक था। ३-३ वर्ष के पश्चात् दूसरे दूसरे लोगों को भूमि दी गई*। इसका तो दुष्परिणाम और भी अधिक हानि कारक था।

यहां के उद्योग धन्धों का मूलोच्छेद कर इङ्गलैण्ड के कारखानों की उन्नति करने का उपक्रम तो उपर्युक्त नीति से हो ही गया था, पर १५० वर्ष तक रक्षणनीति Protectionसे इंगलैंड के उद्योग-धन्धों को सर्वाङ्ग पुष्ट बनाकर, सन् १८४६ में इङ्गलैण्ड ने मुक्तद्वार-वाणिज्य-नीतिFree Tradeका(आयात और निर्यात माल पर ड्यूटी न लेना—माल के आवागमन के लिये देश में मुक्तद्वार छोड़ देना) अवलम्बन किया और भारत को भी इस नीति का अनुसरण करने के लिये विवश किया। यह हमारे औद्योगिक अधःपतन का द्वितीय विश्राम था। इङ्गलैण्ड के उद्योग-धन्धे परिपुष्ट थे—वे उन्नतावस्था को पहुंच चुके थे—अतएव इस नीति के कारण इङ्गलैण्ड का लाभ था। वह कच्चा माल बाहर से मंगाता था और तैयार माल बाहर भेजता था, इसलिये आयात और निर्यात पर ड्यूटी न होने से उसका माल सस्ता होता था, जिससे उसके माल की विदेशों में अधिक बिक्री होती थी। यहां की परिस्थिति सर्वथा विपरीत थी। इङ्गलैण्ड को उक्त नीति से जो अलभ्य लाभ हुआ, भारत को उससे कहीं अधिक हानि हुई। १८९४ में सरकारी आय के

* Harry Verelst [Governor of Bengal]: View of the Rise of the English Govt. in Bengal [1772] p. 70.

लिये जब आयात माल पर ५ प्रतिसैकडा ड्यूटी यहां लगाई गई तब लङ्काशायरवालों के बुरी तरह चिल्लाहट करने पर यहां की मिलों में बने हुए सूत और कपड़े पर भी उक्त नीति की दुहाई देकर, ड्यूटी लगाई गई। संसार ने मुक्तकण्ठ से कहा है कि भारत के बने हुए माल पर भारत में ही ड्यूटी लगा कर उसकी मूल्यवृद्धि करना—लङ्काशायर के धनाढ्य व्यापारियों के लाभ के लिये दीन भारत के साथ ऐसा घृणित व्यवहार करना अत्याचार की पराकाष्ठा है।

कम्पनी की और तत्पश्चात् सरकार की भारत-सम्बन्धी अर्थनीति पर विचार करने से यह असंदिग्धरूप से स्पष्ट है कि यहां रेलवे का निर्माण उक्त नीति के अन्तर्गत ही था। अर्थात् इङ्गलैण्ड की वस्तुओं का अधिकाधिक प्रचार करने के लिये; भारत के अवशिष्ट उद्योग-धन्धों को नष्ट करने के लिये और यहां के कृषिजात माल को दूर दूर के गांवों से लाने के लिये ही यहां रेलवे का निर्माण किया गया है।

(३) प्रवर्तकों का कथन।

यहां रेलवे बनाने के आदि प्रवर्तक लार्ड डलहौजी हैं। अतएव निर्माणोद्देश्य के सम्बन्ध में उनके जो शब्द हैं, वे निस्सन्देह प्रमाणभूत हैं। लार्ड महोदय ने १८५३ में जो पत्र कम्पनी के डाइरेक्टरों को लिखा उसमें आपने लिखा था कि 'भारत के कच्चे माल को विदेशों को भेजने के लिये; भारतीय रुई को, जिसकी इंगलैंड को अत्यन्त आवश्यकता है, भिन्न भिन्न प्रान्तों से बन्दरों तक लाने के लिये; और यूरुप

की वस्तुओं को भारत के कोने कोने में पहुंचा कर उनके प्रचुर प्रचार के लिये भारत में रेलवे की अत्यन्त आवश्यकता है। इस पत्र का उल्लेख करते हुए लार्ड महोदय के जीवन चरित्र लेखक सुविख्यात सर विलियम हन्टर ने लिखा है कि 'लार्ड महाशय ने व्यापारिक दृष्टि से तो भारत में रेलपथ बनाया ही पर इसके अतिरिक्त उनका अभिप्राय विजित प्रान्तों को सम्बद्ध करना, सैनिक शक्ति का सुसंगठन करना, अंग्रेजी पूँजी और अंग्रेजी उद्यम [Enterprise] को भारत में लाना भी था*।'

एक अंग्रेज लेखक का कहना है कि 'विदेशी व्यापार और राजनैतिक लाभ से ही भारत में रेलें बनी हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि बम्बई और कलकत्ते से ही, जो व्यापारिक और राजनैतिक केन्द्र स्थान थे, रेलपथ का आरम्भ हुआ था§। ईस्ट-इन्डिया कम्पनी ने भी स्पष्ट कहा था कि केवल माल के आवागमन की सुविधा के लिये भारत में रेलवे बनाई गई है, न कि यात्रियों के लिये‡। गतवर्ष (१९२३) सर चार्लस Sir Charles Earnest Law K. C. I E. ने (कार्य कारिणी कौंसिल के भूतपूर्व सदस्य) लंडन के Caxton Hall में यहां की औद्योगिक अवस्था पर भाषण देते हुए कहा कि 'भारत में रेलवे-निर्माण का एक मात्र उद्देश्य राजनैतिक उद्देशों की पूर्ति और अंग्रेजी

---

* Hunter: Dalhousie, [Rulers Series] p. 191-6.

§ Macgeorge: Ways and Works, p. 299.

‡ Court of Directors Despatch Dt. 7th May 1845. [Bell: Ry. Policy, p.3].

व्यापार की उन्नति करना था'। सर मेयर (भारत सरकार के अर्थ सदस्य) ने स्वीकार किया है कि 'रेलों का संचालन भारतवासियों को हित-दृष्टि से नहीं होता है*।' यही बात आसाम-बंगाल और मद्रास मरहट्टा रेलवे कम्पनियों के डाइरेक्टर सर लारेंस ने भी स्वीकार की है‡।

(४) आवश्यकता।

यहां रेलवे की कोई आवश्यकता नहीं थी—आवश्यकतानुसार जल और स्थल मार्ग यथेष्ट थे। वाहन के लिये छोटी बड़ी नावें, विविध प्रकार की गाड़ियाँ, पालकी, घोड़े, हाथी, ऊंट, बैल, भैंसे, टट्टू, खच्चर, गधे आदि आवश्यकता से अधिक थे। इन्हीं मार्गों और वाहनों द्वारा पर्यटन और देश का व्यापार अच्छी प्रकार चल रहा था। कन्याकुमारी से काश्मीर तक, सिंध से आसाम तक सहस्रों मीलों के आवागमन में कोई कठिनाई नहीं थी। रेलों के पहले यहां आवागमन की जो सुख सुविधाएँ थीं, उनके सम्बन्ध में प्रचुर प्रमाण है। उदाहरणार्थ देखिये—(पुल, सड़कें, वाहन आदि के सम्बन्ध में) —

Dutt, Vol. I, p. 310–11; Hunter: Orissa, Vol. 1, p. 276.
K. Aiyangar: Ancient India, p. 188-89.
Bengal Asiatic Society Journal, Vol. XX, p. 291.
Ain-i-Akbari [Blochmann and Jarrett's Translation] Vol. I, p 150, 275, 289; Vol II, p. 122, 401.

---

* Acworth Com. Report, Vol. II, para 8226.

‡ Ditto, para, 2356.

Embassy of Sir Thomas Roe (17th Century),—
Vol. I, p. 67, 88, 97, 118; Vol. II, 320, 322, 347, 537.
Elliot: Jahangir's memoirs, *Vol.* VI, p. 347.
Crook: East India and Persia (1672–81) of Fryer,–
Vol. III, p. 156–8.
Ball: Travels of *Tavernier*, Vol. I, p. 39–45, 65, 96, 151, 175, 292, 296.
Yule: Travels of Marcopolo, Vol. II, p. 340, App. p. 591.
Pietro Della *Valle* (Italian Traveller, 1623 A. D.)
Vol. I, p. 21, 31, 63, 102, 183–84.
Travels of Peter Mundy, *Vol.* II, p.40, 83–84, 89, 95, 98, 189, 193, 239, 277.
India in the 15th Century (Hak. Soc. Publication), p. 10,
Constable and Smith; *Travels* of Bernier, p. 253, 284, 380, 398.
Elliot; Tarikh-i-Shershahi, Vol. IV, p. 417–18.
Archaeological Survey of India, Vol. I, p. 222;
Vol. II, p. 325–27.
Gribble: History of Deccan, Vol. I, p. 63.
Gait; History of Assam, p. 117. 175.
Stewart: History of Bengal, p. 162,
L. W. Shakespear: History of *Assam*, p. 1–3.
Elliot; Hist. of India, Vol. II, 300, 319; Vol. VI, p. 363.
M. Elphinstone; Hist. of *India* (9th Ed.), p. 186.
Salem District Gazetteer, Vol. I, pt. I, p. 234.
Imp. Gazetteer, Vol. VI, p. 36; VIII, p. 90; X, p. 298; XII, p. 385; XIV, p. 83; XVII, p. 383; XVIII, 10.

अब भी जिन स्थानों में रेलवे का सौभाग्य-सूर्य उदय नहीं हुआ है, वहाँ कोई असुविधा नहीं है।

जो इंगलैंडवासी निर्माण की अंतरंग नीति से अपरिचित थे, उन्होंने यहां रेलवे बनाने का प्रबल विरोध किया। उनका कहना था कि 'भारत में रेलवे के बनाने में अनेक प्राकृतिक बाधाएँ हैं*। रेलों से वहां आय न होगी क्योंकि वहाँ नदियों आदि के पर्याप्त मार्ग हैं‡।' पर लोगों का विरोध अरण्य रोदन के समान निष्फल रहा! यदि रेलों को किसी अंश में विलास और आनन्द को वस्तु मानलें अथवा यात्रा की सुख सुविधा का साधन समझें तो जिन भारतवासियों को पेट भर अन्न नहीं मिलता क्या उनके लिये भी रेलवे की आवश्यकता है? यदि यहां की आवश्यकताओं की पूर्ति करना ही रेलवे के निर्माण का उद्देश था तो शिक्षालयों, नहरों और स्वास्थ्य-रक्षा आदि के लिये अत्यधिक आवश्यकता थी और अब भी है। इन अनिवार्य आवश्यकताओं के लिये सरकारी कोष में धन का दिवाला सदैव बना रहा, किन्तु अनावश्यक और प्राणघातक रेलवे के लिये धन की कमी कभी नहीं हुई! यह इसलिये कि यहाँ की रेलें हमारे लिये हानिकारक हैं, न कि इंगलैंड के लिये। इंगलैंड का तो इनसे अकथनीय लाभ है। सबसे बड़ा लाभ तो यह है कि ये भारत को अंग्रेजी पञ्जे में दृढ़ता से रखती हैं†।

* Bell: Ry. Policy, p. 3.

‡ Huddleston: E. I. *Ry.*, p. 9.

† New England Magazine, Sept. 1900 [Digby p. 169]

(५) असामयिकता।

यदि भारत के लिये रेलवे की आवश्यकता भी मान लें, तब भी यहां रेलवे का निर्माण असामयिक था। इंगलैंड में रेलवे बनने के २०-२२ वर्ष पीछे ही यहां रेलवे बनना आरम्भ हो गया था*। अर्थात् रेलवे इञ्जिन का आविष्कार हुए अधिक समय नहीं हुआ था और न नवजात रेलवे उन्नतावस्था को ही पहुंची थी, तभी यहां रेलें बनने लगीं। मि० बेल का कहना है कि 'उस समय यूरुप में भी रेलवे एक नई चीज थी; इसके अतिरिक्त भारत में रेलवे से अधिक आवश्यक अनेक कार्य्य पड़े हुए थे अतः उस समय वहां रेलवे का निर्माण करना बिलकुल असामयिक था†'। मि० बेल के कथन का अधिक महत्त्व इसलिये है कि उन्होंने अपनी पुस्तक की भूमिका में लिखा है कि 'भारत में रेलवे सम्बन्धी जिस नीति का पालन किया गया उसका ऐतिहासिक विवरण मात्र लिखना हमारा उद्देश्य है। हमने अपने विचार सर्वथा प्रकट नहीं किये हैं। न हमने उस नीति की आलोचना ही की है।'

यदि हमारे लाभ की दृष्टि से रेलपथ बनाया जाता तो इतनी असावधानी और शीघ्रता से काम न हुआ होता, किन्तु रेलवे की समस्याओं का पूर्ण अनुसन्धान और विवेक बुद्धि से भारत के हानि लाभ का विचार अवश्य किया गया होता। भारतवासी रेलवे के हानि लाभों से अपरिचित थे। रेलों से देश का लाभ किस प्रकार हो सकता है? रेलें देश के

* Macgeorge; Ways and Works, p. 292.

† Bell; Ry. Policy, p. 1.

व्यापार और उद्योग-धन्धों को किस प्रकार उन्नत कर सकती हैं ? इत्यादि बातों से हम बिलकुल अनभिज्ञ थे। अतएव रेलवे के बनाने के पहले देशवासियों को उपर्युक्त बातों का ज्ञान कराना अनिवार्यतः आवश्यक था, पर ऐसा किया नहीं गया और असमय में ही उसका निर्माण प्रारम्भ कर दिया गया। इससे प्रत्यक्ष है कि रेलों से भारत के हित का कोई प्रयोजन नहीं था।

(६) गोरे व्यापारियों का हस्तक्षेप।

यहां रेलवे का बहुत शीघ्र विस्तार होने के लिये अंग्रेज व्यापारी अत्यन्त व्याकुल होते आये हैं। यद्यपि आरम्भ से ही रेलों से आय नहीं हुई है प्रत्युतः हानि ही हो रही है†, तथापि गोरे व्यापारियों की प्रेरणा से प्रतिदिन यहां रेलवे की वृद्धि हो रही है। ई० आई० रेलवे कम्पनी का संगठन तो १८४९ में हो गया था, पर रेलवे के तैयार होने में कुछ बिलम्ब हो रहा था। यह गोरे व्यापारियों के लिये असह्य था। उन्होंने पार्लियामेंट में आन्दोलन किया। जिसका फल यह हुआ कि विलम्ब के कारणों का अनुसंधान के लिये १८५३ में एक कमेटी नियुक्त की गई*। रेलवे-विस्तार के लिये जब कभी कुछ कम व्यय किया जाता है, तब ही गोरे व्यापारी विकल हो उठते हैं। पागलों की तरह चिल्लाहट करने लगते हैं। उदाहरणार्थ १९२१ में २४ करोड़ रुपये रेलों की वृद्धि में व्यय किये गये पर जब १९२२ में अर्थ-सदस्य ने रेलों के लिये केवल १५ करोड़

† देखो आगामी प्रकरण।

* Dutt, *Vol*. II, p. 177.

को ही बजट में व्यवस्था की तब बंगाल की चेम्बर व्याकुल हो चीत्कार करने लगी और सरकार से बहुत कहा सुनी की‡। जिसका फल यह हुआ कि १९२२ में भी २३॥ करोड़ रुपये व्यय किये गये! क्या सरकार 'सर्वशक्तिमान' चेम्बर की इच्छा की उपेक्षा कर सकती है?

यदि सरकार किसी वर्ष किसी कारण विशेष से रेलों के लिये अधिक व्यय नहीं कर सकती है तो पार्लियामेंट का व्यापारी-दल भारत मंत्री को अधिक व्यय करने के लिये दबाता है$। १८९५ के रौयल कमीशन के प्रधान के यह प्रश्न करने पर कि 'क्या आपका यह विश्वास है कि भारत में रेलें अंग्रेज व्यापारियों की प्रेरणा से अंग्रेजी व्यापार और उद्योग-धन्धों की सहायता के लिये ही बनाई गई हैं?' स्वर्गीय महामना गोखले ने उत्तर दिया कि 'वास्तव में यही बात है। इस का प्रमाण प्रत्यक्ष है। जब नये वाइसराय भारत जाते हैं तब लंडन के व्यवसायी भारत में रेलों का अधिकाधिक विस्तार करने के लिये वाइसराय को बहुत कहा सुनी करते हैं और उन पर दबाव और प्रभाव डालते हैं*।' १८८४ की पार्लियामेंट्री कमेटी ने स्वीकार किया था कि 'भारतीय रेलें अंग्रेज व्यापारियों की प्रेरणा से बनी हैं, न कि भारतवासियों के लिये †'।

---

‡ Letter of *B*engal Chamber of *C*om. [To the Sect., Govt. of *I*ndia, Finance Dept.] No: 636—1921, Dt. 11th March 1921.

$ Dutt, Vol. II, p. 545—46.

* V. G. Kale: Gokhale and Economic Reforms, p. 83.

† Select *C*om. [1884], Report, p. 695—608.

मि० बेल का कहना है कि "अंग्रेजी वस्तुओं के प्रचार के लिये भारत में रेलवे की अधिकाधिक वृद्धि करने को गोरे व्यापारी सरकार को दबाते हैं, इसका अर्थ यह है कि रेलों से लाभ तो वे उठाएँ पर हानि भारतवासी सहें। पर सरकार को गोरों के लिये रेलवे विस्तार करना बिलकुल उचित नहीं। यदि उन्हीं के लाभ के लिये विस्तार आवश्यक है तो रेलों में धन उन्हें लगाना चाहिये और उस धन की हानि के लिये भी उन्हें ही उत्तरदायी होना चाहिये, न कि भारतवासियों को। यदि भारत को उनके लिये लूटने का ही स्थान बनाना है तो हमें यह तो न कहना चाहिये कि हम भारत के हित के लिये रेलें बनाते हैं¶।"

अंग्रेज व्यापारियों के हस्तक्षेप पर एक बार दृष्टिपात करने से स्पष्ट है कि यहाँ रेलें हमारे हित के लिये नहीं बनी। गारन्टी कम्पनियों की शर्तें, प्रत्यक्ष हानि होने पर भी उत्तरोत्तर वृद्धि, विदेशों को जाने और वहां से आने वाले माल के लिये कम भाड़ा लेना, रेलवे के उच्च पदों पर गोरों को नियुक्त करना, रेलों के लिये आवश्यक वस्तुएँ अधिक मूल्य देकर इंगलैंड में खरीदना, विदेशी पूंजी का उपयोग, यात्रियों और माल के आवागमन के सम्बन्ध में पक्षपात पूर्ण व्यवहार, इत्यादि सारी समस्याएँ निर्माणोद्देश्य के विषय में हमारे कथन का अक्षरशः समर्थन करती हैं। इन बातों का विचार दूसरे दूसरे प्रसंग में आगामी प्रकरणों में किया गया है।

¶ Bell, Ry. Policy, p. 254–55.

तीसरा प्रकरण ।

पूंजी का प्रतिफल ।

यह तो विगत प्रकरण में लिखा जा चुका है कि यहां रेलवे बनाने का उद्देश अन्य देशों से विपरीत है। अतएव विदेशों में रेलों से जो जो लाभ हुए भारत केवल उन्हीं से वञ्चित नहीं रहा, पर भारत को रेलों से अनेक हानियाँ हुईं और हो रही हैं। जो हानियाँ हो रही हैं उनमें पहिला प्रश्न पूंजी के प्रतिफल का है। अर्थात् रेलवे में जितना धन व्यय हुआ है, उसके प्रतिफल में रेलों से कितनी आय हो रही है, यह विचारणीय है। पहिले लिख चुके हैं कि रेलों में जो ७१८ करोड़ रुपये व्यय हुए हैं उनमें ६४५ करोड़ सरकारी रेलों में लगे हुए हैं। स्विंट आदि कम्पनियों के जो ३९। करोड़ (पहिले प्रकरण में कम्पनियों का मूलधन ४८॥ करोड़ लिखा है, पर उसमें ९॥ करोड़ निजाम-राज्य-द्वारा-गारंटी-प्राप्त-कम्पनी का मूलधन भी शामिल है) हैं, उनसे सरकार का बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है—इसी प्रकरण में अन्यत्र इस बात पर विचार किया है। अतएव इन ३९। करोड़ के हानि-लाभ का विचार सरकारी धन के साथ ही होना चाहिये। देशी राज्यों

के रेलपथों में ३३ करोड़ (२३॥ करोड़ देशी राज्यों के और ९॥ करोड़ निजाम-गारन्टी-कम्पनी के) लगे हुए हैं। यह धन सरकारी और सरकारी सहायता प्राप्त कम्पनियों की रेलों में व्यय हुए धन की तुलना में अत्यल्प है। अतः देशी राज्यों की रेलों में व्यय हुए धन को छोड़ कर सरकारी रेलों में (रिबेट आदि कम्पनियों को पूंजी सहित) जो धन विनियोग हुआ है उसके प्रतिफल का ही हम विचार करेंगे।

अमेरिका और इंगलैंड आदि देशों में राज्यों और धनाढ्यों को अपने अपने रेलपथों से अच्छी आय हो रही है—उन्हें ५-६ प्रति सैकड़े से अधिक वार्षिक लाभ होता है*। उक्त देशों में धन की प्रचुरता के कारण व्याज की दर २-३ प्रति सैकड़ा है। यहां साधारण व्याज की दर ६-७ प्रति सैकड़ा है। अतएव अमेरिका आदि में जो ५-६ प्रति सैकड़ा आय हो रही है, वह यहां के १०–१२ प्रति सैकड़े के समान है। यहाँ की रेलों से आय होना तो दूर रहा, पर गारन्टी आदि के कारण सरकार को अत्यन्त हानि हुई और अब भी प्रायः हानि ही होती है।

यहाँ इस समय विदेशियों का राज है। अतएव सरकार को जो हानि होती है उसका अर्थ यह नहीं है कि विदेशी शासकों को हानि होती है। रहस्य यह है कि सरकार हम से जो कर लेती है उसी से हानि की पूर्ति की जाती है। इसलिये जो हानि सरकार को होती है, वह हमें ही होती है, यह समझना चाहिये। सरकारी रेलों में जो अरबों रुपये व्यय हुए हैं,

* Raper: *Ry.* Transportation.

वे भी भारतवासियों के ही हैं। जो ऋण सरकारी रेलों के लिये भारत अथवा इंगलैंड में लिया हुआ है, उसका ब्याज भी भारतवासियों को भाड़े के अथवा कर के रूप में देना पड़ता है। सारांश यह है कि सरकारी रेलें भारतवासियों की सम्पत्ति है और यह बात निर्विवाद भी है।

हानि का आदि कारण पुरानी गारंटी कम्पनियां थीं। गारन्टी कम्पनियों से कैसे और क्यों हानि हुई यह आगामी प्रकरण में लिखा है। यहां केवल हानि के अङ्क मात्र लिख देते हैं:—

१८४८ से १८५८ तक गारन्टी और सर्प्लस के कारण सरकार को हानि...	रु०	२,२५,००,००० *
१८५८ से १९०० तक गारंटी से हानि···	रु०	७७,५०,००,००० †
,, ,, सर्प्लस से हानि···	रु०	१७,००,००,००० ‡
१९०० से १९०८ तक गारंटी और सर्प्लस से हानि ··· ··· ···	रु०	३,२५,००,००० ¶
कुल हानि	रु०	१००,००,००,००० (एक अरब)

कम्पनियों को जो धन गारन्टी-इन्टरेस्ट और सर्प्लस-प्रोफिट का दिया जाता था, उससे जितनी कम आय रेलवे से होती थी, वही हानि के रूप में लिखी गई है। वास्तव में जो धन

* Select Com. (1884) Report, p. 706.

† Acworth Com. Report, Vol. I, p. 99; Tiwari: Indian Rys., App. 3.

‡ Select Com. (1884) Report, p. 706.

¶ Tiwari: Indian Rys., App. 2 and 3.

गारन्टी आदि का दिया गया, वह बहुत अधिक था। सर्प्लस के सम्बन्ध में यह प्रश्न हो सकता है कि जब रेलवे की आय गारन्टी-इन्टरेस्ट के लिये ही पर्याप्त नहीं होती थी, फिर सर्प्लस कहां से आसकता था? लुटेरे व्यापारियों के हिसाब की विचित्र प्रणाली है। आगामी प्रकरण से यह स्पष्ट हो जायगा कि सर्प्लस न होने पर भी उसका किस प्रकार उद्भव हो जाता था। यदि उपर्य्युक्त हानि का साधारण ब्याज फैलाया जाय तो २५० करोड़ रुपये होते हैं! और चक्रवर्ती ब्याज से कुल हानि (१९२० तक) १० अरब से कुछ अधिक होती है। विनिमय के कारण जो करोड़ों की हानि हुई वह, लागत से जो ५० करोड़ रुपये कम्पनियों को अधिक दिये गये वे, और कम्पनियों का अपव्यय उपर्युक्त एक अरब से पृथक् हैं। सारे अङ्कों को जोड़ने से पुरानी गारन्टी-कम्पनियों के कारण सरकार को कम से कम दो अरब की हानि हुई; ब्याज इससे पृथक् है।

सरकारी रेलपथ का आरम्भ १८६९ में हुआ, और १८६९ से १९०० तक सरकारी रेलों से ७ करोड़ की हानि हुई*। इसके पश्चात् १९२० तक एक अरब का लाभ बताया जाता है*। अर्थात् १९०१ से १९१० तक २ करोड़ और १९११ से १९२० तक ८ करोड़ प्रति वर्ष औसत लाभ। पर १९१६ में ११॥ करोड़, १९१७ में १५ करोड़, और १९१८ में १६ करोड़। इन वर्षों (१९१६–१८) के अधिक लाभ का

* Tiwari, Indian Rys., App. —Based on Ry., Reports.

कारण युद्ध समय में रेलवे-सड़क, डिब्बे, इञ्जिन आदि की मरम्मत न होना था। १९२० के पश्चात्—(रेलवे रिपोर्टों क अनुसार)—

१९२०—२१ में ४, ७८, ०६, ००० रु० का लाभ।
१९२१—२२ में ९, २७, ३०, ००० रु० की हानि।
१९२२—२३ में १, २१, ६६, ००० रु० का लाभ।

इस सम्बन्ध में अधिक विवेचना करने के पहले अर्थ-शास्त्रज्ञों के शब्दों में यह कहा जा सकता है कि गत २०-२२ वर्ष में जो लाभ दीख रहा है उसकी लाभ संज्ञा नहीं हो सकती, क्योंकि साधारण नियमों के अनुसार इस लाभ से पहली हानि को पूरा करना उचित है। उस हानि की पूर्ति होने पर जो शेष रहे वही लाभ कहा जा सकता है। वार्षिक हानि लाभ का हिसाब सरकारी रिपोर्टों में निम्न लिखित रीति से है। उदाहरणार्थ १९२१-२२ की ९। करोड़ की हानि और १९२२-२३ के १। करोड़ के लाभ का हिसाब देखिये—

आय	१९२१-२२	१९२२-२३
	रु०	रु०
कुल आय	८१,६९,२७,३८०	९३,२२,१४,२१८
सरकारी सहायता प्राप्त कम्पनियों से सरकार को सर्प्लस का लाभ	२४,७३,५७७	२६,४०,८८४
जोड़	८१,९४,००,९५७	९३,४८,५५,१०२

व्यय

संचालन-व्यय	६५,५५,८८,१५०	६६,१७,१५,७२७
प्रतिनिधि कम्पनियों कोसर्प्लस	१,०६,४०,१२२	६६,४०,५०१
प्रतिनिधि कम्पनियों को उनके मूलधन का तथा उनके द्वारा लिये हुए ऋण का ब्याज	३,३५,१७,३५३	३,३५,५५,६१२
सरकार द्वारा रेलवे के लिये लिये हुए ऋण का ब्याज	१५,६५,४६,७५३	१६,३४,४७,३४६
वार्षिक किस्तें और उनका व्याज ...	५,५१,१६,१५८	५,६०,५३,२२४
कम्पनियों को सब सीडी (सहायता)	७,१६,६२२	६,४३,४६०
जोड़	६१,२१,३१,४५८	६२,२६,५५,८७३
हानि	६,२६,३०,५०१ लाभ	१,२१,६६,२२६

रेलों में व्यय हुई पूँजी के प्रतिफल में प्रति सैकड़ा कितनी आय होती है, इसका हिसाब सरकारी रिपोर्टों में निम्नलिखित रीति से किया जाता है:—

उपर्युक्त सूची के अनुसार १६२१-२२ में—

कुल आय रु० ८१,६६,२७,०००

व्यय ··· रु० ६६,६२,२८,००० (संचालन व्यय और सर्प्लस)

लाभ ··· रु० १५,०६,६६,०००

मूलधन रु० ६०६,००,००,००० (किस्तों की रकम काटकर) । अर्थात् २॥ प्रति सैकड़ा लाभ । कहा जाता है कि '१९२१-२२ में संचालन व्यय अधिक हुआ, इसलिये इस वर्ष के हिसाब पर लाभ का अनुमान करना उचित नहीं।' युद्ध काल को छोड़कर (युद्ध-काल में अनक अनिवार्य कारणों से अधिक लाभ हुआ था) १९१३-१४ में ही सब से अधिक लाभ था। अतएव १९१३-१४ के अङ्कों के आधार पर लाभ का हिसाब करना सर्वथा उचित है। १९१३-१४ में—(देखो, *Retrenchment Com. Report, p. 95)*—

कुल आय	रु०	५६,३०,६८,०००
व्यय	रु०	३०,०१,१४,०००
लाभ	रु०	२६,२९,५४,०००

मूलधन रु० ५२३,८८,४७,००० अर्थात् ५ प्रति सैड़का लाभ। और १९२२-२३ में (इसी वर्ष की रेलवे रिपोर्ट के अनुसार)—

कुल आय	रु०	९३,२२,१४,२१८
व्यय	रु०	६६,८६,५६,२२८
लाभ	रु०	२६,३५,५७,९९०

मूलधन रु० ६२६,५०,००,०००* अर्थात् ४। प्रति सैकड़ा लाभ।

* रिट्रेंचमेंट कमेटी के अनुसार १९२१-२२ तक ६४५ करोड़ रुपया मूलधन था। १९२२-२३ में २२॥ करोड़ और व्यय होने से १९२२-२३ में ६६७॥ करोड़ था। इसमें से ४१ करोड़ किस्तों के (३९ करोड़ ७ लाख १९२१-२२ तक और २ करोड़ २३ लाख १९२२-२३ में दिये गये —Ry. Report, 1222—23, Vlo., 1, p. 9) काटने पर ६२६॥ करोड़ रहते

उपर्युक्त सरकारी हिसाब प्रणाली ठीक नहीं है। वास्तव में १-२ प्रति सैकड़ा भी लाभ नहीं होता। क्योंकि जितना मूलधन व्यय हुआ है उतने पर हिसाब नहीं लगाया गया है। सरकारी रिपोर्टों के अनुसार भी जितना धन व्यय हो चुका है उतने पर भी हिसाब नहीं लगाया जाता। अर्थात् किस्तों के जो रुपये प्रति वर्ष दिये जाते है उन्हें मूलधन से काट कर ही हिसाब लगाया जाता है। जैसे १९२२-२३ तक ६६७॥ करोड़ रुपये व्यय हो चुके हैं पर प्रति सैकड़ा लाभ का हिसाब ४१ करोड़ (जो किस्तों के दिये जा चुके हैं) काट कर ६२६॥ करोड़ पर ही लगाया जाता है! बात यह है कि पुरानी गारन्टी कम्पनियों से जितने मूल्य में रेलें खरीदी गईं थीं वह सारा उस समय नहीं दिया गया था। परन्तु जितने रुपये में रेलें खरीदी थीं वह सारी रकम रेलवे के नाम लिखदी गई थी। और ऐसा लिखना उचित भी था। जितने रुपये उस समय

पीछे के पृष्ठ से—

हैं। पहिले प्रकरण में लिख चुके हैं कि १९२१–२२ को रेलवे रिपोर्ट में किस्तों के ३९ करोड़ काट कर सरकारी रेलों का मूलधन ५८२॥ करोड़ लिखा है। १९२२-२३ में २२॥ करोड़ और व्यय हुए [Ry. Report 1922–23, Vol. 1, p. 9] अतः १९२१-२२ की रिपोर्ट के अनुसार १९२२-२३ की रिपोर्ट में ६०५ करोड़ होने चाहियें। और इसमें से २ करोड़ (जो १९२२-२३ में दिये गये हैं) किस्तों के काटने से भी ६०३ करोड़ रहते हैं। पर हैं ६२३ करोड़! (Ry. Report, 1922–23, Vo. 1, p.9)। १९२२–२३ की रिपोर्ट के पृष्ठ २६ में इस सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है, वह स्पष्ट नहीं है।

नहीं दिये गये वे किस्तों द्वारा प्रति वर्ष दिये जारहे हैं। पर किस्तों के जितने रुपये प्रति वर्ष दिये जाते हैं उतने रेलवे के मूल्य से प्रति वर्ष घटा दिये जाते हैं! जैसे १९२१-२२ में ६०६ करोड़ रुपये थे पर १९२२-२३ में २२॥ करोड़ और व्यय होने पर ६२८॥ करोड़ होते हैं, पर रिपोर्टों में लिखे गये हैं केवल ६२६॥ करोड़ ही। क्योंकि १९२२-२३ में जो २ करोड़ किस्तों के दिये वे काट लिये गये हैं! यह एक विचित्र बात है। सर हेनरी किम्बर Sir Henry Kimber का (साउथ-इण्डियन रेलवे कम्पनी के प्रधानाध्यक्ष और लण्डन के एक प्रतिष्ठित बैंकर—महाजन) कहना है कि 'किस्तों द्वारा ऋण से मुक्त होने का बहुत अच्छा साधन है, पर जो धन किस्तों के रूप में दिया जाता है उसे वस्तु-विशेष के वास्तविक मूल्य [Valuable assets] से घटा देना [*Write off*] अनुचित है। इस प्रकार घटाने का अर्थ वस्तु-विशेष में जितना व्यय हुआ है उसे कम दिखाना है*।' इस समस्या को अच्छी तरह समझने के लिये मान लीजिये कि किसी व्यक्ति ने 'अ' वस्तु को 'ख' व्यक्ति से दो हजार रुपये में खरीदा जिसमें एक हजार नक़द दिया और एक हजार उधार किया। साधारण हिसाब किताब के नियमों के अनुसार 'क' दो हजार 'अ' वस्तु के लिये व्यय हुए लिखेगा और एक हजार 'ख' के जमा करेगा। 'क' ये एक हजार किस्तों द्वारा देना स्वीकार करता है और प्रति वर्ष १०० रुपये देता है। यदि 'क' ने ७ वर्ष में ७०० रुपये 'ख' को दे दिये हैं तो क्या ये ७०० रु० 'अ' वस्तु के मूल्य से कम कर दिये जायँगे? नहीं। किन्तु सरकारी रिपोर्टों में किस्तों के

* Acworth Com. Report, Vol. II, para 3579.

दिये हुए रुपये 'अ' वस्तु (रेलवे) के मूल्य से कम कर दिये जाते हैं ! यह दुनियाँ से निराली प्रणाली है। वास्तव में किस्तों के रुपये मूलधन से किसी प्रकार भी नहीं काटे जा सकते। अतएव किस्तों के रुपये न काट कर ही प्रति सैकड़ा लाभ का हिसाब होना चाहिये।

सबसीडी और रिबेट आदि पानेवाली कम्पनियों को निश्चित लाभ मिलता है। चाहे वह सरकार द्वारा गारन्टी या सबसीडी के रूप में हो, और चाहे वह प्रधानपथ (जो सरकारी सम्पत्ति है) द्वारा रिबेट के रूप में हो। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि इन कम्पनियों का जो धन है वह वस्तुतः सरकार को ऋण दिया हुआ है। अतः इन कम्पनियों का मूलधन सरकारी मूलधन में जोड़ कर और आय में सर्प्लस का भाग (जो सरकार को कई सबसीडी कम्पनियों से मिलता है) और व्यय में वह सबसीडी, जो सरकार कम्पनियों को देती है, जोड़कर प्रति सैकड़ा लाभ का हिसाब होना चाहिये।

जिस प्रकार जितना धन विनियोग हुआ है उतने पर लाभ का हिसाब नहीं है, उसी प्रकार जितना व्यय होता है उतना आय से नहीं काटा जाता। नियमानुसार ऋण का ब्याज भी व्यय है, पर यह व्ययमें शामिल नहीं किया जाता। ऋणके ब्याज को व्यय में शामिल करना एक सर्वमान्य व्यापारिक सिद्धान्त है। निम्न लिखित दृष्टान्त से यह बात सहज में बोधगम्य होजायगी। मान लीजिये कि कोई एक व्यक्ति एक सहस्र रुपये का ऋण लेकर कोई व्यापार करता है और उसे प्रति वर्ष ७० रुपये आय होती है। इस आय में से ६० रुपये ऋण

दाता को ब्याज के देने पर केवल १० रुपये बचते हैं। अतएव वास्तव में उसे १० रुपये का लाभ होता है (अर्थात् १ प्रति सैकड़े का) न कि ७० रुपये का। अगर ७० रुपये के स्थान में ५० रुपये की आय मान लें तो यह विषय और भी अधिक स्पष्ट हो जायगा। ५० रुपये की आय होने पर भी ब्याज के तो उसे ६० रुपये ही देने पड़ेंगे। इस प्रकार उसे १० रुपये की हानि होती है। इस अवस्था में आप यह कदापि नहीं कह सकते कि उसे जो ५० रुपये की आय हुई वह ५ प्रति सैकड़ा लाभ था। क्योंकि इन ५० रुपये को उपार्जन करने के लिये उसे ६० रुपये ब्याज के रूप में व्यय करने पड़े हैं। फिर भला इसे लाभ कौन बता सकता है ? इसलिये ऋण के ब्याज को काट करही हिसाब लगाना उचित है।

सरकारी रेलों के मूलधन से किस्तों के रुपये न काट कर और सबसीडी आदि कम्पनियों के मूलधन को उसमें जोड़ने से, साझा मूलधन होता है—

	१९२१-२२	१९२२-२३
	रु०	रु०
सरकारी रेलों में धन विनि-योग [किस्तों को न काटकर]	६४५ करोड़	६६७॥ करोड़
सबसीडी आदि कम्पनियों की पूंजी	३९ करोड़	४० करोड़
जोड़	६८४ करोड़	७१७॥ करोड़

ऋण के ब्याज को और सबसीडी को व्यय में, और सबसीडी-कम्पनियों द्वारा प्राप्त सर्प्लस को आय में शामिल करने से सरकार को १९२१-२२ में ७ करोड़ की हानि और १९२२-२३

में ३॥ करोड़ का लाभ* । अर्थात् सरकार को १९२१-२२ में एक प्रति सैकड़े से अधिक हानि और १९२२-२३ में आधा प्रति सैकड़ा लाभ ! और कहां सरकारी हिसाबसे २॥ (१९२१-२२) और ४ (१९२२-२३) प्रति सैकड़ा लाभ !! १९२२-२३ में जो लाभ हुआ उससे अधिक १९१३-१४ और युद्ध काल को छोड़ कर पहले कभी नहीं हुआ । अतएव १९२२-२३ के लाभ को ही यदि गत वर्षों का औसत लाभ मानलें तब भी आधा प्रति सैकड़ा वार्षिक लाभ लाभ नहीं कहा जा सकता ।

१९२२-२३ में जो आधा प्रति सैकड़ा लाभ है, वह भी वास्तव में जितना लाभ होता है उससे बहुत अधिक है । क्योंकि सरकारी कागजों में जितना धन-विनियोग लिखा है उसी पर उपर्युक्त हिसाब फैलाया गया है । वास्तव में मूलधन बहुत अधिक है । निम्न लिखित रकमें मूलधनमें शामिल नहीं हैं, नियमानुसार उन्हें मूलधनमें जोड़ना चाहिये । (क) भूमिका मूल्य। यह कितना है इसका सरकारी कागजोंमें भी कुछ पता नहीं है † ।

* पृष्ठ ९३-९४ की सूची के अनुसार १९२१-२२ में ९२७ लाख की हानि है । पर उस सूची में ५५१ लाख किस्तों और उनके ब्याज के हैं । इन ५५१ लाख में २२७ लाख किस्तों के हैं इसलिये ९२७ लाख की हानि में से २२७ लाख काटने पर ७ करोड़ हानि के रहते हैं । इसी तरह १९२२-२३ में १२१ लाख का लाभ लिखा है । पर जो ५६० लाख किस्तों और उनके ब्याज के हैं उनमें २२९ लाख किस्तों के हैं । इन २२९ लाख को आय से नहीं काटने पर ३५० लाख का लाभ होता है ।

† Retrench. Com. Report. p. 89.

पर रेलवे में जो भूमि है उसका मूल्य कम से कम एक अरब रुपया अवश्य समझना चाहिये। (ख) दुर्भिक्ष फंड आदि (Famine Insurance Fund और Revenue etc.) के ९५ करोड़ रुपये रेलवे में व्यय हुए हैं*। (ग) रेलवे निर्माण के लिये जो धन का आवागमन हुआ, उसके विनिमय के कारण एक करोड़ की हानि हुई थी†। (घ) प्रत्येक रेलपथ के बनने के आरम्भ से उसके तैयार होने तक के ब्याज को मूलधन में जोड़ना एक व्यापारिक नियम है और कानून भी है‡। किन्तु यह ब्याज [Interest during construction] यहां की रेलों के मूलधन में शामिल नहीं है§। इस ब्याज की कितनी रकम है, यह जानने का कोई साधन नहीं, पर करोड़ों रुपये से कम भी नहीं है। (ङ) रेलवे के जिन नये कामों में दो सहस्र अथवा इससे कम व्यय होता है, वह मूलधन में नहीं जोड़ा गया है¶। प्रधान प्रधान सरकारी ११ रेलपथों पर प्रति वर्ष रु० २००० के मूल्य के १०००--१५०० कार्यों का (प्रत्येक रेलवे के १००–१५० कार्य) होना साधारण बात है। अर्थात् २०-२५ लाख रुपये प्रति वर्ष मूलधन में नहीं जोड़े जाते। गत २० वर्ष का ही हिसाब लगाया जाय तो ५ करोड़ रुपये होते हैं। इसी प्रकार और भी कई रकमें शामिल नहीं हैं। इस बात पर रिट्रेंचमेंट कमेटी ने अत्यन्त असंतोष प्रकट किया है**।

---

* Tiwari, Indian Rys., App. 8. † App. 7.

‡ Companies Act. (1913) Sec. 107.

§ Assembly Debates Dt. 3-7-1923, p. 4212.

¶ Acworth Com. Report, Vol. II. para 6137, Assembly Debates Dt. 17-1-1923. p. 1168.

** Retrenchment Com. Report, p. 99.

(च) जो मूल्य किस्तों (Annuties and Sinking Fund) के रूप में देना स्वीकार किया गया था वह कुल ६,५०,२२,३४४ पौंड (रु० १,४२,५३,३५,१६०)था* । १६२२-२३ तक २,७५, ३४,०२८ पौंड (रु० ४१,३०,१०,४२०) दिये जाचुके हैं† । किन्तु किस्तों के और उनके ब्याज के १,५६,७३ लाख रुपये दिये गये हैं‡ । इस रकम से किस्तों के ४१,३०, लाख निकाल देने से १,१५,४३ लाख किस्तों के ब्याज के होते हैं । अर्थ शास्त्रज्ञों का कहना है कि Until the payments towards the liability incurred by purchase cease, the interest paid should form a capital charge. अर्थात् यदि किसी वस्तुका मूल्य ऋण के रूप में देना बाकी है तो उस ऋण का ब्याज उस वस्तु के मूलधन में जोड़ना चाहिये । अतएव किस्तों का ब्याज रेलवे के मूलधन में शामिल होना चाहिये ।

(छ) भारत सरकार ने (१६२० तक) जितना ऋण लिया है उसमें ३६६ करोड़ रुपये रेलों के लिये; ६७॥ करोड़ नहरों के लिये; और १६८॥ करोड़ युद्ध आदि अनुत्पादक कार्यों के लिये हैं¶ । अनुत्पादक सारा ऋण भी रेलवे के मूलधन में जोड़ना चाहिये क्योंकि यदि गारन्टी आदि से हानि नहीं हुई होती तो इस ऋण के लेने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। लार्ड लारेंस के मत से भी गारंटी आदि से जो हानि हुई वह मूलधन में

* Ry. Report, 1921-22, Vol. I, p. 9.

† Ry. Report 1922-23, Vol. I, p. 9.

‡ १६२० तक के लिये Tiwari: Indian *Rys*., Appendix 7; और १६२१ से १६२३ के लिये रेलवे की वार्षिक रिपोर्ट ।

¶ Acworth Com. Report, Vol. II, p. 192-97.

शामिल होनी चाहिये ‡।

भूमि के मूल्य से आदि लेकर अनुत्पादक ऋण तक जो अरबों रुपये रेलवे के हिसाब में नहीं है, उन्हें शामिल करने से १९२२-२३ में जो आधा प्रति सैकड़ा लाभ ऊपर लिख आये हैं उससे भी बहुत कम लाभ होता है! अतएव स्पष्ट है कि सरकार ने रेलों में जो धन विनियोग किया है उसके प्रतिफल में कुछ भी आय नहीं होती। रिट्रेंचमेंट कमेटी का कहना है कि 'रेलों में व्यय हुए धन का उचित प्रतिफल न मिलने से ही भारत-सरकार की आर्थिक दुर्बलता और दुर्दशा होरही है। रेलवे से जो हानि होरही है उसे सहने में भारतवासी असमर्थ हैं। रेलवे में सरकार का जो अतुल धन लगा हुआ है उसका उचित प्रतिफल अवश्य मिलना चाहिये*'।

अब यह विचार करना आवश्यक है कि लाभ न होने का कारण क्या है? पहले लिख चुके हैं कि रेलोंके अन्य दुष्परिणामों के साथ साथ रेलवे से आय नहीं होना भी निर्माणोद्देश का ही कारण है। पर निर्माणोद्देश के अन्तर्गत ही पूंजी का उचित प्रतिफल न मिलने के प्रधान प्रधान कारण निम्न लिखित हैं:—

(क) पुरानी गारन्टीकम्पनियां। (ख) शीघ्र विस्तार।
(ग) प्रतिनिधि कम्पनियां। (घ) अन्यान्य कारण।

आगामी प्रकरणों में इन बातों पर क्रमशः विचार किया गया है।

---

‡ Assembly Debates Dt. 3-7-23. p. 4212.
* Retrench. Com. Report, para 5.

चौथा प्रकरण ।

पूंजी का प्रतिफल (पुरानी-गारन्टी-कम्पनियां)

पुरानी-गारन्टी कम्पनियों के साथ सरकार की जो शर्तें थीं वे सरकार के लिये अत्यन्त हानिकारक थीं। इन शर्तों के कारण सरकार को बहुत हानि सहनी पड़ी। गारन्टी, सर्प्लस और उसका छः छः मास से हिसाब, निश्चित विनिमय और खरीदने के विचित्र नियम, आदि हानि के प्रधान कारण थे।

गारन्टी। गारन्टी की कोई आवश्यकता ही नहीं थी। मि० थोरटन (W. Thornton) ने पार्लियामेंट्री कमेटी से कहा था कि 'इंगलैण्ड में बहुत-सा धन निरर्थक पड़ा हुआ था। अतएव निस्सन्देह भारतीय रेलों के लिये यथेष्ट धन बिना गारन्टी मिल सकता था*।' यदि गारन्टी देना ही आवश्यक था तो ५ प्रति सैकड़ा बहुत अधिक था†। उस समय इंगलैंड में २-३ प्रति सैकड़े पर बहुत धन मिलता था‡। कनाडा और दक्षिण अमेरिका आदि को इस दर से बहुत-सा धन इंगलैंड से जारहा था। लार्ड लारेंस ने भी स्वीकार किया था कि ५ प्रति सैकड़ा गारन्टी वास्तव में बहुत अधिक है‡। गारन्टी

* Select Com,(1872) Report, paras 3030-31.

† Select Com, (1884) Report, para 6943.

‡ Select Com, (1873) Report, para 4777.

अनावश्यक और अत्यधिक तो थी ही, पर इसके कारण एक महान अनर्थ यह हुआ कि कम्पनियों ने बहुत अधिक अपव्यय किया। यहाँ की रेलों के बनाने में जितना अपव्यय हुआ उतना संसार में कहीं नहीं हुआ है*। सन् १८५६ में लार्ड रिपन ने लिखा कि 'कम्पनियां मितव्ययिता का बिलकुल ध्यान नहीं रखती हैं। क्योंकि कम्पनियां कितना ही अपव्यय क्यों न करें, सरकार तो उन्हें जितना व्यय होगा उसका निश्चित लाभ—गोरन्टी-इंटरेस्ट—देने को बाध्य ही है। और जब किसी कम्पनी की इच्छा होगी तभी वह अपना रेलपथ सरकार को दे कर उसका सारा मूल्य (अपव्यय सहित) सरकार से ले सकती है। इस अवस्था में कम्पनी को अपव्यय का क्यों विचार होने लगा?†' लार्ड लारेंस ने‡ तथा १८७२ और १८८४ को पार्लियामेंट्री कमेटियों के सन्मुख अनेक अनुभवी अंग्रेजों ने भी लार्ड रिपन के उक्त शब्दों का समर्थन किया था $।

सर ज्यूलैंड डनवर ने सरकारी रिपोर्ट में लिखा कि 'कम्पनियों ने १८–२० सहस्र पाउंड प्रति मील व्यय किये हैं। पर सरकारी रेलपथों में केवल ४ से ६ सहस्र पौंड व्यय हुए हैं §। इन ४ से ६ सहस्र पौंड के व्यय के सम्बन्ध में जनरल स्ट्रेची का कहना है कि 'इतना व्यय भी पर्व अनिवार्य

* Dutt, Vol. II, p. 353.

† Bell; Ry. Policy, p. 65–66.

‡ Lord Mayo's Despatch Dt. 11th March, 1869.

$ Select Com. (1872) Report, paras 1856-64, 3030-31, 8867; Select Com. (1884) Report, paras 304, 3212.

§ Ry. Report, 1872–73, p. 23–25.

कारणों से अधिक हुआ है *।' सरकारी हिसाब-परीक्षक (auditor कर्नल-चेसनी [Col.Chesney] ने १८७२ की कमेटी से कहा था कि 'ई० आई० रेलवे कम्पनी ने २ करोड़ पाउण्ड (उस समय के विनिमय से २० करोड़ रुपये) व्यय किये हैं, उनमें ४० लाख पाउण्ड (४ करोड़ रुपये) का अपव्यय है। हम ये ४० लाख कम्पनी को देना नहीं चाहते, पर कम्पनियों की सरकार से जो शर्तें हैं उनके कारण एक पाई भी कम नहीं दे सकते†।' सारांश यह है कि गारन्टी इण्टरेस्ट के कारण निर्माण कार्य में मितव्ययिता का कोई प्रश्न ही नहीं था ‡। प्रत्युत जितना अधिक व्यय होता उतना अधिक कम्पनियों को लाभ था §। क्योंकि उस समय कम्पनियों को इंगलैण्ड में ३ प्रति सैकड़ा के ब्याज से इच्छानुसार धन मिल सकता था। और भारत में उन्हें ५ प्रति सैकड़ा मिलता था। इस प्रकार कम्पनियों को २ प्रति सैकड़ा लाभ होता था। अतएव जितना अधिक व्यय होता उतना अधिक ही उन्हें लाभ था। इसी कारण से कम्पनियां १ रुपये के स्थान में ४ रुपये व्यय करती थीं। यदि कोई कार्य अधिक विस्तार से करने की आवश्यकता नहीं होती, तब भी उसे अनावश्यक विस्तार से किया जाता था। अनावश्यक विस्तार से करने पर भी जो काम २ रुपये में हो सकता था उसमें ४ रुपये व्यय किये जाते थे!

* Select Com. [1884] Report, paras 69–73.

† Select Com. [1872] Report, para 2623.

‡ Robertson's Report, para 17.

§ Govt. of India, Despatch Dt. 22-3-1869 [Bell: Ry. Policy. p. 98]; Select Com. [1884] Report, para 304.

. संचालन में भी कम्पनियाँ बहुत अपव्यय करती थीं*। संचालन में मितव्यय करने पर भी गारन्टी-इन्टरेस्ट से अधिक आय होने को तो कोई सम्भावना थी ही नहीं, फिर अपव्यय कर क्यों न गोरे नौकरों को अधिक वेतन दिया जाता और क्यों न इंगलैण्ड की वस्तुओं का अधिक मूल्य देकर रेलवे के लिये मँगाई जातीं। गारन्टी ही इतनी अधिक थी कि गारन्टी के समान भी रेलवे से आय होने की कोई सम्भावना नहीं थी। पर निर्माण और संचालन में अधिक अपव्यय होने के कारण रेलों से बहुत हानि होती थी। इसलिये गारन्टी को पूरा करने में सरकार को १८४८ से १९०८ तक ८२॥ करोड़ रुपये की हानि हुई †। अर्थात् सरकारने जितना गारन्टी-इंटरेस्ट कम्पनियों को दिया उससे रेलवे की आय ८२॥ करोड़ रुपये कम हुई। परन्तु कम्पनियों को १८४८ से १९०८ तक लगभग ३ अरब रुपये गारन्टी इंटरेस्ट के दिये गये अतएव देश को तो ३ अरब की ही हानि हुई समझनी चाहिये।

सरप्लस।

पहले तो यह नियम था कि संचालन व्यय और गारन्टी इंटरेस्ट काट कर जो शेष आय (सरप्लस-प्राफिट) रहे, उसमें गारन्टी-इंटरेस्ट द्वारा सरकार को विगत वर्षों में जो हानि हुई हो उसे पूरा करने के पीछे सारा सरप्लस कम्पनियों को दे दिया जाय। १८७४ में जी०आई०पी०रेलवे-कम्पनी का रेलपथ सरकार खरीद सकती थी। इस लिये १८६९ में कम्पनी ने भारत

* Sel ect Com. (1878–79) Report, p. IV,V; Sir Lawrence's (Viceroy) Despatch Dt. 9th Jany. 1869 (Rly. Policy, p. 94–95).

† Acworth ... Report, p. 99.

मंत्री से नहीं खरीद ने के लिये विनय की। इसपर भारत मंत्री ने कहा कि 'यदि कम्पनी सर्प्लस का आधा भाग सरकार को देना स्वीकार करे तो, सरकार उसकी रेलवे नहीं खरीदेगी।' कम्पनी ने यह इस शर्त पर स्वीकार किया कि गारन्टी के कारण पहले जो हानि हो चुकी थी (जिसे सर्प्लस द्वारा पूरा करने का नियम था) उसका सर्प्लस से कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा। १८७० में भारत मंत्री ने जी०आई०पी तथा अन्य गारन्टी कम्पनियों से उपर्युक्त शर्त स्वीकार करली। पर आधा सर्प्लस मिलने से सरकार को कुछ लाभ नहीं था, क्योंकि गारन्टी से बहुत हानि हो चुकी थी अतएव यदि आधा सर्प्लस सरकार न लेती तो सारा सर्प्लस गारन्टी की क्षति को पूरा करने में काम आता।

गारन्टी-इंटरेस्ट बहुत अधिक था। इस लिये कम्पनियों को सर्प्लस देने की कोई आवश्यकता नहीं थी। इसके अतिरिक्त सर्प्लस का हिसाब ६-६ महीनों से होता था। यह बहुत ही हानिकारक था। हानिलाभ का हिसाब प्रति वर्ष होता है—यह एक साधारण नियम है। पर भारत के अंग्रेज शासकों ने नियम किंवा नीति और रीति का कभी कोई विचार ही नहीं किया। एक वर्ष के हिसाब करने से जितना सर्प्लस कम्पनी के भाग में आना चाहिये था, उससे बहुत अधिक ६-६ महीनों के हिसाब से मिला। गारन्टी की अधिकता के कारण सर्प्लस प्रायः होता ही नहीं था, पर ६-६ महीनों से हिसाब होने के कारण उसका उद्भव हो जाता था। उदाहरणार्थ मान लीजिये कि एक कम्पनी को गारन्टी-इंटरेस्ट के १०० रुपये प्रति वर्ष दिये जाते हैं। और एक वर्ष रेलवे से आय हुई केवल ८५ रुपये।

अर्थात सर्प्लस नहीं है किन्तु सरकार को ५ रुपये की हानि है। रेलवे की आय वर्ष के एक भाग में अधिक होती है और दूसरे भाग में कम। जो ९५ रु० की आमदनी हुई, यदि वह प्रथम ६ मास में ६५ रुपये और दूसरे ६ मास में ३० रुपये है तो प्रथम ६ मास के ६५ रुपये में से ५० रुपये गारन्टी के देने के पश्चात् सर्प्लस १५ रुपये होता है। इस सर्प्लस का आधा भाग —७॥ रुपये— कम्पनी को मिल गया। पर दूसरे छः महीनों में आमदनी केवल ३० रुपये की है, अतएव गारन्टी के ५० रुपये देने से सरकार को २० रुपये की हानि होती है। सरकार को सारे वर्ष में ५ रुपये की हानि थी किन्तु ६-६ महीनों के हिसाब के कारण सरकार को १२॥ रुपये की हानि (२० रु० को दूसरे छः महीनों में हानि और पहले ६ महीनों में ७॥ रुपयें का सर्प्लस के रूप में लाभ) हुई। जिन छः महीनों में गारन्टी से अधिक आमदनी होने की आशा नहीं होती थी उन्हीं ६ महीनों में कम्पनियाँ सारे वर्ष का अधिकतर व्यय करती थीं, जिस से सर्प्लस-वाले ६ महीनों में कृत्रिम सर्प्लस की अत्यधिक वृद्धि हो जाती थी। यह बात कपोल कल्पित नहीं है, परन्तु वास्तव में सर्वथा सत्य है। सरकारी रिपोर्टों में यह बात स्वीकार की गई है *। तथा लार्ड लारेंस ने भी इस दुर्व्यवस्था को स्पष्ट शब्दों में आलोचना की थी †।

विनिमय।

कम्पनियां जो धन इंगलैण्ड में भारतमंत्री के पास जमा कराती थीं वह निश्चित विनिमय की दर से (at fixed rate of

---

* Robertson Report, para 17.

† Bell; Ry. Policy, p. 94.

exchange) उन्हें भारत में मिलता था और जो गारन्टी इंटरेस्ट और सर्प्लस-प्राफिट कम्पनियों को मिलता था वह भी निश्चित विनिमय की दर से इङ्गलैन्ड में देना पड़ता था। कम्पनियों के साथ विनिमय की दर प्रति रुपया २२ पैंस निश्चित थी। सरकार ने कम्पनियों के साथ जब यह शर्तकी थी तब यही दर थी। पर रेलवे के लिये इङ्गलैण्ड से प्रचुर धन आने के कारण दर स्थिर नहीं रह सकी *। २२ पैंस के स्थान में २४ पैंस हो गई। इससे सरकार को बहुत हानि हुई। क्योंकि २२ पैंस के हिसाब से कम्पनी को १०० पौण्ड के १०९० रुपये देने को सरकार बाध्य थी। परन्तु विनिमय २४ पैंस हो जाने से सरकार को १०० पौण्ड के केवल १००० रुपये ही मिलते थे। अर्थात् १०० पौण्ड इंगलैण्ड से भारत लाने में सरकार को प्रत्येक १००० रुपये पर ९० रुपये के लगभग हानि होती थी। सदैव २४ पैंस का भाव नहीं था अतएव प्रति सहस्र ९० की हानि न मानकर ६० की हानि अर्थात् ६ प्रति सैकड़ा की हानि मान लेना उचित है।

जब कम्पनियों का गारन्टी-इंटरेस्ट और सर्प्लस-प्राफिट भारत से इङ्गलैण्ड जाने लगा, तब विनिमय घटने लगा *। १८७१ में २३ पैंस, १८७५ में २२ पैंस, १८७७में २१ पैंस, १८९२ में १४ पैंस हो गया ‡। इस अधःपतन के कारणभी सरकार को बहुत हानि हुई। इस हानि को समझने के लिये मान लीजिये कि किसी एक कम्पनी का मूलधन १०० पौण्ड था। अर्थात् १०९०

* Select Com. (1884) Report, para 4295.

‡ Exchange Com. Report, Vol. II, p. 7.

रुपये थे, जैसा ऊपर लिख चुके हैं। इस मूलधन का गारन्टी-इंटरेस्ट ५४॥ रुपये होता है। पर गारन्टी-इंटरेस्ट निश्चित विनिमय की दर से इंगलैंड में देना पड़ता था। इसलिये ५४॥ रुपये के लिये २४ पैंस की दर से (गारन्टी आदि के लिये विनिमय २२ पैंस निश्चित था, पर १८७० में जब कम्पनियों की शर्तों का परिवर्तन किया गया, तब २४ पैंस कर दिया गया था) ५ पौण्ड ६ शिलिङ्ग इंगलैंड में देने पड़ते थे। पर इन ५ पौण्ड ६ शि० का मूल्य १८६२ में ६३॥ रुपये था (१४ पैंस के विनिमय से)। यदि १६ पैंस का औसत मान लिया जाय तब भी ५ पौण्ड ६ शिलिंग का मूल्य ८१॥। रुपये होता है। यद्यपि ५ प्रति सैकड़ा से गारन्टी-इन्टरेस्ट के ५४॥ रुपये होते थे तथापि उसे (गारन्टी-इन्टरेस्ट को) इङ्गलैंड में निश्चित विनिमय से देने की शर्त के कारण ५४॥ के स्थान में ८१॥। देने पड़ते थे। अर्थात् ५ प्रति सैकड़ा के स्थान में ७॥ प्रति सैकड़ा देना पड़ता था * !

निश्चित विनिमय की दर के कारण एक अनर्थ यह भी होता था कि जब सर्प्लस नहीं रहता था, तब भी इसको (विनिमय को) कृपा से उसका (सर्प्लस का) उद्भव हो जाता था। इस सम्बन्ध में उपर्युक्त उदाहरण के अङ्क ले लीजिये। यदि हम मानलें कि रेलवे की एक वर्ष में आय २०० रु०, संचालन व्यय १२३॥ रुपये और लाभ ७६॥ रुपये था तो मालूम होगा कि गारन्टी इंटरेस्ट के ८१॥। रुपये (उपर्युक्त हिसाब से) देने पर

* Bell; Ry. Policy, p. 244; Ry. Report (1894-95) p. 9; Accountant General (P. W. D.)'s Note on Ry. Accounts (1893–94), para 45.

वास्तव में सर्प्लस नहीं था प्रत्युत सरकार को ५। रु० की हानि थी। पर नियम यह था कि निश्चित विनिमय से जितना गारन्टी-इन्टरेस्ट होगा वही आय से काटा जायगा, न कि जितना सरकार को देना पड़ेगा। अतएव ७६॥ की आय से केवल ५४॥ रु० (जो निश्चित विनिमय से गारन्टी इंटरेस्ट के होते थे) ही काटे जा सकते थे, न कि ८१॥। रुपये जो कि वास्तव में सरकार को देने पड़े थे। यद्यपि सर्प्लस नहीं था पर उक्त हिसाब से २२ रुपये सर्प्लस के रह गये और जिस का आधा भाग—११ रुपये—कम्पनी को सर्प्लस के नाम से मिल गया। स्पष्ट है कि निश्चित विनिमय के कारण १०६० रुपये इङ्गलैण्ड से भारत लाने में कम्पनी को ६ प्रति सैकड़ा लाभ होता था (जैसा ऊपर लिख चुके हैं), इसके अतिरिक्त ५ प्रति सैकड़ा के गारन्टीड-इंटरेस्ट के ५४॥ रुपये के स्थान में ८१।॥ रुपये गारन्टी-इन्टरेस्ट के और सर्प्लस नहीं होने पर भी ११ रुपये के लगभग सर्प्लस के कम्पनी को मिलते थे। अर्थात् ५ प्रति सैकड़े के गारन्टीड-इन्टरेस्ट के स्थान में ८-६ प्रति सैकड़ा मिलता था! इस बात की सत्यता के प्रमाण में सरकारी रिपोर्ट से उद्धृत एक उदाहरण देखिये। १८६३-६४ का जी० आई० पी रेलवे कम्पनी का हिसाब इस प्रकार है:—

गारन्टीड-इन्टरेस्ट के कम्पनी को इङ्गलैण्ड में दिये गये	रु०	१,६८,८२,०५०
सर्प्लस-प्राफिट कम्पनी को दिया गया	रु०	३०,४०,३३१
जोड़	रु०	२,२६,२२,३८१

संचालन व्यय और प्रोवीडेंट फण्ड काटकर आय.................	रु०	१,८६,२५,३३०
सरकार को हानि	रु०	४२,९७,०५१

कम्पनी को सर्प्लस के ३० लाख रुपये दिये गये अतएव सरकार को भी इतना ही लाभ होना चाहिये था। पर सरकार को हानि हुई ४३ लाख की! इसका कारण यह है कि गारन्टी के जो १९८ लाख रु० दिये गये वे १८६ लाख की आय से अधिक थे, अतः सर्प्लस नहीं था। पर विनिमय की निश्चित दर से गारन्टी के केवल १२५ लाख रुपये ही काटे गये जिससे ६० लाख सर्प्लस के बन गये और जिसका आधा भाग ३० लाख रुपये कम्पनी को मिल गये!

खरीदने के नियम।

पुरानी गारन्टी-कम्पनियों की रेलों को खरीदने के सम्बन्ध में यह नियम था कि, खरीदने के समय कम्पनी के शेयरों—हिस्सों—का जो बाजार-भाव होगा वह सरकार को देना पड़ेगा, न कि कम्पनी का मूलधन मात्र। गारन्टी और सर्प्लस के कारण कम्पनियों को आशातीत लाभ होने से शेयरों की दर बढ़ गई थी— १०० के स्थान में १४० होगई थी। जनरल स्ट्रेची के शब्दों में यह दर सर्वथा कृत्रिम थी †। क्योंकि रेलवे से आय तो होती ही नहीं थी, जो लाभ कम्पनियों को होता

† Select Com. (1884) Report, para 22 (Evidence.)

था, वह रेलवे की आय के कारण नहीं पर वह सरकार द्वारा-प्राप्त-गारन्टी आदि के कारण था। इस भाव-वृद्धि के कारण कम्पनियों को अपव्यय संमिश्रित मूलधन से ५० करोड़ रुपये‡ और अधिक दिये गये। कुल लगभग १८० करोड़ रुपये दिये गये थे। यदि सरकार ने स्वयं रेलें बनाई होतीं तो १८० करोड़ के स्थान में केवल ८० करोड़ रुपये से अधिक व्यय कदापि न होता। क्योंकि एक तो निर्माण में अपव्यय न हुआ होता और न ५० करोड़ रुपये (जो मूलधन से अधिक दिये गये) देने पड़ते।

गारन्टी कम्पनियों से जो हानियां हुईं उनमें भूमि के मूल्य का ब्याज तथा सरकारी संरक्षण और निरीक्षण का व्यय और जोड़ना चाहिये। भूमि के मूल्य का ब्याज प्रति वर्ष करोड़ों रुपये से कम नहीं था। तथा सरकारी निरीक्षण का व्यय कम से कम १० लाख रुपये प्रति वर्ष थे। केवल जी० आई० पी० रेलवे के निरीक्षण और नियंत्रण का १८६४ में १,७३,७३८ रु० थे (Tiwari; In. Rys., p. 235)

‡ Acworth Com. Report, Vol. II, para 6981.

पांचवां प्रकरण ।

पूंजी का प्रतिफल (शीघ्र विस्तार)

यहां की रेलों से आय न होने का सर्वोपरि कारण यह है कि रेलों के विस्तार में अत्यन्त शीघ्रता की गई है। रेलवे के विस्तार में जो धन व्यय किया जाता है, उसका प्रतिफल (ब्याज) रेलवे की आय के रूप में प्राप्त होगा अथवा नहीं, इसका कुछ भी विचार न कर, अंग्रेज व्यापारियों की प्रेरणा से किंवा स्वेच्छा से, सरकार अति शीघ्र विस्तार के लिये सदैव तल्लीन, अत्यन्त व्यग्र और उत्सुक रही है। इस उद्विग्नता का शमन करने के लिये जिन प्रक्रियाओं का प्रयोग किया गया है वे ही पूंजी की अनुत्पादकता के मूल कारण हैं। जिन प्रयोगों का उपयोग किया गया उनमें प्रधानतः पुरानी गारन्टी कम्पनियों की शर्तें और अविरत और अपरिमित व्यय कहे जा सकते हैं। येन केन प्रकारेण शीघ्र विस्तार हो, इस उत्कृष्ट उत्कण्ठा के कारण ही पुरानी गारन्टी कम्पनियों से घातक एवं अत्यन्त अनुचित शर्तें की गई थीं। गारन्टी कम्पनियों के सम्बन्ध में विगत प्रकरण में लिख चुके हैं, यहां पर प्रसंगवश केवल इतना ही लिखना बहुत है कि उक्त शर्तों के कारण बहुत अधिक अनुत्पादक मूलधन की वृद्धि हो गई है। पुरानी गारन्टी कम्पनियों ने जान बूझ कर १०० रुपये के स्थान

में कम से कम २०० रुपये व्यय किये और सरकार ने जब उनकी रेलें खरीदीं तब इन २०० रुपये के ३०० रुपये देने पड़े। अर्थात् जो लाभ १०० रुपये पर हो सकता था वह अब ३०० रुपये पर हो रहा है। यहां की कौंसिल ने एक बार लिखा था कि 'अपव्यय होने के कारण रेलें सदैव के लिये अलाभकारक होगई हैं। भारत जैसे दीन-दरिद्र देश के लिये यह समस्या बहुत महत्व की है। यहां की रेलों के लिये आवश्यक धन केवल गारंटी पर ही मिलता है अतः रेलवे से आय न होने से गारंटी-इंटरेस्ट का असह्यभार देशवासियों को—करदाताओं को—सहन करना पड़ता है *।

शीघ्र-विस्तार किस प्रकार हो सकता है, इस महती समस्या को ही सुलझाने के लिये सरकार ने समय समय पर कमेटी नियुक्त की। सब से पहले १८५७ में एक पार्लियामेंट्री कमेटी भारतीय रेलों की वृद्धि में जो विलम्ब हो रहा था उसका अनुसंधान करने के लिये नियुक्त की गई थी। इसके पीछे जो पार्लियामेंट्री कमेटियां नियुक्त हुई उनमें १८७१-७४ की कमेटियों की अपेक्षा १८८४ की कमेटी बहुत महत्वपूर्ण थी। इस कमेटी का यह कर्तव्य था कि वह सरकार को यह बताये कि किन उपायों से भारत में रेलवे का शीघ्र विस्तार हो सकता है। कमेटी के सम्मुख जिन महाशयों ने साक्षी दी, उन्होंने शीघ्र विस्तार के लिये बहुत कहा सुनी की। अतएव यद्यपि कमेटी से यह नहीं पूछा गया था कि भारत में रेलपथ की वृद्धि की आवश्यकता है अथवा नहीं, तथापि

* Bell: Ry. Policy, p. 98.

उसने वृद्धि की अत्यावश्यकता बताते हुए शीघ्रता से विस्तार करने के लिये अतिशय आग्रह किया और इस आवश्यकता(?) की पूर्ति के लिये कम्पनियों और स्वयं सरकार द्वारा नये नये रेलपथों के तैयार करने का परामर्श दिया। कमेटी का इस निर्णय पर पहुंचना ठीक ही था, क्योंकि कमेटी ने केवल गोरे व्यापारियों की अथवा उनके पृष्ठपोषकों की ही साक्षी ली*, जिनका तो भारतीय रेलों की वृद्धि से लाभ ही था। सन् १८८४ की कमेटी के पीछे भारत मंत्री ने १६०१ में मि० रोबर्टसन (T. Robertson C. V. O.) को और १६०७ में सर मेके (जो अब लार्ड इंचकेप हैं) की अध्यक्षता में एक कमेटी नियुक्त की। इनका कर्तव्य और परामर्श १८८४ वाली कमेटी के समान ही था। मि० रोबर्टसन ने कम्पनियों द्वारा रेलवे बनवाने और संचालन कराने की अनुमति दी †। और मेके कमेटी ने नये रेलपथों के बनाने में प्रति वर्ष २० करोड़ रुपया व्यय करने का अनुरोध किया। धन प्राप्त करने का साधन कमेटी ने यह बताया कि कुछ धन तो कम्पनियों द्वारा लिया जाय और कुछ धन सिक्के ढालने से जो लाभ होता है (जो Gold Standard Reserve कोष में जमा होता है) उसमें से लिया जाय और बाकी के लिये ऋण लिया जाय ‡।

उपर्युक्त कमेटी के पीछे सन् १६२० में सर आकवर्थ Sir W. M. Acworth की अध्यक्षता में एक कमेटी नियुक्त हुई

* Select Com. (1884) Report, para 16.

† Robertson's Report.

‡ Mackay Com. Report.

इस कमेटी का प्रधान कार्य प्रतिनिधि कम्पनियों द्वारा सञ्चालित सरकारी रेलों के भविष्य के सम्बन्ध में विचार करना और शीघ्र विस्तार के लिये उत्कट उपाय सुझाना भी था। पूर्ववर्ती कमेटियों के समान इस कमेटी से भी यह नहीं पूछा गया था कि भारत में रेलवे के और विस्तार की आवश्यकता है अथवा नहीं। पूछा केवल यही गया था कि अधिक विस्तार के लिये धन का प्रबन्ध किस तरह किया जा सकता है। कमेटी का अनुरोध है कि 'ऋण द्वारा शीघ्र विस्तार किया जाय और रेलवे के आय-व्यय का बजट भारत सरकार के बजट से पृथक् रहे। जो आय रेलों द्वारा हो वह सारी रेलों की वृद्धि में व्यय की जाय। रेलों की वृद्धि के लिये जितना धन प्रति वर्ष निश्चित किया जाय यदि किसी वर्ष उससे कम व्यय हो तो जितना धन कम व्यय हुआ हो वह आगामी वर्ष में व्यय किया जाय, न कि उस धन से रेलवे की 'श्री वृद्धि' को वञ्चित रखा जाय। अर्थात् विगत वर्षों में जो Lapse 'लेप्स' होता रहा है, आगे वह न हो (कमेटी की नियुक्ति और उसके परामर्श आदि के लिये देखो, Acworth Com. Report, Vol. I.)।' इस कमेटी की रिपोर्ट अगस्त १९२१ में प्रकाशित हुई थी। पर कमेटी की और और बातों पर (जिनमें कई देश हितकारी भी थीं) कुछ ध्यान न देकर रेलवे के बजट को पृथक् करने तथा आगामी १० वर्षों में रेलों की वृद्धि में कितना धन व्यय किया जाय, इन बातों का विचार करने के लिये एक और कमेटी नियुक्त करने का सरकारी प्रस्ताव सितम्बर १९२१ में ही कौंसिल में पास हो गया*। इस नवीन कमेटी ने आगामी ५ वर्षों में १५० करोड़

* Assembly Debates Dt. 30 Sep. 1921, p. 1311.

रुपये व्यय करने की अनुमति दी तथा रेलवे बजट के पृथक् करने का तथा लेप्स प्रथा उठाने का समर्थन किया† । इस कमेटी के आदेशानुसार बड़ी व्यवस्थापिका सभा (Legislative Assembly) के मार्च १६२२ के अधिवेशन में १६२२-२३ से १६२६-२७ तक पाँच वर्षों में १५० करोड़ रुपये व्यय होना निश्चित हुआ‡ ।

यद्यपि प्रस्तुत रेलों से हानि होती रही है तथापि कमेटियों की दुहाई देकर इङ्गलैण्ड के स्वार्थ-साधन के एक मात्र उद्देश्य से अविच्छिन्न एवं अमित धन रेलों की वृद्धि में व्यय किया गया और किया जारहा है ! पहले की बात छोड़ दीजिये, पर विगत वर्षों में १६०८ से १६१५ तक प्रति वर्ष १५–१६ करोड़ रुपये व्यय किये गये और युद्ध काल को छोड़ कर पुनः १६१६-२०-२१-२२-२३ में क्रमशः १३॥,२४,२३॥ और २२॥ करोड़ रु० व्यय हुए हैं ! और व्यवस्थापिका सभा की 'बुद्धिमत्ता' के कारण जो ३० करोड़ रुपये प्रति वर्ष १६२२-२३ से १६२६-२७ तक व्यय होना स्वीकृत हुआ है, उसमें से १६२२-२३ में २२॥ करोड़ व्यय हुए हैं । पर अब लेप्स-प्रथा नहीं है इसलिये जो ७॥ करोड़ कम व्यय हुए हैं उस पर सन्तोष क्यों करना चाहिये ?

तीसरे प्रकरण में लिख चुके हैं कि सरकार का जो धन रेलों में लगा हुआ है उसके प्रतिफल आधा प्रति सैकड़ा भी आय रेलों से नहीं होती । अर्थात् हानि होने पर भी सरकार रेलवे की वृद्धि के लिये आतुर और प्रयत्नशील है । रेलवे की

† Ry. Finance Com. Report.

‡ Assembly Debates Dt. 27 March 1922, p. 3750.

वृद्धि में मूलधन की जितनी वृद्धि प्रति वर्ष हो रही है उस परिमाण में आय की वृद्धि नहीं हो रही है किन्तु अनुत्पादक मूलधन की वृद्धि होने से जो आय हो रही है, वह भी कम होती जा रही है। कृषि सम्बन्ध में जिस प्रकार उत्पत्ति-ह्रास नियम (Law of diminishing returns) विद्यमान है इस प्रकार आंखमीच कर मूलधन की वृद्धि करने से दुष्परिणाम होता है। जिस प्रकार गत वर्षों में रेलों का विस्तार होता गया इसी प्रकार मूलधन पर प्रति सैकड़ा कम लाभ हो रहा है। १९१३-१४ में जितना प्रति सैकड़ा लाभ था अब उतना कहाँ है? जब प्रस्तुत रेलों से लाभ नहीं हुआ तब उचित तो यह था कि अधिक धन व्यय नहीं किया जाता। मि० मोल्सवर्थ Sir Guilford L. Molesworth K. C. I. E. ने १७-७-१९१६ को लण्डन में ईस्ट-इन्डिया-एसोसियेशन में कहा था कि 'भारत सरकार को मूलधन की हानिकारक वृद्धि को एकदम रोक देना चाहिये। सिलोन में रेलों से उचित आय नहीं हुई देख, मैंने और धन व्यय करना बिलकुल रोक दिया, जिसका फल यह हुआ कि कुछ ही वर्षों में वहाँ की रेलों से १२ प्रति सैकड़ा लाभ होने लगा*।' परन्तु जनरल स्ट्रेची के कथनानुसार 'देश की कितनी ही आर्थिक क्षति क्यों न हो पर भारतीय रेलों की वृद्धि में धनव्यय नहीं रोका जाता। स्वेच्छाचारी शासन का यही तो कुफल है†।' संसार के आधुनिक सभ्य देशों में कोई भी कम्पनी अपने हिस्सेदारों [जिनके धन से कम्पनी का संचालन सम्भव है] की अनुमति बिना कोई कार्य नहीं कर

* Tiwari: In. Rys., p. 513.

† Select Com. Report (1872) para 6774.

सकती। पर यद्यपि भारतीय रेलें भारतीय करदाताओं की सम्पत्ति है, तथापि उन विचारों का कोई मूल्य नहीं है। रेलों की वृद्धि के लिये अरबों रुपये का ऋण लिया और करोड़ों रुपये का ऋण अब भी प्रति वर्ष लिया जाता है, पर जब उसके प्रतिफल में उचित आय नहीं होती तब निरुच्छ्वास गति से रेलों का प्रसार करना देश के लिये कभी अच्छा नहीं है। संसार का कोई भी तथा कितना भी सम्पत्तिशाली देश भारत के समान हानि सहकर रेलवे की वृद्धि नहीं करेगा। यदि संसार में अन्यत्र कहीं ऐसा अत्याचार हुआ होता तो देश में रौरव आर्तनाद और ताण्डव नृत्य होने लगता*।

पर आकवर्थ कमेटी का तो यह कहना है कि रेलवे से प्रति सैकड़ा जितनी आय हो रही है उससे बहुत अधिक ब्याज पर भी ऋण लेकर यदि सरकार भारत में रेलवे का विस्तार करे तो कुछ अनुचित नहीं है†। इस प्रकार प्रतिफल का विचार किये बिना, क्यों रेलों की वृद्धि की जाय, इस विषय में आकवर्थ कमेटी तथा पूर्ववर्ती कमेटियों का और रेलवे की वृद्धि के भिक्षुकों का कहना है कि '(क) अन्य देशों की तुलना में यहां बहुत कम रेलवे है, इसलिये वृद्धि की आवश्यकता है। (ख) रेलवे का अधिकाधिक विस्तार होने से अनेक प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष लाभ होंगे। व्यापारिक दृष्टि से तो रेलवे की वृद्धि अनिवार्यतः अपेक्षित है। रेलपथ की न्यूनता के कारण देश की बहुत क्षति हो रही है। इंजिन, डिब्बों की कमी के

* Indian Railway Finance (Speeches and Writings of D. E. Wacha, p. 209).

† Acworth Com. Report, Vol. I, para 63.

कारण तो देश के व्यापार को बहुत बुरा धक्का लग रहा है। इत्यादि*।'

(क) अन्य देशों से तुलना। राय साहब चण्डिकाप्रसाद तिवारी के यह कहने पर कि 'रेलों से भारत को बहुत हानि हुई है,' विगत रेलवे कमेटी के अध्यक्ष सर आकवर्थ ने वही पुरानी दलील (Stock-in-trade-argument) पेश की कि 'यद्यपि कनाडा की जन-संख्या केवल ८० लाख है तथापि वहां भारत से अधिक (३६००० मील) रेलपथ है। और रेलवे के कारण उसे लाभ भी बहुत हुआ है†।' अन्य देशों की तुलना में भारत में रेलों की कमी पर दुःख प्रकट करते हुए आकवर्थ-कमेटी कहती है कि 'आस्ट्रेलिया की जन-संख्या ६० लाख है पर रेलवे २६ हजार मील है, कनाडा की जन-संख्या ८० लाख है पर वहां रेलवे ३६ हजार मील है। परन्तु यद्यपि भारत में ३१ करोड़ जन हैं तथापि रेलपथ केवल ३७००० मील ही है। भारत की इस अधम स्थिति का कारण यह है कि भारत-सरकार उक्त देशों के समान ऋण लेकर रेलवे की वृद्धि नहीं करती। कनाडा प्रतिवर्ष (१६०० से १६१४ तक) २० करोड़ रुपये का ऋण इंगलैण्ड से लेता था, पर भारत केवल १० करोड़ ही। केवल रेलवे के लिये कनाडा ने १६१४ में २८ करोड़ रु० का ऋण लिया था, पर उसवर्ष भारत ने केवल ६ करोड़ रुपये ही लिये थे‡।'

जन-संख्या की दृष्टि से कनाडा और आस्ट्रेलिया में

* Acworth Com. Report, Vol. I, paras 25-27, 67.

† Acworth Com. Report, Vol. III, para 5229.

‡ Acworth Com. Report, Vol. I, para 66.

केवल भारत से ही नहीं, परन्तु इंगलैण्ड, अमेरिका आदि सारे देशों से अधिक रेलवे है:—

	जनसंख्या	रेलपथ
संयुक्तराज्य अमेरिका......	१०॥ करोड़	२,६३ हजार मील
संयुक्त राज्य इङ्गलैण्ड......	४॥ करोड़	२३ ,, ,,
फ्रान्स	४ करोड़	२७ ,, ,,
जर्मनी	६ करोड़	३६ ,, ,,

अर्थात् कनाडा और आस्ट्रेलिया में प्रति २०० जन एक मील रेलवे है। पर अमेरिका में प्रति ४०० जन और इङ्गलैण्ड, फ्रान्स और जर्मनी आदि में प्रति २००० जन एक मील रेलवे है। इससे स्पष्ट है कि अमेरिका (जहां पर सब से अधिक रेलवे है) में जनसंख्या की दृष्टि से कनाडा और आस्ट्रेलिया की तुलना में बहुत कम रेलवे है। हां, यदि भूमि के परिमाण पर हिसाब लगाया जाय तो कनाडा और आस्ट्रेलिया की अपेक्षा भारत में बहुत अधिक रेलपथ है—कनाडा में प्रति १००० स्कायर मील में १० मील रेलपथ है, आस्ट्रेलिया में ६ मील और भारत में २१ मील। वास्तव में भूमि के परिमाण पर ही रेलवे की न्यूनाधिकता का हिसाब होना चाहिये न कि जन-संख्या के आधार पर। यदि जन-संख्या की दृष्टि से ही देखा जाय तब भी यह कहना युक्ति-युक्त नहीं कि 'कनाडा में अधिक रेलपथ है अतएव भारत में भी उतना होना चाहिये'। क्योंकि यद्यपि जनसंख्या की दृष्टि से अमेरिका और इंगलैण्ड आदि में भी कनाडा और आस्ट्रेलिया की तुलना में कम रेलवे है, तथापि यह नहीं कहा जा सकता कि इंगलैण्ड और अमेरिका आदि में रेलवे के अधिक विस्तार के लिये धन नहीं है, अथवा वहाँ अधिक

विस्तार की आवश्यकता होने पर भी वृद्धि के मार्ग में कोई बाधा है। यदि भूमि के परिमाण पर हिसाब देखा जाय तो बेलजियम में सब से अधिक रेलें हैं। अर्थात् बेलजियम में प्रति १००० स्कायर मील ४२३ मील रेलपथ है और इगलैण्ड में १६४ मील, जर्मनी में १४० मील, अमेरिका में ७० मील, जापान में ३६ मील। कनाडा आदि के अङ्क ऊपर लिख चुके हैं। इन अङ्कों के आधार पर भी यह नहीं कहा जा सकता है कि बेलजियम में सब से अधिक रेलें हैं अतएव वह अन्य देशों से अधिक समुन्नत है, अथवा अमेरिका आदि देशों में बेलजियम के समान रेलपथ की आवश्यकता है। यदि अमेरिका को और रेलपथ की आवश्यकता है तो आज वह ऐसा कर सकती है—उस के लिये सारे साधन और सुविधाएं करतलगत हैं। अतएव सिद्ध होता है कि रेलों की न्यूनाधिकता प्रत्येक देश की आवश्यकता पर निर्भर है, न कि अन्य देशों की प्रतियोगिता पर। जो भले मानस भारत के लिये अन्य देशों के समान रेलपथ की इच्छा प्रकट करते हैं, वे अन्य देशों के समान भारत को सुख समृद्धि के लिये कभी उत्कण्ठित और लालायित नहीं होते! अन्य देशों में रेलों के कारण देश की उन्नति हो रही है, पर यद्यपि यहां की रेलों ने देश का सर्वनाश कर दिया तथापि यहां की रेलों की वृद्धि के लिये कहने में लोगों को लज्जा तक नहीं आती! जिन कार्यों से देश का हित हो सकता है उनकी कभी कोई बात ही नहीं करता! आश्चर्य तो यह है कि जिन कार्यों से अपना स्वार्थ सिद्ध होता है उस के लिये दूसरे देशों का आदर्श सन्मुख रक्खा जाता है, पर इंगलैंड अमेरिका आदि की सुख-समृद्धि, सुशासन, और सुशिक्षा से भारत के दुःख-दारिद्र, स्वेच्छाचारी शासन प्रणाली और गुलामी की शिक्षा

आदि की तुलना कभी कोई नहीं करता! किमाश्चर्यमितः परम्।

(ख) वृद्धि की आवश्यकता। ऊपर लिख चुके हैं कि देश की आवश्यकता के अनुसार ही रेलवे का विस्तार होना चाहिये। इसलिये यह प्रश्न होता है कि और अधिक विस्तार की यहां आवश्यकता है अथवा नहीं। यह तो पहिले लिख चुके हैं कि भारत में रेलों की आवश्यकता नहीं थी, यदि किसी अंश में थी भी तो अब आवश्यकता से अधिक रेलपथ तैयार है। सन् १८७३ में सरकारी विज्ञप्ति* हो चुकी थी कि 'Rys. are now almost completed' अर्थात् भारत को जितने रेलपथ की आवश्यकता है उतना बन चुका है। १८७८ में सर काटन Sir Arthur Cotton ने रेलों की वृद्धि को रोकने के लिये आग्रह किया था†। १८६७ के दुर्भिक्ष कमीशन ने भी लिखा था कि और रेलपथ की आवश्यकता नहीं है‡। यह बातें गत शताब्दी की हैं जब कि यहाँ बहुत कम रेलपथ था, पर अब तो ३५५०० मील रेलवे है, फिर भी अपर्याप्त समझा जाता है! रेलों ने भारत का कितना अनिष्ट किया है यह आगामी प्रकरणों से स्पष्ट होगा, यहाँ इतना लिखना यथेष्ट है कि भारत में रेलों के अत्यन्त भीषण दुष्परिणाम हुए हैं। अतएव इनकी एक इंच वृद्धि भी सर्वथा अनावश्यक है। कहा जाता है कि रेलपथ के अपर्याप्त होने के कारण व्यापार को बहुत बाधा पहुंच रही है§। पर जिस व्यापार की दुहाई दी जाती है, वह देश के

* Moral and Material Progress and Condition of India, 1872-73.

† Select Com. (1878) Report.

‡ Famine Com. (1898) Report, p. 330,

§ Acworth Com. Report, Vol. 1, Chapter II.

लिये कितना अहितकर है यह १४ वें प्रकरण से प्रत्यक्ष है। १८८४ को पार्लियामेंट्री कमेटी के सदस्य मि० जोनस्लेग John Slagg ने लिखा था कि भारत सरकार रेलवे के विस्तार में अतुल धन व्यय कर रही है और इस धन विनियोग का कारण भारत-वासियों का लाभ बताया जाता है। पर हमें इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिला कि भारत को रेलवे की आवश्यकता है अथवा रेलों के कारण भारत का हित-साधन हुआ है*।'

भारतीय धन-रक्त के पिपासाकुल अंग्रेज व्यापारी और उन की आज्ञाकारी भारत सरकार जब रेलों के लाभों का कीर्तिगान करती है तब ऐसा प्रतीत होता है मानो रेलवे की एक एक इंच वृद्धि तपतप्त मरु भूमि में वर्षा के समान भारतवर्ष के लिये लाभदायक और शान्तिप्रद है। परन्तु वास्तव में भारतीय मरुभूमि तो अंशतः भी सजल नहीं हुई है, पर हाँ, यह वृद्धि गोरे व्यापारियों के लिये निस्सन्देह स्वर्ण की खेती है। अर्थात् भारत में रेलों की जो अधिकाधिक वृद्धि हो रही है वह भारत के लिये तो अत्यन्त घातक है परन्तु इंगलैन्ड का लाभ ही इस वृद्धि का मूलभूत कारण है, जैसा कि हम दूसरे प्रकरण में लिख आये हैं, तथा आगामी प्रकरणों से पूर्णतया स्पष्ट होजायगा। गत वर्ष सर इवन्स Sir L. Worthington Evans ने पार्लियामेंट में निस्संकोच कहा था कि 'इंगलैंड के बेकार मजदूरों के आजीवन के लिये भरतीय रेलों की वृद्धि में ६०–८० करोड़ रुपये व्यय करना अत्यावश्यक

* Contemporary Review, 1884 (Journal of Poona Sarvajanik Sabha, October 1884.)

है*। लंडन की Queen Anne's Street से जो रेलवे-गजट Railway Gazettee प्रकाशित होता है, उसके ७-१०-१९२१ के अङ्क में भी ऐसी ही बातें प्रकाशित हुई थीं। इन बातों का अर्थ यह है कि यदि भारतीय रेलों की वृद्धि होगी तो वृद्धि के लिये इंगलैंड से माल मँगाया जायगा तथा वृद्धि होने पर अंग्रेजी वस्तुओं का अधिक प्रचार होगा, जिससे वहां के बेकारों को रोजगार मिलेगा। लंडन के एक व्यापारिक पत्र में यह भी प्रकाशित हुआ था कि 'इंगलेंड के व्यापारिक अभ्युत्थान के लिये यह आवश्यक है कि इंगलेंड भारतीय रेलों की वृद्धि के लिये ऋण दे और उस वृद्धि के लिये आवश्यक सामान इंगलेंड से भेजा जाय† ।'

इंजिन डिब्बों की कमी। आकवर्थ कमेटी का कहना है कि 'इंजिन और डिब्बों की कमी के कारण देश को बहुत कष्ट हो रहा है‡'। पर वास्तव में इंजिन डिब्बे आवश्यकता से अधिक हैं। १९०७ से १९१५ तक ३९ प्रति सैकड़ा इंजिनों की वृद्धि हुई। यह वृद्धि अनावश्यक थी, अतएव १९०७ की अपेक्षा १९१५ में प्रत्येक इंजिन १० मील प्रति सैकड़ा कम काम में आया, और माल के डिब्बों की ६२ प्रति सैकड़ा वृद्धि हुई जिसका दुष्परिणाम यह हुआ कि १९०७ की अपेक्षा १९१५ में प्रति डिब्बा २१ मील प्रति सैकड़ा कम काम में लिया गया। १९१५-१६ में ३७ प्रति सैकड़ा डिब्बे खाली घूमते थे परन्तु वृथा वृद्धि होने से १९१९-२० में ४१ प्रति सैकड़ा डिब्बे खाली घूमते

* Assembly Debates, Dt. 16 Jany 1923, p. 1088–89.

† Assembly Debates Dt. 27–3–1922, p. 3760.

‡ Acworth Com. Report, Vol. I, para26 and p. 8–18

फिरते रहे। १६१४ से १६२१ में २२ प्रति सैकड़ा इंजिन अधिक थे। इस अनुपयोगी अधिकता का परिणाम यह हुआ कि १६१४ की अपेक्षा १६२१ में प्रत्येक इंजिन ४-५ हजार मील कम काम में आया। छोटी लाइन का इंजिन तो ८ हजार मील कम काम में आया। १६१४ में जितने इंजिन थे उनमें से ७४ प्रति सैकड़ा उपयोग में आते थे किन्तु निरर्थक वृद्धि के कारण १६२१ में केवल ६७ प्रति सैकड़ा इंजिन काम में लाये गये*। इन अंकों से प्रत्यक्ष है कि विगत वर्षों में जो वृद्धि हुई, वह सर्वथा अनावश्यक थी‡। रिट्रेंचमेंट कमेटी का कहना है कि 'यद्यपि अधिक माल के आवागमन की सम्भावना नहीं है तथापि और डिब्बे बनाये जारहे हैं, यह बहुत अनुचित है†।'

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि रेलवे-विस्तार की जो जो आवश्यकताएं बताई जाती हैं वे बिलकुल निर्मूल हैं। अतएव अनन्त, अपार, अतोषनीय और अनावश्यक विस्तार में जो धन व्यय किया जारहा है, यदि वह शिक्षा और स्वास्थ्यरक्षा आदि में व्यय किया जाय तो देश का अनिर्वचनीय उपकार हो सकता है। जिस देश में स्वास्थ्यहीनता के कारण महा भीषणता छा रही है, जो देश अज्ञानान्धकार में पड़ा जर्जरित हो रहा है, जहां दुःख-दारिद्र और दुर्भिक्षों

* इंजिन डिब्बों के काम और उनकी वृद्धि के सम्बन्ध में देखो:-
Monograph. p. 280-81;
Retrench. Com. Report Appendix B. और C;
Acworth Com. Report, Vol. IV, p. 82.

‡ Monograph, p. 289.

† Retrenchment, Com. Rep. para 17.

का साम्राज्य स्थापित है, वहां रेलें अकथनीय उपकार कर सकती हैं, किन्तु यद्यपि भारत की भी उपर्युक्त दुर्दशा होरही है पर यहां विदेशी शासन के कारण रेलें वह उपकार नहीं कर सकतीं— वर्तमान शासन-प्रणाली में भारतीय रेलों से लाभ की आशा करना दुराशा मात्र है। मि० बेल के शब्दों में इस विषय को यों समाप्त कर सकते हैं कि 'जिन धन-के-साधनों का उपयोग देश की सुख-समृद्धि की वृद्धि के लिये होना उचित था, उन्हें उस ऋण के ब्याज को चुकने के लिये निरंतर काम में लिया जाता है, जिसे यहां की रेलों में दुरुपयोग कर अनुत्पादक और हानिकारक बना रक्खा है। इंगलैंड जैसे असाधारण सम्पत्तिशाली देश में भी यदि रेल-कार्य में इस प्रकार अपव्यय किया गया होता तो, वहाँ यह अनुचित कार्य गम्भीर गर्हता को प्राप्त हो जाता। अतएव उचित तो यह है कि रेलों की और वृद्धि न की जाय। अन्यथा अत्यधिक आर्थिक क्षति से मुक्त होने की कोई सम्भावना नहीं है*।'

निर्माण की कुछ त्रुटियाँ और दोष।

रेलवे के शीघ्र विस्तार के कारण निर्माण में अनेक त्रुटियां और दोष रह गये हैं। अथवा यों समझिये कि भारत में जिस उद्देश से रेलें बनी हैं उसकी पूर्ति की धुन में भारत के लाभा-लाभ का विचार न कर निर्माण किया गया है। प्रथम तो 'गाज' को ही देख लीजिये। मि० रोबर्टसन का कहना है कि ब्राड-गाज (बड़ी लाइन) का रेल-पथ बनाने से बहुत हानि हुई

* Bell: Railway Policy, p. 96.

है* । एक दूसरे रेलवे-विशारद् का कहना है कि 'आरम्भ में भारतीय रेलों के गाज के सम्बन्ध में भली भांति विचार नहीं किया गया अतएव अब अनेक असुविधाएँ हो रही हैं† । यद्यपि इंगलैएड में ४ फुट ८॥ इञ्च चौड़ा गाज था (अब भी इतना ही है) तथापि भारत में ५॥ फुट चौड़ा बनाया गया। इस का कारण यह बताया गया कि अधिक चौड़ा गाज होने से गाड़ियों का इधर-उधर हिलना (Lateral oscillation) कम हो जायगा, जिससे गति सरल और सुखकारक होगी; तथा प्रचण्ड वायु के वेग से गाड़ियों के उलटने का भय कम हो जायगा‡ । ये सारी कहने मात्र की बातें थीं—वास्तव में चौड़े गाज का कारण पुरानी गारन्टी कम्पनियों को अधिक व्यय करने की नीति थी, तथा इंगलैएड के लोहे का अधिक उपयोग करना था। अस्तु । ब्राड गाज के कारण अनेक हानियां हो रही हैं। इंगलैएड और अमेरिका में ४ फीट और ८॥ इंच का गाज है और डिब्बों की चौड़ाई इंगलैएड में ८॥ फीट, अमेरिका में १० फीट और यूरोप में जहां ४-८॥ का गाज है वहाँ १०॥ फीट है। इस हिसाब से भारत के ५॥ फीट के गाज के लिये १२॥ फोट चौड़े डिब्बे होना आवश्यक है। पर चौड़ाई है केवल ६॥ फीट ही! इस कमी के कारण २२॥ प्रति सैकड़ा शक्ति वृथा नष्ट हो जाती है** । इसलिये संचालन व्यय अधिक होता है। डिब्बों की चौड़ाई अधिक करने से यद्यपि हानि कम होगी तथापि

* Robertson's Report, para 313.

† Macgeorge; Ways and Works, p. 318.

‡ Bell; Ry. Policy, Ch. IV;
Imp. Gazetteer, Vol. III, p. 380.

** Robertson's Report, para 318.

मीटर गाज—छोटी-लाइन—के परिमाण में आय नहीं होगी। मीटर गाज से ५ प्रति सैकड़ा आय होती है और ब्राड गाज से केवल ३ प्रति सैकड़ा†।

आड-गाज के बनाने में और संचालन में अधिक व्यय होने के कारण १८६९ से मीटर गाज बनाना आरम्भ हुआ। और अब मीटर गाज का रेल पथ ब्राड-गाज के समान ही है। गाजों के दो तरह के होने के कारण बहुत हानि और असुविधा होती है। एक प्रकार के गाज पर जितने इञ्जिन और डिब्बों की आवश्यकता होती है उससे बहुत अधिक इञ्जिन डिब्बों की दो प्रकार के गाजों के लिये आवश्यकता होती है। एक गाज के डिब्बों से दूसरे गाज के डिब्बों में माल परिवर्तन करने में केवल व्यर्थ का व्यय ही नहीं होता, परन्तु माल के पहुँचने में विलम्ब, यात्रियों को असुविधा, आदि अनिवार्य हैं*। अमेरिका में भी पहले छोटे बड़े गाज थे जिससे असह्य असुविधा थी। इसलिये १८८६ में भिन्न भिन्न गाजों (४-८॥ के अतिरिक्त) के १५ हजार मील रेलपथ को केवल २ दिन में ४-८॥ के गाज में परिवर्तन कर दिया गया था**। वहां लम्बे डिब्बे (Bogie) थे, अतएव उन्हें एक गाज के पहियों से उठाकर दूसरे गाज के पहियों पर रखना सहल था। जो नये इञ्जिन बनाये गये थे वे सब प्रकार के गाजों पर काम दे सकते थे। अतएव गाज परिवर्तन करने में वहाँ अधिक कष्ट नहीं हुआ। यहां न तो लम्बे डिब्बे

† Ry. Report (1921-22), Vol. II, Appendix 8 p. 69.

* Robertson's Report, para 318.

** Priestley: American Rys. p. 33;
Williams: Ry. Economics p. 99-100.

ही हैं और न और ही कोई सुविधा है। मीटर गाज को ब्राड-गाज बनाने में न केवल मीटर-गाज की सड़क को और उसके डिब्बे, इञ्जिन, पुल और सुरङ्गें आदि को ही चौड़ा करना पड़ेगा किन्तु ब्राड गाज के भी डिब्बे आदि को चौड़ा करना पड़ेगा, क्योंकि वे बहुत छोटे हैं, जैसा कि ऊपर लिख आये हैं। इस कार्य में अतुल धन व्यय होगा। हाँ, यदि ब्राड गाज को मीटर गाज में बदल दिया जाय तो व्यय और परिश्रम कम हो सकते हैं, और मीटर गाज से आय भी अधिक होने की सम्भावना है। पर गाजों के एकीकरण में अतुल धन व्यय करने की इस समय कोई आवश्यकता नहीं है।

मार्ग Alignment रेलवे के शीघ्रविस्तार की धुन में यह विचार नहीं किया गया कि किस मार्ग से रेल-पथ बनाने में लाभ होगा। सीधा मार्ग काटते चले गये। यदि कहीं कहीं थोड़ा बहुत तिरछा मार्ग कर दिया जाता तो अनेक बड़े बड़े शहर एक ही मार्ग में आ जाते। ऐसा करने से केवल रेलवे आय ही कम नहीं हुई* किन्तु पृथक् पृथक् कई रेलपथों की अनावश्यक सृष्टि हो गई। अनेक बार तो ऐसा हुआ कि एक मार्ग से रेलवे बनाना आरम्भ करने के पीछे उस मार्ग से नहीं बनाकर दूसरे मार्ग से बनाई गई जिससे बहुत सा धन योंही नाश होगया** ।

पुल Bridges and Viaducts। जो पुल बनाये गये हैं वे बहुत कमजोर हैं। उन पर भारी वजन की गाड़ियां नहीं

* Imp. Gazetteer, Vol. III. p. 383.

** Imp. Gazetteer, Vol. III. p. 368.

चल सकतीं। इसलिये मालगाड़ियों में बहुत कम डिब्बे होते हैं, जिससे संचालन व्यय अधिक और आय कम होती है*। पुलों की निर्बलता का एक कारण यह भी है कि उनमें अधिकतर लोहा और स्टील लगा हुआ है। एक गोरे लेखक का कहना है कि 'अन्य देशों में जिन कार्यों के लिये लोहे की अपेक्षा चूने और पत्थर को अधिक सुदृढ़ समझ कर उनका उपयोग होता है, उन्हीं कामों के लिये भारत में लोहा और स्टील काम में लाया गया है$।' पर चूने का काम कितना ही सस्ता और मज़बूत क्यों न हो, किन्तु इंगलैंड के कारखाने तो तभी मज़बूत सुदृढ़—हो सकते हैं जब कि उनके लोहे का भारत में अधिकाधिक उपयोग हो। अस्तु। यहाँ अनेक अनावश्यक पुल बनाये गये हैं और उनमें अतुलधन व्यय हुआ है। उत्तरी भारत के पुलों में तो बहुत ही अधिक धन व्यय हुआ है। हुगली पर निहट्टी के पास का पुल Jublee Bridge और सिन्धु पर सखर के समीपवर्ती पुल Lansdowne Bridge बहुमूल्य हैं। ये निराधार हैं। अर्थात् नदी के मध्य में आधार के लिये केवल १–२ ही स्थम्भ हैं। सखर के पुल का एक अङ्ग ८२० फीट लम्बा है और इसके मध्य में कोई आश्रय नहीं है। निहट्टी के पुल के दो अङ्ग ५४०–५४० फीट लम्बे हैं और उनके मध्य में कोई आधार-स्थम्भ नहीं है। सखर का पुल जब तैयार हो रहा था उस समय उसका 'निराधार अङ्ग' (Rigid Span) संसार में सब से अधिक लम्बा था ‡। हां, इसके पीछे अन्य देशों में इससे

* Imp. Gazetteer, Vol. III p. 385.

$ Maecgeorge: Ways and Works, p. 328.

‡ Imp. Gazetteer, Vol. III, p. 384.

अधिक लम्बे निराधार अंग बन चुके हैं। फिर्थ The Firth of Forth पर जो पुल है उसके दो अङ्ग १७००–१७०० फीट निराधार हैं। अन्य मार्ग प्रस्तुत होने पर भी सक्खर और निहट्टी के बहुमूल्य पुलों की क्या आवश्यकता थी, यह ईश्वर ही जाने।

सुरङ्ग और पहाड़ी-मार्ग। जिस प्रकार बड़े बड़े पुलों के बनाने में प्रचुर धन व्यय किया, उसी प्रकार अनेक बहुमूल्य सुरङ्ग (Tunnels) और पहाड़ी-मार्ग* (Cuttings) बनाने में बहुत अधिक व्यय हुआ है। खोजाक की सुरंग २॥ मील लम्बी है। एशिया में इसके समान दूसरी सुरङ्ग नहीं है †। इस सुरङ्ग की कोई ऐसी आवश्यकता नहीं थी कि करोड़ों रुपये व्यय किये जाते।

बांध और जल निर्गम मार्ग। रेलवे सड़क को समतल करने के लिये जो मिट्टी के ऊंचे ऊंचे बांध-टीले-(Embankment) बनाये जाते हैं, उनके मध्य में थोड़ी थोड़ी दूरीपर जल निर्गम के लिये मार्ग (Opening) छोड़ दिया जाता है। भारत में ये मार्ग बहुत कम छोड़े गये हैं। इस कमी के कारण जल निर्गम को पर्याप्त स्थान नहीं मिलने से वर्षा का जल प्रायः बाढ़ के रूप में परिणत हो जाता है ‡। इस से अन्य

* जो पहाड़ ऊंचे होते हैं, उनमें डायनामाइट आदिसे छिद्र-कर सुरङ्ग बनाली जाती है और जो पर्वत अधिक ऊंचे नहीं होते उन्हें ऊपर से तोड़ कर मार्ग करदिया जाता है, इसे पहाड़ी मार्ग या 'कटिंग' कहते हैं।

† St. Gothard के समीप अलपाइन की पर्वत श्रेणी (Alpine Range) में संसार की सब से लम्बी सुरंग है। यह ९। मील लम्बी है और समुद्रकी सतह से ४ सहस्र फीट ऊंची है॥ सुरंग के ऊपर १० सहस्र फीट पर्वताङ्ग और है!

‡ Assembly Debates, Dt. 15-1-1923, p. 989.

अनेक हानियों के अतिरिक्त रेलवे-सड़क को भी बहुधा बहुत क्षति होती है। गत वर्षों की बाढ़ों से यह बात सर्वथा स्पष्ट हो चुकी है $।

ढलाव Gradiants और वक्रता Curvature । रेलवे सड़क सर्वत्र समतल नहीं है, कहीं समतल है तो कहीं ढालू * । ढालू होने से संचालन व्यय अधिक होता है। जी० आई० पी० से कम आय होने का प्रधान कारण उसका ढालू होना ही है। जिस प्रकार रेलवे सड़क सर्वत्र समतल नहीं है वैसे ही वह सर्वत्र सीधी भी नहीं है। जहां सीधे मार्ग में कोई बाधा (जैसे बड़े बड़े पर्वतों से अथवा अन्य किसी कारण से मार्ग का अवरोधित होना) उपस्थित हो

$ Ry. Report (1922-23) Vol. 1, p. 86.

* रेलवे से यात्रा करते समय मार्ग में कहीं कहीं लकड़ी के छोटे छोटे डंडों के सिर पर दोनों तरफ दो तिरछे अथवा एक तिरछा और एक सीधा लकड़ी का भुज देखते हैं। जो भुज सीधा होता है उसपर Level (समतल) शब्द लिखा रहता है। और जो तिरछा होता है उस पर कुछ अंक लिखे रहते हैं। जिस दिशा की ओर सीधा भुज हो, उधर समतल रेलपथ समझना चाहिये और जो भुज नीचे की ओर तिरछा होता है उसका यह अर्थ है कि जिस ओर भुज संकेत करता है उस ओर रेलपथ नीचे को ढालू है और उस भुज पर जो अङ्क हैं प्रति उतनी फीट में एक फीट निचाई है। यदि भुज ऊपर की ओर तिरछा है तो यह समझना चाहिये कि जिस ओर भुज का संकेत है उस ओर भुज पर लिखे हुए अङ्कों के हिसाब से रेलपथ ऊंचा है। इन भुजों को Gradiant Boards कहते हैं।

आती है, तब मार्ग को वक्र करना पड़ता है। इस वक्रता के कारण यद्यपि पुल आदि का व्यय बच जाता है पर वक्रपथ से संचालन व्यय बहुत अधिक होता है। लोहे की रेलें और पहिये बहुत घिसते हैं, इंजिन को अधिक शक्ति व्यय करनी पड़ती है जिससे कोयला अधिक खर्च होता है। यात्रियों के स्वास्थ्य पर भी बहुत आघात पहुँचता है और उन्हें बहुत असुविधा रहती है। सब से अधिक अनिष्ट तो यह होता है कि कई बार गाड़ियां उलट जाती हैं*। इंगलैण्ड में तो कानून है जिसके कारण निश्चित परिमाण से अधिक वक्रता नहीं हो सकती†। यहाँ इस सम्बन्ध में न कोई कानून है और न इसे कम करने का ही कोई प्रयत्न किया गया है।

स्लीपर Sleepers। यहाँ बहुत से स्लीपर लोहे और स्टील के काममें आते हैं। इनका मूल्य लकड़ी के स्लीपरों की अपेक्षा बहुत अधिक होता है। विदेशों में अधिकतर लकड़ी के स्लीपर काम में आते हैं। यहाँ लकड़ी के स्लीपरों का उपयोग न करने का कारण यह बताया जाता है कि भारत की जल-वायु लकड़ी के स्लीपरों के अनुकूल नहीं है। यह हो सकता है कि नरम लकड़ी के स्लीपर शीघ्र जीर्ण हो जायँ, परन्तु मजबूत लकड़ी के स्लीपरों के शीघ्र नष्ट होने का कोई भय नहीं है। जिस प्रकार चूने पत्थर के स्थान में लोहे का व्यवहार किया जाता है उसी कारण लकड़ी के स्थान में भी लोहे आदि बहुमूल्य चीजों का उपयोग किया जाता है। इस प्रकार धननष्ट होने से अनुत्पादक मूलधन की वृद्धि के अतिरिक्त और क्या हो सकता है?

---

* Williams: Ry. Economics, p. 115–16.

† Macgeorge: Ways and Works, p. 253.

डिब्बे और इञ्जिन। अमेरिका में सञ्चालन-व्यय कम होने का प्रधान कारण यह है कि वहां माल के डिब्बे बहुत लम्बे-चौड़े बनाये जाते हैं। और वहाँ के इञ्जिन बहुत शक्तिशाली होते हैं*। वहां के एक डिब्बे में ५० टन माल आ सकता है और खाली डिब्बे का वजन केवल १७ टन होता है। पर यहां के एक डिब्बे में २० टन माल आता है और खाली डिब्बे का वज़न १६ टन होता है†। अर्थात् १०० टन माल के लिये वहां दो डिब्बों की आवश्यकता है और यहां ५ डिब्बों की। यहां के ५ डिब्बों का वजन ८० टन होता है और वहाँ के दो डिब्बों का वज़न केवल ३४ टन। अर्थात् यहां १०० टन माल के साथ डिब्बों का ४६ टन भार वृथा ही अधिक होने के कारण केवल ४६ टन लोहे के लिये निरर्थक धन व्यय नहीं होता, पर १०० टन माल के लिये यहाँ के इञ्जिन को ५ डिब्बों का ८० टन भार लेजाना पड़ता है किन्तु अमेरिकन इञ्जिन को २ डिब्बों का केवल ३४ टन ही। यदि अमेरिकन एक इञ्जिन ४०० टन भार लेजा सकता है तो वह ३०० टन माल लेजा सकेगा पर यदि भारतीय इञ्जिन ४०० टन भार लेजा सकता है तो वह केवल २२५ टन माल ही लेजा सकेगा, क्योंकि उसे २२५ टन माल के लिये १७५ टन डिब्बों का वज़न वाहन करना पड़ेगा। परन्तु अमेरिकन इंजिन को ३०० टन माल के लिये केवल १०० टन डिब्बों का भार ही लेजाना पड़ता है। डिब्बों के छोटे होने के कारण जो हानि होती है वह उपरोक्त बातों से प्रत्यक्ष है।

---

* Priestley: American Rys., p. 57.

† Imp. Gazetteer, Vol. III.p. 385

दूसरी बात यह है कि यहां के इंजिन बहुत कमजोर हैं जिससे यहां की ट्रेनों में बहुत कम माल जाता है। यहां की ५॥ फीट के गाज की एक ट्रेन में अधिक से अधिक ३१७ टन माल जाता है, किन्तु अमेरिका के ४-८॥ के गाज के रेलपथ पर एक ट्रेन में ५१८ टन माल होता है* । इस का कारण डिब्बों का छोटा होना तथा इंजिनों की कमजोरी है। इसके अतिरिक्त संचालकों की असावधानी भी है तथा यहाँ की ट्रेनों में खाली डिब्बे भी बहुत होते हैं, अतः जिस ट्रेन में ३१७ टन माल है उसके साथ ३६१ टन भार डिब्बों का है* । इंजिनों की शक्ति कम रहने से गाड़ियां शीघ्रगति से नहीं चलती। इसलिये आय कम होती है और मूलधन उत्पादक नहीं होता—पूंजी का प्रतिफल नहीं मिलता।

* Monograph, p. 287.

छठा प्रकरण

पूंजी का प्रतिफल (प्रतिनिधि-कम्पनियां)

रेलों में व्यय हुई पूंजी का पर्याप्त प्रतिफल प्राप्त न होने का एक कारण प्रतिनिधि कम्पनियां हैं। सरकारी रेलों का संचालन सरकार स्वयं करे अथवा प्रतिनिधि कम्पनियां, यह समस्या बहुत पुरानी है। १८८४ की पार्लियामेंट्री कमेटी ने, मि० रोबर्टसन तथा मेके-कमेटी ने भी इस बात का विचार किया था। इनका मत यह था कि कम्पनियों द्वारा ही संचालन हो। उनके इस मत के लिये कोई आश्चर्य नहीं, क्योंकि कमेटियों का एक भी सदस्य भारतवासी नहीं था और न उन्होंने भारतवासियों को साक्षी ही ली। विगत आकवार्थ कमेटी ने भी इस बात का निर्णय किया है। कमेटी का कहना है कि वर्तमान प्रतिनिधि कम्पनियों के साथ जितने वर्षों की लिखा-पढ़ी है, उस अवधि के अन्त होने पर भविष्य में इनसे संचालन न कराया जाय। किन्तु कमेटी के सदस्य १. सर आकवर्थ Sir W. M. Acworth, २. श्री० श्रीनिवास शास्त्री, ३. श्री० पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास (बम्बई के एक प्रतिष्ठित व्यापारी), ४. मि० टूक James Tuke (Barcelays आदि बैंकों के डाइरेक्टर), और ५. मि० हिले E. H. Hilay (न्यूजीलैंड रेलवे के मेनेजर) की अनु-

मति है कि उक्त अवधि होने पर सरकार स्वयं संचालन करे। और १. सर राजेन्द्रनाथ मुकर्जी, २. सर हेनरी Sir Henry P. Burt (बी० एन० डब्लू० और आर० के० रेलवे कम्पनियों के प्रधानाध्यक्ष), ३. सर एण्डरसन Sir Arthur Anderson (१९१९-२० में रेलवे बोर्ड के प्रधान), ४. सर गौडफ्रे George Godfrey (बी० एन० रेलवे के एजेंट) और ५. सर हेनरी Henry Ledgard (गोरे व्यापारियों के प्रतिनिधि) की अनुमति है कि उक्त अवधि होने के पश्चात् भारत में न्यूतन कम्पनियों का संगठन कर इन्हें संचालन कार्य सौंप देना चाहिये। यद्यपि प्रत्येक मत के समर्थन में समान सदस्य हैं तथापि उनके व्यक्तित्व पर विचार करने से स्पष्ट है कि प्रथम पक्ष का ही मत पक्षपात रहित और इसलिये माननीय है।

लार्ड लारेंस ने १८६९ में ही कह दिया था कि कम्पनियों की व्याधा से मुक्त होना ही श्रेयस्कर है*। उनके उत्तराधिकारी लार्ड मेयो ने और उस समय के भारत-मंत्री Duke of Argyll ने इस बात का समर्थन किया था†। अब भी प्रान्तीय सरकारें सरकारी-संचालन के पक्ष में हैं‡। सर आकवर्थ कम्पनी-सञ्चालन के कट्टर पक्षपाती हैं। यह बात उनकी रेलवे-विषय की State Ownership आदि कई पुस्तकों से भली भांति प्रगट है। इसी कारण से सरकार ने इन्हें विगत रेलवे कमेटी का अध्यक्ष नियुक्त किया था। परन्तु प्रतिनिधि-कम्पनी-संचालन की विचित्र प्रणाली तथा उसके अनेक दोष और

* Govt. of India Despatch, Dt. 9th Jany 1869.

† Bell; Ry. Policy, p. 76.

‡ Acworth Com. Report, Vol. IV.

हानियां देख, सर आकवर्थ ने भी यही कहा है कि भारत को इन कम्पनियों के पञ्जे से मुक्त करना अत्यावश्यक है। सर आकवर्थ आदि पांच सदस्यों की अनुमति के अनुसार २७-२-१९२३ को बड़ी व्यवस्थापक सभा ने यह प्रस्ताव पास किया है कि जी० आई० पी० तथा ई० आई० की १९२४-२५ में अवधि होने पर उनका संचालन स्वयं सरकार करे। परन्तु केवल व्यवस्थापक सभा में कोई प्रस्ताव स्वीकृत होने से ही उसके अनुसार कार्य नहीं हो सकता। किसी भी स्वीकृत प्रस्ताव को कार्य में परिणत करना या न करना वाइसराय की स्वेच्छा पर निर्भर है। यही 'समुज्वल' शासन-सुधारों का रहस्य है। १९१५ में सर इब्राहीम के प्रस्ताव करने पर यह स्वीकृत हो गया था कि कम्पनियों की अवधि होने पर सरकार स्वयं संचालन करेगी*। तथा १९१७ में सर इब्राहीम का यह प्रस्ताव भी स्वीकृत होगया था कि १९१९ में ई० आई० रेलवे कम्पनी से रेलपथ ले लिया जायगा†। पर फिर भी १९१९ में ई० आई० रेलवे कम्पनी की अवधि ५ वर्ष के लिये और बढ़ादी गई!

ई० आई० रेलवे-कम्पनी की अवधि इस वर्ष (१९२४) के अन्त में होने पर इसका संचालन स्वयं सरकार करेगी, यह निश्चित होगया है। इस सम्बन्ध में पिछले दिनों पार्लियामेंट में जो बातें हुई थीं उससे तो यही प्रतीत होता है कि नई-प्रतिनिधि-कम्पनी को संचालन-भार देने के लिये ही वर्तमान

* Council Proceedings, Dt. 24-3-1915, p. 572-95.

† Council Proceedings, Dt. 25-9-1917, p. 398.

ई० आई० रेलवे कम्पनी से सम्बन्ध विच्छेद किया जारहा है। यदि ई० आई० का सञ्चालन सरकार करने लगेगी, तो भी १८ हजार मील रेलवे प्रतिनिधि कम्पनियों के आधीन रहेगा। इन कम्पनियों से बहुत हानि हो रही है। पर गोरे व्यापारियों को संतुष्ट रखने के लिये सरकार की इच्छा कम्पनियों से रेलवे लेने की नहीं है। अतएव यदि बाकी के रेलपथों का सञ्चालन कम्पनियों द्वारा ही होता रहे, तो कोई आश्चर्य नहीं। परन्तु देश के लिये यह बहुत घातक है। यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि वर्तमान शासन प्रणाली के कारण सरकारी-सञ्चालन भी हमारे लिये अत्यन्त अहितकर है। परन्तु कम्पनी-सञ्चालन और सरकारी-सञ्चालन, दोनों के दोषों की परस्पर में तुलना करने से, कम्पनी-सञ्चालन की अपेक्षा सरकारी-सञ्चालन कम हानिकारक है। पर कहा यह जाता है कि कम्पनियों से देश का बहुत उपकार हो रहा है तथा कम्पनी-सञ्चालन सरकारी-सञ्चालन से बहुत उत्तम है! प्रतिनिधि कम्पनियों के मिथ्यालाभों के प्रलोभन में देशवासियों को फंसाने के उद्देश से गोरे व्यापारियों की कृपैषी भारत-सरकार भी ऐसी पुस्तिकाएं प्रकाशित करती है जिनमें कम्पनी-सञ्चालन के लाभों का गुण-गान रहता है*। अतएव प्रतिनिधि कम्पनियों से जो हानि हो रही है उसका उल्लेख करने के पूर्व इन 'अलभ्य' लाभों का संक्षेप से विचार करना आवश्यक है।

१. विदेशों का आदर्श। कम्पनी-संचालन के समर्थकों

*Assembly Debates, Dt. 6th Sep. 1922, p. 44,

का सबसे पहिला तर्क यह है कि विदेशों में सरकारी-संचालन की अपेक्षा कम्पनी-संचालन अधिकतर लाभकारी और सुखदायक सिद्ध हुआ है†। इस बात की पुष्टि में इंगलैंड और अमेरिका का प्रमाण दिया जाता है। निस्सन्देह वहां का कम्पनी-संचालन बहुत अच्छा है। परन्तु ध्यान देने की बात यह है कि किसी भी देश में रेलों का संचालन स्वामी के सिवाय कोई नहीं करता। अर्थात् जिस देश की रेलें सरकार की सम्पत्ति हैं वहाँ सरकार संचालन करती है, और जिस देश में कम्पनियों की रेलें हैं वहाँ कम्पनियां संचालन करती हैं। और देश विशेष की सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक स्थिति पर कम्पनी-स्वामित्व और सरकार-स्वामित्व निर्भर है। वस्तु-स्थिति की विभिन्नता के कारण अन्य देशों का आदर्श अनुकरणीय नहीं हो सकता। भारत विदेशियों के चंगुल में फंसा हुआ है; इंगलैंड और अमेरिका आदि में स्वतन्त्रता की मनोहर लहरें लहरा रही हैं। इंगलैंड और अमेरिका में जो लाभप्रद है वह यहां हानिकारक हो सकता है। इंगलैंड और अमेरिका में कम्पनी संचालन आदर्श संचालन है तो इससे यह सिद्ध नहीं होता कि वह भारत में भी लाभप्रद हो सकता है। दूसरी बात यह है कि जिस कम्पनी-संचालन का आदर्श हमारे सम्मुख रक्खा जाता है, उसका यहां प्रश्न ही नहीं है। इंगलैंड और अमेरिका आदि में कम्पनियां अपनी रेलों का संचालन करती हैं, न कि दूसरों की रेलों का। परन्तु भारतीय प्रतिनिधि कम्पनियां सरकारी रेलवे का संचालन करती हैं, न कि अपनी का। वहां की रेलवे-कम्पनियां स्वयं हानि सहन करती हैं पर यहाँ की प्रतिनिधि कम्पनियों का हानि से कुछ सम्बन्ध नहीं है। हां, प्रति-

† Acworth Com. Report, Vol. I, para 268.

निधि कम्पनियों द्वारा संचालित सरकारी रेलवे में जितनी पूंजी लगी हुई है यद्यपि उसका दसवां भाग कम्पनियों का है परन्तु वह सरकार को ऋण दिया हुआ समझना चाहिये। वस्तुतः रेलवे में उनका कोई स्वामित्व नहीं है। आकवर्थ-कमेटी ने लिखा है कि 'ई० आई० आदि जो रेलवे-कम्पनियां हैं, वे यथार्थ में रेलवे कम्पनियां नहीं हैं। उनका ई०आई०रेलों में कोई स्वामित्व नहीं है—सर्वस्व सरकार का है*।' अतएव कम्पनियों (Private Enterprise से जो लाभ होता है, वह इन प्रतिनिधि कम्पनियों से नहीं हो सकता‡।

कई रेलवे-विशारदों का तो यहां तक कहना है कि सरकारी-संचालन सर्वत्र और सर्वदा हानिकारक है। सर आकवर्थ और प्रेट आदि रेलवे-विशेषज्ञों ने तो सरकारी-संचालन की निकृष्टता के प्रतिपादन में अनेक पुस्तकें लिख डाली हैं। जैसे सर आकवर्थ की 'Historical Sketch of State Railway Ownership' और E. A. Pratt प्रेट की 'The State Railway Muddle in Australia' आदि। आकवर्थ कमेटी के कम्पनी–संचालन–के–समर्थक सदस्य भी उपर्युक्त बात से सहमत हैं (रिपोर्ट पेज २५८)। यह सत्य है कि रेलवे व्यापारिक कार्य—प्रवृत्ति—है, इसलिये व्यवसायी कम्पनियों द्वारा उसका सुचारुरूप से संचालन हो सकता है। पर यह कहना कि सरकारी-संचालन संसार में सर्वत्र, सर्वदा और सर्वथा हानिकारक है, उचित नहीं। जर्मनी, बेलजियम जापान, स्विटजरलैंड और हालैण्ड आदि की रेलें सरकारी

* Acworth Com. Report, Vol. I, para 196.

‡ Bell; Ry. Policy, p. 86.

सम्पत्ति है और उनका संचालन सरकार ही करती है। वहाँ के संचालन में कोई दोष नहीं है। जर्मनी और बेलजियम की रेलों का आदर्श सरकारी-संचालन है। इंगलैण्ड के भूतपूर्व मंत्री लायड जार्ज ने मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया था कि 'जर्मनी और बेलजियम में सरकारी-संचालन के कारण देश की बहुत उन्नति हुई है §।' ब्रिटिश पार्लियामेंट द्वारा अच्छी तरह अनुसन्धान होने के पश्चात् मि० लायड जार्ज ने उपर्युक्त बातें कही थीं। प्रेसीडेंट हेडले के रेलवे विषयक विचार बहुत महत्वपूर्ण समझे जाते हैं। उनका कहना है कि दोनों प्रकार के संचालन एक समान हैं—दोनों ही दोष पूर्ण हैं*। पर सर आकवर्थ का कहना है कि "जिस देश में विदेशी पूंजी से रेलों का निर्माण हुआ है उस देश में कम्पनी-संचालन का अधिक विरोध हो सकता है†...स्वदेशी संचालन की अपेक्षा विदेशियों द्वारा-संचालन उत्तम भी हो, तब भी स्वदेशी संचालन ही अपेक्षित और वाञ्छित है‡।"

२. लंडन-बोर्डों के लाभ। प्रतिनिधि कम्पनियों के समर्थन में यह भी कहा जाता है कि इनके लंडन बोर्डों से अनेक लाभ होते हैं। प्रथम तो योग्य और अनुभवी संचालकों के हाथ में कार्य-भार रहता है। सरकारी कर्मचारी संचालन कार्य में उन के समान अनुभवी और प्रवीण नहीं हैं। अतएव कम्पनियों

§ Ghose: Ry. Economics, Vol. III, p. 48.

* A.T. Hadlay: Economics, p. 399, (New York, 1904).

† Acworth: State Ownership, p. 26.

‡ Acworth Com. Report, Vol. II, para 2746.

के बिना बोर्डों के अनुभव और कार्य-कुशलता से वञ्चित रहना पड़ेगा। मि० बेल का कहना है कि 'सरकार ने यह विचार कर कि लंडन-बोर्ड अधिक अच्छा संचालन कर सकेंगे, बहुतसा धन कम्पनियों को देदिया, पर सरकार की दृष्टि में यह नहीं आया कि बोर्डों के डाईरेक्टर प्रायः भारत-सरकार के अवसर-प्राप्त कर्मचारी ही हैं†।' बोर्डों के डाईरेक्टरों की योग्यता के सम्बन्ध में इतना लिखना ही यथेष्ठ है कि अनेक डाईरेक्टरों की अवस्था ६० और ६५ वर्ष तक की होती है। अर्थात् मानसिक और शारीरिक शक्तियों के जीर्ण होने पर भी किस दैवी शक्ति के प्रभाव से वे कितनी योग्यता से संचालन कर सकते हैं, यह हमारी समझ में तो नहीं आता। एक रेलवे-विशारद ने तो यहाँ तक लिखा है कि 'डाईरेक्टरों का इतनी वृद्धावस्था तक बोर्डों को 'सुशोभित' करना, अत्यन्त गर्हित कार्य है ‡।' बोर्डों का दूसरा लाभ ऋण मिलने की सुविधा बताया जाता है। परन्तु प्रतिनिधि कम्पनियाँ सरकार के आदेशानुसार जो ऋण सरकारी रेलों के लिये लेती हैं, वह वास्तव में कम्पनियों के विश्वास पर नहीं, पर भारत-मंत्री के उत्तरदायित्व पर मिलता है। अतएव इस विषय में भी कम्पनियों का कोई महत्व नहीं है। यह भी कहा जाता है कि सरकार की अपेक्षा कम्पनियों को ऋण सस्ता मिलता है। यह बात भी बिलकुल निर्मूल है। जो ऋण कम्पनियों को मिलता है, वह उनके विश्वास पर नहीं, किन्तु सरकारी ज़मानत पर मिलता है। इस लिये ऋण के सस्ते और महँगे होने से कम्पनियों का कोई सम्पर्क नहीं है। सत्य तो यह है कि सरकार

† Bell: Ry. Policy, p. 79.

‡ Tiwari: Indian Rys., p. 100.

को कम्पनियों की अपेक्षा ऋण सस्ता मिलता है* । कम्पनियों द्वारा जो ऋण लिया गया है उसका ब्याज ६॥ प्रति सैकड़ा तक दिया जाता है †, पर सरकार ने जो ऋण लिया है उसका इतना ब्याज नहीं है । आकवर्थ कमेटी के सारे सदस्यों का कहना है कि 'यदि किसी अंश में लण्डन बोर्डों को हितकारी भी मानलें, तब भी उनके ६ हजार मील दूर से सञ्चालन करने के कारण जो हानियां हो रही हैं, उनके संघर्षण में जो नाममात्र के लाभ हैं वे नहीं ठहर सकते ' (रिपोर्ट पेरा २०६) ।

३. व्यापार और राजनीति । प्रतिनिधि कम्पनियों के पक्ष में तीसरा तर्क यह है कि 'रेलवे व्यवसायिक कार्य है, अतएव उसका सञ्चालन व्यापारियों—कम्पनियों—द्वारा भलीभांति हो सकता है । सरकारी-संचालन के मार्ग में अनेक कण्टक पड़े हुए हैं जिससे सञ्चालन अच्छी तरह नहीं हो सकता ।' राजनीति यदि सरकारी-संचालन में बुराइयां पैदा कर सकती हैं, तो वह केवल प्रजातन्त्र राज्य प्रणाली में ही सम्भव हो सकता है न कि स्वेच्छाचारी शासन-प्रणाली में । सर आकवर्थ आदि सरकारी-संचालन के विरोधियों का भी यही मत है (A democratic government can not, with the ordinary political machinery, successfully run a commercial business.—Acworth; State Ownership, p. XIII)

Acworth; State Ownership, p. 44;

Bell; Ry. Policy, p. 86;

Acworth Com. Report, Vol. II, para 7112

† Acworth Com. Report, Vol. II, para 465

परन्तु राजनीति के कारण रेलवे-संचालन में कभी कोई बाधा नहीं पड़ी। प्रो० जोनसन (Emory Johnson of Pennsylvania University) तथा अन्य लेखकों का मत है कि, भिन्न भिन्न देश के राजनैतिक इतिहास से स्पष्ट है कि राजनीति ने रेलवे की उन्नति में आशातीत सहायता पहुंचाई है, न कि बाधा*।' यह सत्य है कि अन्य देशों में सरकार व्यापारिक कार्यों में अधिक भाग नहीं लेती, अतएव उनके लिये रेलवे-संचालन एक अंश में प्रशस्त नहीं हो सकता। परन्तु भारत-सरकार तो संसार की एक सब से बड़ी व्यापारिक संस्था है, उसके लिये रेलवे-संचालन कष्टसाध्य नहीं है। रहस्य तो यह है कि अंग्रेज व्यापारी तथा अन्य कम्पनी-संचालन-के-समर्थक केवल रेलवे को ही व्यापारिक कार्य बताकर कम्पनियों द्वारा सचालन कराने के लिये उत्सुक हैं। तार और नहरें आदि भी व्यापारिक कार्य हैं और अनेक देशों में ये कम्पनियों की सम्पत्ति है और वे ही इनका संचालन करती हैं। भारत में भी इनका संचालन कम्पनियों द्वारा कराने के लिये क्यों नहीं कहा जाता? बात यह है कि तार और नहरें अंग्रेजी वस्तुओं का अधिक प्रचार नहीं कर सकतीं। इन का संचालन कोई क्यों न करे, इससे गोरों को क्या प्रयोजन?

४. हड़तालें। कहा जाता है कि 'सारे रेलपथों का संचालन सरकार द्वारा होने से रेलवे के सारे मज़दूर एक स्वामी के आधीन हो जायंगे। जब कभी भी ये काम छोड़ेंगे, तब एक साथ छोड़ बैठेंगे। इससे कितना अनिष्ट होगा, यह अनुमान

* Ghose: Ry. Economics, Vol. III, p. 55.

करना कठिन नहीं है*। यद्यपि यह दलील महत्वपूर्ण और युक्तिसंगत प्रतीत होती है, परन्तु विचार करने से इसकी निस्सारता प्रत्यक्ष हो जायगी। सरकार अब भी तीन रेलों का प्रबन्ध करती है, पर जब सरकार-संचालित एक रेलवे पर हड़ताल होती है, तब साथ-साथ दूसरी सरकार-संचालित रेलों पर हड़ताल कभी नहीं होती। 'हड़तालों का आदि कारण कम्पनियाँ ही हैं, प्रतिनिधि कम्पनी-संचालित रेलवे पर ही सब से पहले हड़तालें हुईं और जितनी भी प्रधान प्रधान हड़तालें हुई हैं, वे सारी प्रतिनिधि कम्पनी-संचालित रेलों पर ही हुई हैं†।' इन बातों से स्पष्ट है कि न तो सरकार संचालित रेलों पर अधिक हड़तालें होती हैं और न अधिक होने की सम्भावना ही है।

५. कर्मचारी। एक यह भी आक्षेप है कि 'सरकार-संचालित रेलों के कर्मचारियों की आवश्यकता से अधिक संख्या और वेतन है, पर उनकी योग्यता कम है। और उनका समय समय पर परिवर्तन होता रहता है। इन कारणों से काम अच्छी तरह नहीं होता§।' वास्तव में बात यह है कि सरकार-संचालित ९ हजार मील रेलवे के लिये केवल ४६६ पदाधिकारी—अफसर—हैं। पर कम्पनी-संचालित ई० आई० रेलवे (२८००मील) के लिये २१९ और जी०आई०पी० (३२५० मील) के लिये २२१ हैं‡। किसी भी कम्पनी-संचालित रेलवे

* Acworth Com. Report, Vol. I, para 265.

† Ghose: Ry. Economics, Vol. III, p. 15-16.

§ Acworth Com. Report, Vol. I, para 264,266.

‡ Acworth Com. Report, Vol. I, p. 98.

पर सरकार-संचालित रेलवे की तुलना में कम कर्मचारी नहीं हैं। वेतन के सम्बन्ध में मि० रोबर्टसन का कहना है कि 'सरकार-संचालित एन०डब्लू० के मैनेजर को २५०० रुपये मासिक तथा अन्य सरकार-संचालित रेलों के मैनेजरों को २००० रुपये और १८०० रुपये से अधिक नहीं मिलता। पर कम्पनी-संचालित रेलवे के मैनेजर को ३००० रुपये मिलते हैं और उसे सरकारी मैनेजर की अपेक्षा १ हज़ार मील कम रेलवे का प्रबन्ध करना पड़ता है ₰। अब भी बी०एन० और बी०बी०सी०आई० के मैनेजरों को ४-४ हजार रुपये मासिक मिलते हैं पर एन०डब्लू० के मैनेजर को (जो उनसे अधिक मील रेलवे का संचालन करता है) केवल ३५०० रुपये मिलते हैं §। अन्य कर्मचारियों को भी इसी परिमाण में न्यूनाधिक वेतन मिलता है (देखो, Classified list)। योग्यता के सम्बन्ध में इतना लिखना ही पर्याप्त है कि कम्पनी संचालित रेलों के उच्च पदाधिकारी प्रायः सरकार-संचालित रेलपथों पर अनुभव-प्राप्त होते हैं। इस सम्बन्ध में माननीय मालवीयजी आदि ने जो अनेक नाम उद्धृत किये हैं†, उन्हें यहाँ लिखने की कोई आवश्यकता नहीं है। यह कहना भी उचित नहीं कि सरकार-संचालित रेलवे के पदाधिकारियों का अधिक परिवर्तन होता है। १९१८ से १९२३ तक ई० आई० रेलवे के लिये चार मैनेजरों का परिवर्तन हो चुका है। अमेरिका में (जहाँ सारी रेलें कम्पनियों द्वारा संचालित हैं)

₰ Robertson's Report, para 74 p. 24; para 78.

§ Classified list, 1922, p. 19, 124, 132.

† Council Proceedings, Dt. 24-3-1915, p. 588; Ghose: Ry. Economics, Vol. III, p. 14.

एक रेलवे के कर्मचारी दूसरी रेलवे पर अदल-बदल होते रहते हैं ‡। इस विषय में एक बात ध्यान देने योग्य यह है कि सरकार-संचालित रेलों पर जितने पदाधिकारी हैं, उनमें १५ प्रति सैकड़ा भारतवासी हैं, पर कम्पनी-संचालित रेलों पर केवल ८ प्रति सैकड़ा भारतवासी हैं§।

६. मितव्ययिता। कम्पनी-संचालन के समर्थकों का कहना है कि मितव्ययिता और संचालन की उत्तमता के कारण भी कम्पनी-संचालन अपेक्षित है¶। इस कथन की पुष्टि में ४-५ उदाहरण दिये गये हैं। उनमें से एक ले लीजिये। दोनों प्रकार की रेलों को प्रत्येक गाड़ी—ट्रेन—में माल (Freight weight) और खाली डिब्बों का वज़न (Dead weight) कितना होता है, इस विषय में आकवर्थ कमेटी के कम्पनी-संचालन-के-समर्थक सदस्यों ने निम्न लिखित अङ्क† उद्धृत किये हैं :

‡ Acworth Com. Report, Vol. III, para 6109.

§ Acworth Com. Report, Vol. I, p. 98.

¶ Acworth Com. Report, Vol. I, para 270.

† Acworth Com. Report, Vol. I, p. 78.

कम्पनी—संचालित			सरकार-संचालित		
रेलवे का नाम	माल टन	डिब्बोंका वज़न टन	रेलवे का नाम	माल टन	डिब्बोंका वज़नटन
बी. एन.	३१४	३२५	एन० डब्लू०	३०८	३६५
ई० आई०	३१७	४२७	ई० बी०	२१८	४४६
जी० आई० पी०	२४८	३२७	ओ० आर०	२९७	३५६
बी.बी. सी.आई.	२८०	३८६			
मद्रास०	२६३	३३५	औसत	२७४	३८९
औसत	२८६	३६०			

इन औसत अङ्कों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 'कम्पनी-संचालित प्रत्येक ट्रेन में १०० टन माल के साथ १२५ टन डिब्बों का वज़न है और सरकार संचालित ट्रेन में १०० टन माल के साथ १४१ टन डिब्बों का वज़न है। अर्थात् सरकार-संचालित ट्रेनों में डिब्बों का निरर्थक वज़न अधिक होता है—डिब्बों में जितना माल रखना चाहिये उतना असावधानी के कारण नहीं रक्खा जाता। परन्तु इन अङ्कों पर ध्यानपूर्वक विचार करने से उक्त तर्क की निस्सारता प्रकट हो जायगी। प्रथम तो प्रतिनिधि कम्पनियों द्वारा संचालित आठ रेलों में से चुनी हुई केवल पांच रेलों के ही अङ्क उद्धृत किये गये हैं। दूसरी बात यह है कि औसत करना उचित नहीं है। सरकार-संचालित एन० डब्ल्यू० और ओ० आर० की प्रत्येक ट्रेन के कुल वज़न में ४१ प्रति सैकड़ा (उपर्युक्त अङ्कों के आधार पर ही) माल था, बी० एन० को छोड़ कर कम्पनी संचालित सारी रेलों की प्रत्येक ट्रेन में ४२·३३ प्रति सैकड़ा माल था। सरकार संचा-

लित ई० बी० रेलवे की प्रत्येक ट्रेन में ३३ प्रति सैकड़ा माल होने का एक विशेष कारण है, जिसका उल्लेख आगे किया है।

वार्षिक रेलवे-रिपोर्ट में (देखो, Ry. Report, 1921–22, Vol. II, Appendix 12.) रेलवे-संचालन के भिन्न भिन्न १६१ अङ्कों से प्रायः सारे रेलपथों की परस्पर में तुलना की गई है। इन तुलनात्मक अङ्कों से ज्ञात होता है कि कम्पनी-संचालन और सरकारी संचालन में, संचालन की उत्तमता की दृष्टि से, कोई भेद नहीं है। किसी कार्य में कम्पनी-संचालन उत्तम दीखता है और किसी बात में सरकारी-संचालन। अतएव सरकारी विज्ञप्ति* के शब्दों में यह कहा जा सकता है कि संचालन के भिन्न २ अङ्कों के आधार पर संचालन की उत्तमता की तुलना होना असम्भव-सा है। यद्यपि रेलवे-बोर्ड कम्पनी-संचालन के पक्ष में है तथापि बोर्ड ने दोनों प्रकार के संचालनों की समानता स्वीकार की है† । यदि यह भी मान लें कि सरकार संचालित वर्तमान रेलवे, कम्पनी संचालित रेलों के समान लाभप्रद नहीं हैं, तब भी यह नहीं कहा जा सकता कि लाभप्रद नहीं होना सरकारी-संचालन का कारण और दोष है। क्योंकि आजकल जिन रेलों का सरकार-संचालन कर रही है, वे अनेक कारणों से (जिनका उल्लेख आगे किया है) लाभप्रद नहीं है, और इसी लिये किसी कम्पनी ने उनका संचालन करना स्वीकार नहीं किया और सरकार को स्वयं संचालन करने के लिये विवश होना पड़ा। अंग्रेज लेखकों का कहना है कि

*Ry. Dept. Circular, Dt. 10th July 1916.

†Acworth Com. Report, Vol. IV, p. 245;
Govt. of India, Despatch No: 18, Ry. 7-8-1917.

'सारे लाभप्रद रेलपथों का संचालन प्रतिनिधि कम्पनियां करें और जिनसे लाभ नहीं होता है उनका संचालन सरकार करे, यह सरासर अन्याय है† ।' संतुलन दो समान वस्तुओं में होता है, पर सरकार-संचालित और कम्पनी-संचालित रेलों में कोई समानता नहीं है, अतएव इनका संतुलन युक्तिसंगत नहीं होसकता।

जितनी विभिन्नता सरकारी और कम्पनी-संचलित रेलपथों में है, उतनी या उससे न्यूनाधिक विभिन्नता दो कम्पनी-संचालित रेलपथों में भी है। जैसे सरकार-संचालित ओ० आर० और ई० बी० का प्रत्येक इंजिन एक वर्ष में २१००० मील काम में लिया जाता है और कम्पनी-संचालित ई० आई० और बी० बी० सी० आई० का २५००० मील। यद्यपि एस० आई० भी कम्पनी संचालित है, पर उसका इंजिन केवल १७००० मील ही काम में लाया जाता है$ । इसी तरह के और कई उदाहरण हैं ‡। एक ओर तो यह व्यवस्था है और दूसरी ओर सरकार-संचालित एन० डब्लू० से कम्पनी संचालित ई० आई० का सञ्चालन व्यय कम है और एक दूसरी कम्पनी-संचालित रेलवे

† Crawford: Priliminary Negotiations;
(Huddleston: E. I. Ry, p. 101–3);
Hon. Rivers Thompson's Minute, Govt. of India, Despatch No. 92 Ry. Dt. 22ed July 1881, (Select Com. (1884) Report, p. 495–97).

$ Retrench. Com. Report, App. C.

‡ Ghose: Ry. Economics, Vol. III, p. 29–30.

को अर्थात् जी० आई० पी० का संचालन व्यय भी ई० आई० से अधिक है। जब दो कम्पनी सञ्चालित रेलों में अत्यधिक विभिन्नता है तब जो विभिन्नता सरकार संचालित और कम्पनी संचालित रेलों में है, वह किस तरह सरकारी सञ्चालन का दोष कहा जा सकता है? वास्तव में बात यह है कि सञ्चालन-व्यय आदि की न्यूनाधिकता का प्रधान कारण रेलवे विशेष की स्थिति है, जैसे ई० आई० के संचालन-व्यय की कमी का एक कारण यह है कि इसका कोयले की खानों में प्रभुत्व है, इसलिये इसे कोयला सस्ता मिलता है। अन्य रेलपथों को कोयले का मूल्य तो अधिक देना पड़ता ही है, पर उन्हें इसके सिवाय रेल भाड़ा भी देना पड़ता है। दूसरा कारण यह है कि इसके द्वारा सदैव एक समान आवागमन होता रहता है और इस का अनेक बड़े बड़े शहरों और कोयले की खानों से सम्बन्ध है, जिससे आय अधिक होती है और संचालन व्यय प्रति मील प्रति टन कम। यद्यपि जी० आई० पी० को भी बराड़ की रुई आदि के कारण बहुत आय होती है परन्तु यह रेलवे बहुत ढालू है, तथा बम्बई को जितने डिब्बे रुई आदि के जाते हैं उतने वहाँ से माल के नहीं आते, इसलिये बम्बई से खाली डिब्बे भेजने पड़ते हैं, इत्यादि कारणों से इसका संचालन व्यय प्रति टन प्रति मील अधिक होता है। एन० डब्लू० को सारे सिन्ध और पंजाब में एकाधिकार है तथा इसके द्वारा गेहूँ और रुई आदि का आवागमन भी बहुत होता है, पर इस का एक भाग केवल सैनिक कार्य के लिये है, तथा इसे भिन्न भिन्न स्थानों से माल के भरे हुये डिब्बों को एकत्रित करना पड़ता

है, इन कारणों से इसे आय नहीं होती। ई० आई० को भी भिन्न-भिन्न स्थानों से माल के डिब्बों को लाकर ट्रेनें बनानी पड़ती हैं, परन्तु ई० आई० की अपेक्षा एन० डब्लु० का क्षेत्र बहुत अधिक विस्तृत है। एन० डब्लु० को बहुत दूर दूर से डिब्बों को लाना पड़ता है। ई०बी० का सम्बन्ध प्रधानतः जूट से है। जूट के लिये अधिक स्थान अपेक्षित होने से डिब्बों में जितना माल आना चाहिये उतना नहीं आसकता। इसके सिवाय यह रेलवे दो प्रकार के गाजों में विभक्त है, और मार्ग में नदियों की बाधा भी बहुत है। इन कारणों से इसका संचालन-व्यय प्रति मील प्रति टन अधिक होता है। ओ०आर०रेलवे पर थोड़ी थोड़ी ही दूर माल जाता है। क्योंकि इस रेलवे की स्टेशनों से जो माल कलकत्ते जाता है, वह केवल मुगलसराय तक ही इस रेलवे पर जा सकता है, जो माल कराची जाता है वह सहारनपुर तक और जो बम्बई जाताहै वह कानपुर या बरेली तक ही जासकता है। आगे दूसरे दूसरे रेलपथों द्वारा गन्तव्य स्थान तक पहुंचाया जाता है। अतएव इस रेलवे की आय कम और संचालन-व्यय प्रति मील प्रति टन अधिक है।

उपर्युक्त बातों पर विचार करने से सहज में ही समझ में आजायगा कि भिन्न भिन्न रेलों के संचालन-व्यय आदि की न्यूनाधिकता का कारण पृथक् पृथक् रेलपथों की पृथक् पृथक् विशेषताएं हैं, न कि सरकारी-संचालन या कम्पनी-संचालन का कारण।

•

७. प्रतिद्वंद्वता। इंगलैंड आदि में रेलों का संचालन कम्पनियों द्वारा होने से, एक महत्वपूर्ण लाभ यह होता है कि उनकी

पारस्परिक स्पर्धा के कारण सर्व साधारण को अधिकाधिक सुख और सुविधा मिलती है तथा संचालन बहुत सावधानी और उत्तमता से होता है। पर यहाँ की कम्पनियों में प्रतिस्पर्धा नहीं [देखो, ११वां प्रकरण], अतएव भारतीय प्रतिनिधि कम्पनियां इस दृष्टि से भी उपादेय नहीं हैं।

प्रतिनिधि कम्पनियों से हानियाँ।

१–गारंटी। उपर्य्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि कम्पनी-सञ्चालन किसी प्रकार भी सरकारी-सञ्चालन से उत्कृष्ट और विशिष्ट नहीं है। अब, उनके द्वारा जो क्षिति हो रही है, उसका विचार करना आवश्यक है। पुरानी गारन्टी कम्पनियों के समान वर्तमान प्रतिनिधि कम्पनियों को भी उनकी पूंजी पर २–४ प्रति सैकड़ा गारन्टी–इंटरेस्ट दिया जाता है। गारन्टी से जो हानियां होती हैं वे पुरानी गारन्टी कम्पनियों के दुष्परिणामों से प्रत्यक्ष हैं। ए० बी० से तो सदैव ही, पर जी० आई० पी० आदि अन्य रेलों से भी गारन्टी के समान प्रायः आय नहीं होती। अतएव गारन्टी को पूरा करने के लिये सरकार को बहुत हानि सहन करनी पड़ती है।

२–सर्प्लस। प्रतिनिधि कम्पनियों को लगभग एक–दो करोड़ रुपये सर्प्लस के प्रतिवर्ष मिलते हैं। युद्ध-काल में इंगलैंड आदि से आवश्यक वस्तुएँ न आने के कारण रेलवे-सड़क, इंजिन और डिब्बे आदि का जीर्णोद्धार नहीं होसका, इसलिये संचालन व्यय बहुत कम हुआ। उचित तो यह था कि जितना धन मरम्मत आदि में नहीं व्यय होसका उसे एक पृथक् कोष में संचित कर दिया जाता, और जब आवश्यक सामान आने

लगता तब उसे व्यय कर दिया जाता। व्यापारिक दृष्टि से तथा आकवर्थ और रिट्रेंचमेंट कमेटियों के मतानुसार ऐसा होना आवश्यक था‡। परन्तु ऐसा किया नहीं गया! जो धन व्यय नहीं होसका उसे सर्प्लस समझा गया, जिसका फल यह हुआ कि कम्पनियों को करोड़ों रुपये मामूली सर्प्लस से अधिक मिलगये! इस प्रकार और भी कई मार्गों से कम्पनियां लाभ उठारही हैं। यदि किसी वर्ष सरकार को हानि होती है तो भी कम्पनियों को तो सर्प्लस मिल ही जाता है। उदाहरणार्थ १९२१-२२ में सरकार को लगभग १० करोड़ की हानि थी, पर कम्पनियों को तो १ करोड़ रुपये सर्प्लस के मिल ही गये! (देखो, पृष्ठ ९३-९४)। सरकार को आधा प्र० सै० भी लाभ नहीं होता—सरकारी हिसाब से भी सरकार को रेलों से ३-४ प्रति सैकड़े से अधिक लाभ नहीं हो रहा है, पर कम्पनियों को तो ९-१० प्रति सैकड़े तक लाभ हो जाता है*। सरकार को नुक़सान पहुँचा करही कम्पनियां इतना लाभ कर सकती हैं, अन्यथा कैसे सम्भव हो सकता है?

३—लंडन-बोर्ड। बोर्डों का सारा खर्च भी रेलवे की आयसे दिया जाता है—डाईरेक्टरों का अत्यधिक वेतन तथा लाखों रुपये, जो बोर्डों के अन्य कार्य्यों में प्रतिवर्ष व्यय होते हैं, वे भी सरकारी रेलों को आय से दिये जाते हैं। यह हानि वृथा ही सरकार को हो रही है।

४—व्यय की अधिकता। कम्पनियां मितव्ययिता का कोई

‡ Retrenchment Com. Report, para 7.

* Acworth Com. Report, Vol. II, para 2114;
Vol. III, para 4837.

ध्यान नहीं रखतीं। दूसरी बात यह है कि अनेक कम्पनियों द्वारा एक ही स्वामी की रेलों का संचालन होने से बहुत अधिक व्यय होता है*। कई रेलों का एक साथ संचालन होने से कम व्यय होना, एक स्वाभाविक बात है†।

५ हित-विरोध। यद्यपि इन कम्पनियों द्वारा संचालित रेलें सरकार की सम्पत्ति है, किन्तु भिन्न भिन्न कम्पनियों द्वारा संचालन होने से कम्पनियों में, और सरकार-सञ्चालित रेलों और कम्पनियों में परस्पर में हित-विरोध है, इससे बहुत हानि और असुविधा हो रही है। कुछ उदाहरण देखिये:— (क) कम्पनी सञ्चालित ई० आई० और बी० एन० द्वारा जो कोयला सरकार-सञ्चालित एन०डब्लू०और ओ०आर० आदि को मिलता है, उसका भाड़ा ई०आई० आदि रेलें उनसे (एन० डब्लू० आदि से) सर्व साधारण के समान लेती हैं। इस भाड़े में जो लाभ का अंश है, उसका एक भाग कम्पनी को (ई० आई० और बी० एन०रेलवे कम्पनियों को) सर्प्लस के रूप में मिल जाता है। इसी प्रकार अन्य कई मार्गों से कम्पनियाँ सदैव लाभ उठाती रहती हैं‡। (ख) 'क' रेलवे के डिब्बे माल को यथास्थान पहुँचाने के लिये 'ख' रेलवे की किसी स्टेशन को जाते हैं। 'ख' रेलवे उन डिब्बों को खाली ही 'क' रेलवे को लौटा देती है। इस प्रकार खाली डिब्बे लाखों मील प्रति वर्ष घूमते रहते हैं। इस से डिब्बों का सत्यानाश होता है, और सहस्रों टन कोयलों का तथा बहुत से श्रम (Labour) का दुरुपयोग होता

* Bell: Ry. Policy, p. 68–69.

† Acworth: Rys. and Traders, p. 287.

‡ Ghose: Ry. Economics, Vol. II, p. 85–88.

है। इसके सिवाय खाली डिब्बों के इधर-उधर घूमने से ट्रेनों के आवागमन में बाधा उपस्थित होती है और डिब्बों की कमी बनी रहती है। (ग) बहुधा सीधे मार्ग से माल न आकर चक्करदार मार्ग से भेजा जाता है, जैसे कलकत्ते से पंजाब को माल भेजने में ओ० आर० का लखनऊ मार्ग निकटवर्ती है, पर माल ई० आई० के दिल्ली मार्ग से आता है। क्योंकि कलकत्ते से ई० आई० केवल मुगलसराय तक माल लाकर, आगे को लखनऊ मार्ग से जाने के लिये मुगलसराय में ओ० आर० को नहीं देती, किन्तु स्वयं दिल्ली मार्ग से अम्बाले तक ले आती है। इसका कारण यह है कि ई० आई० पर मुगलसराय तक केवल ४०० मील न जाकर अम्बाले तक १००० मील जाने से—अधिक दूर जाने से—ई० आई० को प्रत्यक्ष लाभ है। और देखिये। बंगाल को कोयले की खानों से बम्बई बी० एन० रेलवे के नागपुर-मार्ग से समीप है। और ई० आई० के जबलपुर-मार्ग से १०० मील अधिक दूर है। किंतु जिन खानों के पास ई० आई० रेलवे है वहाँ से कोयला बम्बई को जबलपुर मार्ग से ही जाता है! ऐसा करने से ई० आई० को ५००-६०० मील का भाड़ा मिलता है। परन्तु यदि ई० आई० अपने निकटस्थ बी० एन० को नागपुर मार्ग से लेजाने को कोयला देदे तो उसे (ई० आई० को) केवल ५०-६० मील का ही भाड़ा मिलता है। बंगाल की खानों से दिल्ली ई० आई० मार्ग से ७५० मील है और बी० एन० के मार्ग से (बिलासपुर-कटनी-झांसी-आगरा मार्ग से) ११०० मील। पर जिन खानों के समीप बी० एन० रेलवे है वहां से कोयला दिल्ली और पंजाब को बिलासपुर—मार्ग से ही जाता है! कारण वही है, अर्थात् ऐसा करने से बी० एन० को ५००-६००

मील का भाड़ा मिलता है, नहीं तो केवल ५०-६० मील का ही मिले। ऐसे अगणित उदाहरण हैं तथा यह अनर्थ सारी रेलों पर होरहा है। (घ) एक बात यह है कि प्रतिनिधि कम्पनियां अपने अपने स्टेशनों से आनेवाले माल को उसके स्वाभाविक मार्ग और स्थान को जाने से ब्लाक-रेट (देखो, ११ वां प्रकरण) द्वारा प्रायः रोक देती हैं, और उसे अन्य मार्ग से अन्यत्र ही ले जाती हैं, जिससे दूसरी रेल पर माल न जाकर अपनी रेलवे पर ही सुदूर तक जाने से उसको (कम्पनी को) अधिक लाभ होसके। इस अनर्थ का उल्लेख सरकारी पत्रों में भी है †। अम्बाले से इलाहाबाद तक ई० आई० और ओ० आर० रेलें समानान्तर पर हैं। दोनों पर बहुत भीड़ रहती है। पर यदि ये दोनों संयुक्त होती तो अब जितनी असुविधा है उतनी नहीं होती। आकवर्थ कमेटी के सरकारी संचालन-के-समर्थक सदस्यों का कहना है कि 'आपस में इनका हित-विरोध है, इसलिये यह असुविधा है। पर हमें यह आश्चर्य है कि यद्यपि ई० आई० रेलवे कम्पनी का सर्प्लस में केवल शतांश भाग है, तथापि वह उस माल को अपनी रेलवे पर ही लेजाने की कोशिश करती है, जो ओ० आर० पर सुविधा से जा सकता है ‡।' (ङ) जो माल एक से अधिक रेलपथों द्वारा यथास्थान पहुँचता है, उसके लिये थ्रू-रेट (देखो, ११ वां प्रकरण) नहीं लिया जाता। थ्रू-रेट लेने से केवल माल भेजने वाले का ही लाभ नहीं, परन्तु रेलवे को आय-वृद्धि भी हो सकती है*।

† Govt. of India Despatch No. 55 Dt. 25-3-1890.

‡ Acworth Com. Report, Vol. I, para 224.

* Ghose: Ry. Economics, Vol. III, p. 4.

किन्तु थ्रू-रेट के कारण यद्यपि सारे रेलपथों की सम्मिलित आय में वृद्धि होसकती है, पर भिन्न-भिन्न कम्पनियों की वर्तमान आय में निस्सन्देह न्यूनाधिकता हो जायगी। इस लिये कम्पनियां थ्रू-रेट नहीं लेतीं, पर सरकार को तो वह हानि हो रही है। (च) बहुधा कुछ रेलों पर सहस्रों डिब्बे निरर्थक पड़े रहते हैं, और दूसरी रेलों पर डिब्बों की कमी के कारण अनेक असुविधाएँ रहतीं हैं। इसके सिवाय 'क' रेलवे के डिब्बे जब माल लेकर 'ब' रेलवे पर जाते हैं तब "ब" रेलवे उनका उपयोग कर लाभ उठाती है। यद्यपि 'क' रेलवे को उसके डिब्बों का किराया मिलता है (एक रेलवे के डिब्बे दूसरी रेलवे पर जितने दिन रहते हैं, उसका प्रतिदिन के हिसाब से किराया लिया जाता है) किन्तु 'ब' रेलवे उनसे जो लाभ उठाती है वह उस किराये से बहुत अधिक होता है। एक बात यह भी है कि उन डिब्बों के स्वामी "क" रेलवे को डिब्बों की कमी के कारण हानि और असुविधा होती है। (छ) प्रतिनिधि कम्पनियों के पारस्परिक हित-विरोध के कारण अनुत्पादक मूलधन की वृद्धि भी होरही है। उदाहरणार्थ आगरे में दो पुल और आठ स्टेशने हैं! एक ही जगह बराबर बराबर दो पुलों का होना, कम्पनी-संचालन और अंग्रेजी शासन की महत्ता है, अन्यथा ऐसा होना सम्भव नहीं। पास पास दो पुल और कई स्टेशनें होने का कारण यही है कि प्रतिनिधि कम्पनियों ने अपने अपने काम के लिये पृथक् पृथक् पुल और स्टेशनें बनाली हैं। पर इन पुलों और स्टेशनों का स्वामी एक ही है, अतएव उस स्वामी सरकार के लिये ऐसा होना अत्यन्त हानिकारक है। परस्पर के हित-विरोध के कारण और भी कई अनर्थ हो रहे हैं।

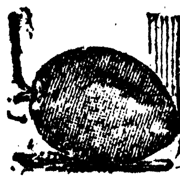
प्रतिनिधि कम्पनियों द्वारा संचालन होने से जो जो हानियाँ और असुविधायें होरही हैं, उनका जो संक्षिप्त विवरण ऊपर लिख चुके है, उस से स्पष्ट है कि कम्पनियों के अन्त होने से करोड़ों रुपयों की बचत होसकती है तथा सर्व साधारण की असुविधायें भी कम होजायँगी।

न्यूतन कम्पनियां।

इंगलैंड में संस्थापित और संघटित वर्तमान प्रतिनिधि कम्पनियों का अत्यधिक विरोध होने के कारण बहुत से गोरे व्यवसायी तथा कम्पनी-सञ्चालन-के-अन्य-पक्षपाती थोड़े बहुत भयभीत हुए हैं। उन्हें इन कम्पनियों के अन्तकाल का भयंकर भूत दीख रहा है। अतएव इन्होंने कम्पनी-संचालन को परिष्कृत रूप में विद्यमान रखने की एक नई युक्ति सोच निकाली है, जिससे इनके अनियमित स्वार्थों की रक्षा होसके तथा भारत के दोहन में किसी प्रकार की बाधा उपस्थित न हो। रेलवे बोर्ड तथा कम्पनी-संचालन-के-समर्थक आकवर्थ कमेटी के सदस्यों का कहना है कि 'वर्तमान कम्पनियों के अन्त होने पर सरकारी संचालन न हो कर, भारत में नई कम्पनियों का संगठन कर उनके द्वारा संचालन कराना 'देशहित की दृष्टि से' आवश्यक है। इन महाशयोंने यह विचार कर कि 'भारतवासी वर्तमान कम्पनियों के विरोधी हैं और उन्हें सरकारी संचालन के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं सूझता अतः वे सरकारी-संचालन के पक्षपाती हैं। किन्तु यदि उन्हें सरकारी-संचालन के स्थान में भारतीय कम्पनियों द्वारा संचालन होने का लोभ दिया जायगा तो वे अवश्य ही 'भारतीय' शब्द के प्रलोभनमें फंसकर सरकारी-संचालन की अपेक्षा भारतीय कम्पनियों द्वारा होने वाले संचालन

को अधिकतर हितकर समझ, हमारे प्रस्ताव को सहर्ष और धन्यवाद सहित स्वीकार करलेंगे।' इस विषय में यह ध्यान देने की बात है कि यहाँ की कम्पनियों को भी उनकी पूंजी का ३-४ प्रति सैकड़े से अधिक गारन्टी-इंटरेस्ट सरकार देना स्वीकार नहीं करगी और इतनी गारन्टी पर यहां धन नहीं मिल सकता। हां, यहां के गोरे-व्यापारी इतने ब्याज पर सहर्ष यथेष्ट धन विनियोग करदेंगे। फल यह होगा कि यद्यपि कम्पनियों का संगठन भारत में होगा पर विदेशी पूँजी के कारण अथवा यों समझिये कि विदेशी हिस्सेदारों के कारण संचालन सर्वाङ्ग विदेशी होगा।

ये कम्पनियाँ भी वास्तविक कम्पनियां न हो सकेंगीं। क्योंकि इन कम्पनियों की शर्तें और स्थिति वर्तमान कम्पनियों के समान ही होगी। अतएव अन्य देशों में कम्पनी-संचालन से जो लाभ होते हैं वे लाभ इन कम्पनियों से भी न हो सकेंगे। इन कम्पनियों के दोष और निस्सारता आदि के विषय में आकवर्थ कमेटी के सरकारी-संचालन-के-समर्थक सदस्यों ने बहुत कुछ लिखा है (रिपोर्ट, पेरा २२५-२६)। वर्तमान प्रतिनिधि कम्पनियों और इन नव-प्रसूता कम्पनियों में भेद केवल इतना होगा कि वर्तमान कम्पनियां लंडन से संचालन कर रही हैं और ये कम्पनियां यहीं रहेंगी, जिसका दुष्परिणाम तो यह अवश्य होगा कि भारतीय हितों की हत्या अधिक सुगमता से हो सकेगी।



सातवां प्रकरण।

पूंजी का प्रतिफल (अन्यान्य कारण)

———:o:———

भारतीय रेलों में जो धन लगा हुआ है उसका उचित प्रतिफल न मिलने के और भी कई कारण हैं—

१. सञ्चालन-व्यय। इंगलैंड के Institute of Transport के दिसम्बर १६२२ के सम्मेलन में अनेक प्रतिष्ठित २ रेलवे-विशारदों ने इस बात को बहुत महत्व दिया था कि रेलवे की आय-वृद्धि भाड़े की वृद्धि पर अवलम्बित नहीं है—भाड़े को बढ़ाने से आय अधिक नहीं हो सकती। योग्यता से तथा मितव्ययिता से संचालन करने से ही आय अधिक हो सकती है।' किन्तु भारत में आय-वृद्धि के लिये संचालन-व्यय को कम करने की ओर ध्यान न देकर, समय समय पर किराया ही बढ़ा दिया जाता है। पर इससे आय की वांछित वृद्धि नहीं होती। युद्ध के पूर्व १६१३-१४ में कुल आय का ५० प्रति सैकड़ा संचालन में व्यय होता था। परन्तु यद्यपि गतवर्षों में भाड़े की अत्यधिक वृद्धि होगई है तथापि अब ७५ प्रति सैकड़ा आय संचालन-व्यय में शेष हो जाती है। कहा जाता है कि विदेशों की अपेक्षा भारत में संचालन व्यय कम हो रहा है। किन्तु

वास्तव में यह बात नहीं है। क्योंकि विदेशों की अपेक्षा यहाँ भाड़ा अधिक लिया जाता है (देखो, १०वां प्रकरण), अतएव आय अधिक हो रही है, यदि विदेशों के समान भाड़ा लिया जाय तो आय कम होगी, जिससे संचालन-व्यय प्रति सैकड़ा अधिक होने लगेगा; अर्थात् अब जो ७५ प्रति सैकड़ा होरहा है, वह लगभग ९५ प्रति सैकड़ा होने लगेगा। दूसरी बात यह है कि विदेशों में संचालन व्यय की अधिकता का कारण सर्व साधारण को उच्चकोटि का सुख और सुविधा पहुंचाना है*। वहां न यात्रियों के लिये कोई कष्ट है और न माल के गमनागमन के लिये ही कोई असुविधा। वहाँ की तुलना में यहाँ सुख-सुविधा कहाँ है? अतएव भारत में अवश्य ही कम संचालन व्यय होना चाहिये। पर वास्तव में यहां ९५ प्रति सैकड़ा आय संचालन में व्यय हो जाती है, पर वहाँ इतना संचालन-व्यय नहीं है।

यहाँ की रेलों के सञ्चालन व्यय की अधिकता का मूल कारण अपव्यय है। सरकार-सञ्चालित और कम्पनी-सञ्चालित, दोनों प्रकार की रेलों पर बहुत अपव्यय होता है, अपव्यय के दो-चार उदाहरण देखियेः—(क) यहाँ के एक रेलवे एजेंट ने स्वीकार किया है कि 'पुरानी वस्तुओं को नई वस्तुओं में परिवर्तित करने में बहुत व्यय किया जाता है। आवश्यक परिवर्तन होना तो उचित ही है, पर अनावश्यक परिवर्तन लाभप्रद नहीं हो सकता। यहां प्रतिवर्ष ६० मील रेलवे-सड़क की लोहे की पुरानी रेलें बदल कर नई लगाई जाती हैं।

* Assembly Debates Dt. 13-3-1923, p. 3313.

इस कार्य में जितना व्यय होता है यदि उसका तीसरा भाग भी पुरानी रेलवे-सड़क के जीर्णोद्धार में व्यय किया जाय तो बीस वर्ष तक वह और काम देसकती है।' इस कथन को उद्धृत कर रिट्रेंचमेंट कमेटी का कहना है कि 'एजेंटों और इञ्जिनियरों की इच्छा के विरुद्ध इस प्रकार अपव्यय करना सरकार को उचित नहीं है*।' उक्त व्यवस्था केवल किसी एक रेलवे के लिये नहीं है, परन्तु सारे सरकारी रेलपथों के लिये है। इञ्जिन और डिब्बे आदि को भी एक निश्चित समय उपरान्त निकम्मा समझ कर, उनके स्थान में नये बनाये जाते हैं। बी० एन० का प्रत्येक डिब्बा ४५ वर्ष, ई० आई० का ३४ वर्ष, एन० डब्लू० का २१ वर्ष, और मद्रास रेलवे का १७ वर्ष पीछे अनुपयोगी समझा जाता है‡। यदि यह भी मानलें कि बी० एन० का डिब्बा वास्तव में ४५ वर्ष उपरान्त निकम्मा होजाता है तब भी मद्रास रेलवे के डिब्बे को १७ वर्ष पीछे ही अनुपयोगी समझ कर फेंक देना कहां तक उचित है यह परमात्मा ही जाने। पर यह प्रत्यक्ष है कि निकम्मा समझा हुआ डिब्बा और भी कई वर्षों तक काम में आ सकता है। (ख) रेलवे कार्य में उच्च-पदाधिकारी आवश्यकता से अधिक हैं। पहले लिख चुके हैं कि ६००० मील रेलवे के लिये ४६६ उच्च-पदाधिकारी हैं, जो भी निस्सन्देह बहुत अधिक हैं, पर २८०० मील रेलवे के लिये २१६ हैं। जो उच्च पदाधिकारी हैं वे प्रायः सारे विदेशी हैं और उन्हें बहुत अधिक वेतन दिया जाता है (देखो, ६वां प्रकरण)। (ग) रेलवे के लिये आवश्यक वस्तुएँ जहाँ सस्ती मिलती हैं वहाँ नहीं खरीदी जातीं (देखो, १२ वाँ

* Retrench. Com. Report, para 12. ‡ para 28.

प्रकरण), पर इंगलैंड की वस्तुओं को, अधिक मूल्य देकर, खरीदते हैं। और भी कई मार्गों से अपव्यय होता है।

सञ्चालन-व्यय की अधिकता का एक यह भी कारण है कि संचालन सोच समझ कर नहीं किया जाता, जिससे व्यय अधिक होता है। उदाहरणार्थ बहुत से डिब्बे निरर्थक खाली घूमते रहते हैं, डिब्बों में जितना माल रखना चाहिये उससे बहुत कम रक्खा जाता है। माल गाड़ियों की गति बहुत मंद है। यहाँ की ट्रेनों में माल भी बहुत कम रहता है†। इत्यादि।

२. ऋण। सरकार ने रेलों के लिये अर्बों रुपये का ऋण ले रक्खा है। और दिन पर दिन इसकी वृद्धि हो रही है। लगभग २३–२४ करोड़ रुपये प्रति वर्ष इस ऋण के व्याज के देने पड़ते हैं (देखो ३रा और ८ वां प्रकरण)। यह व्याज रेलवे की आय से अथवा जिस वर्ष इतनी आय नहीं होती उस वर्ष दूसरे मार्ग से—कर-वृद्धि द्वारा अथवा ऋण लेकर—चुकाया जाता है। यदि रेलवे की वृद्धि के लिये और ऋण न लिया जाय तथा जो रेलवे से आय हो उसे रेलवे की वृद्धि में व्यय न कर, उसको ऋण से उऋण होने में व्यय किया जाय तो, भारतीय रेलों में जो धन-विनियोग हो चुका है उसका पर्याप्त प्रतिफल प्राप्त हो सकता है।

३. भाड़ा। विदेशों को जानेवाली और वहां से आनेवाली चीजों के लिये यहां की रेलें बहुत कम भाड़ा लेती हैं (देखो, १३ वां प्रकरण)। इस कारण भी रेलवे से उचित आय नहीं होती—पूँजी का यथेष्ट प्रतिफल नहीं मिलता।

† Robertson's Report, para 181, 216, and 221.

४. निरर्थक रेलपथ। अनेक रेलों से उतनी भी आय नहीं होती जितना कि उसके संचालन में व्यय होता है। ऐसे रेल पथों में कई सर्वथा अनावश्यक हैं। जैसे ए० बी० रेलवे से सरकार को प्रति वर्ष हानि होती है। यह रेलवे केवल आसाम के गोरे व्यापारियों के लिये बनी है और इसके द्वारा इन व्यापारियों की चाय के आने-जाने के अतिरिक्त और कोई विशेष काम नहीं होता। जब चाय के गमनागमन के लिये ब्रह्मपुत्र आदि नदियों का बहुत सुगम और सस्ता साधन है, फिर इस रेलवे से वृथा हानि सहना कभी उचित नहीं समझा जा सकता। पश्चिमोत्तर सीमा के समीप खोजाक में जो रेलवे बन रही है वह सर्वथा अनावश्यक है। इस रेलवे में इतना अधिक धन व्यय हो चुका है कि यदि लोग यह पूछें तो कोई आश्चर्य नहीं कि इस रेलवे-सड़क पर पत्थर के रोड़े बिछाये गये हैं अथवा चांदी के†।

५. सैनिक रेलें। एन० डब्लू० रेलवे का अधिकतर भाग सैनिक कार्य के लिये बना है और इसी काम में आता है। इसलिये इससे आय कहां? संचालन-व्यय के रूप में करोड़ों रुपये की प्रति वर्ष हानि ही होती है। नियमानुसार इस रेलवे की हानि सैनिक-व्यय में शामिल होनी चाहिये। इस विषय में कौंसिल में प्रस्ताव भी हुआ था‡, पर रहस्य यह है कि सैनिक व्यय जितना अधिक है उसे प्रत्यक्ष करना सरकार नहीं चाहती। सर मेयर (भूतपूर्व अर्थ-सदस्य) ने कहा है कि 'सैनिक-व्यय अधिक होने के कारण, वह लोगों को असह्य होरहा है। अतएव सैनिक

† K. T. Shah; Sixty Years of Indian Finance, p. 315

‡ State Council Debates, Dt. 13-2-1922, p. 765.

रेलवे की हानि उस में जोड़ना अच्छा नहीं होगा† ।" इसके अतिरिक्त, अन्य रेलें जो सैनिक कार्य करती हैं, उसका भाड़ा बहुत कम दिया जाता है‡ ।

६. विभागाधिकता । भारतीय रेलवे अनेक भागों में विभक्त है—यहां जितने विभाग संसार में और कहीं नहीं हैं। जो रेलवे समूह हैं वे भी अपर्याप्त हैं । जी० आई० पी०, बी० बी० सी० आई०, और इनके सन्निकट अन्य छोटे छोटे रेलपथ, इनका एक समूह में संचालन होने से; ई० आई०, बी० एन०, ओ० आर०, ई० बी० (बड़ी लाइन) आदि के एक होने से; ए० बी०, बी० एन० डब्लू०, ई० बी० (छोटी लाइन), आर० के० आदि के एक होने से; और मद्रास और एस० आई० आदि के एक होने से बहुत लाभ हो सकता है। इस प्रकार के एकीकरण को लाभप्रद समझ कर ही इंगलैंड की भिन्न भिन्न रेलों को सम्मिलित करने के लिये वहां हाल में ही कानून (English Rys. Act, 1921) बना है। यदि यहां भी इंगलैण्ड के समान व्यवस्था करदी जाय तो संचालन व्यय बहुत कम हो और आय अधिक ।"

† Acworth Com. Report, Vol. II, para 8266.

‡ Indian Army Regulations, Vol. X, App. V and IX.

आठवां प्रकरण।

विदेशी-पूंजी (Foreign Capital)

दूसरे प्रकरण में लिख आये हैं कि विदेशों में रेलवे के कारण वहां के धनाढ्यों को धन-विनियोग का एक नवीन साधन मिला है, पर यहां के धनिकों को यह लाभ नहीं हुआ। जो धन सरकारी रेलों में लगा है, वह प्रायः सारा का सारा ऋण-रूप में इंगलैंड से आया है। यहां की रेलों में भारतीय पूंजी का प्रयोग न होने के अनेक कारण बताये जाते हैं। यह नहीं कहा जाता कि भारत में धन नहीं है, पर कहा यह जाता है कि 'भारत में धन अवश्य है, पर वह उद्योग-धन्धों में नहीं लगाया जाता। लोगों ने उसे संचित कर छोड़ा है, अथवा अपनी असूर्य्यंस्पश्या महिलाओं के लिये आभूषण बना रक्खे हैं; जो धन यहां मिलता है, उसके लिये बहुत ब्याज देना पड़ता है।' ये आक्षेप कहाँ तक सत्य हैं इनका विचार करना आवश्यक है।

(१) यह कहना बिलकुल निर्मूल है कि भारत में धन की प्रचुरता है। हाँ, अंग्रेजों के हाथ में भारत की शासन डोर आने के पहले

निस्सन्देह यहाँ कल्पनातीत सम्पत्ति थी† । अंग्रेजों को यहां की राजसत्ता प्राप्त होने के पश्चात् यहाँ से अतुल धन इंगलैंड को गया और अब भी करोड़ों रुपये प्रति मास इंगलैंड को जारहे हैं, इस कारण से ही आज यहां धन की कमी होगई है। यहाँ के धन का जो दोहन होरहा है उसका प्रवाह विशेष कर अंग्रेजी-भारत सेही प्रवाहित होरहा है‡ । इसलिये वही अधिक दीन-हीन है। देशी राज्यों की जनता तो फिरभी कुछ-न-कुछ अधिक अच्छी अवस्था में है* । अस्तु । भारतीय धन के पहुंचने के पहले (१७५० ई०) इंगलैंड में १०–२० महाजन भी नहीं थे। भारतीय-धन के प्रचुर परिमाण में पहुंचने के प्रभाव से हो आज इंगलैंड इतना सम्पत्तिशाली हो गया है$ । इंगलैंड में ५ हजार, आस्ट्रेलिया में ६ हजार, फ्रान्स, जर्मनी, डेनमार्क और अमेरिका आदि में ४–४ हजार रुपये प्रति जन संचित-धन है, पर भारत में केवल १००–१५० रुपये ! यद्यपि हिन्दुओं और मुसलमानों के उत्तराधिकार सम्बन्धी सुव्यवस्था के अनुसार राज-परिवार के अतिरिक्त (राज-परिवारों में केवल जेष्ठ पुत्रका उत्तराधिकारित्व (Primogoniture) होता है) उत्तराधिकारियों में समान भाग होता है, तथापि धन का न्यूनाधिक होना स्वाभाविक है। अर्थात् यहां प्रति जन औसत

† C. A. Herrick; History of Commerce, p. 34;
J. S. Cotton; Colonies and Dependencies;
Lethbridge; History of India;
Digby, p. 104; Etc. Etc.

‡ Hyndman; Asia, p. 233. * p. 230.

$ Adams; Civilization and Decay, p. 264.

में १००–१५० रुपये हैं किन्तु वास्तव में बहुत न्यूनाधिकता है। करोड़ों जनों के पास एक पाई भी नहीं है ! जब यहाँवालों की आय ही कुछ नहीं, तब धन-संचय होही कैसे सकता है? भारतवासियों की वार्षिक आय प्रतिजन १८८० के दुर्भिक्ष-कमीशन, सर रोबर्ट-गिफन Robert Giffen (१९०३), लार्ड कर्जन (१९०५), और सर पेट्रिक Patrick Playfair (१९१२), आदि के हिसाब से ३० रुपया, लार्ड कोमर के अनुसार २० रुपया, और श्रीयुत डिग्बी के हिसाब से १७ रुपया है ! कहाँ इंगलैंड आदि देशों के निवासियों की प्रतिजन आय ५००–७०० रुपये* ! डिग्बी साहब के हिसाब से प्रत्येक भारतवासी की आय प्रतिदिन ९ पाई ‡ समझनी चाहिये। कहां अमरिका के हेनरी-फोर्ड Henry Fordकी आय १५ लाख रुपये प्रति दिन !

हमारी धन-वृद्धि के प्रमाण में विदेशों से सोने चांदी का आना बताया जाता है। डिग्बी साहब ने सिद्ध किया है कि 'भारतवासियों ने अधिक से अधिक ३–३॥ आने का सोना

* भिन्न २ देशों की सम्पत्ति और वार्षिक आय के सम्बन्ध में देखो:—

क. Mulhall and Webb: Dictionary of Statistics;

ख. Sir Robert Giffen: Economic Inquiries and Studies Vol. II, p. 362–82;

ग. Dr. Stamp: Wealth and Income of the Chief-Powers (Statistical Journal, July 1919);

घ. W. R. Ingalls: Wealth and Income of American People, p. 81, 310.

‡ Digby, p. 534.

चांदी प्रति वर्ष प्रति जन संचित किया है। वास्तव में भारत-वासियों की आय दिन पर दिन कम होरही है, अर्थात् १८५० में २ आने, १८८० में १॥ आना, और १६०० में ६ पाई प्रति जन प्रतिदिन†।' पर उद्योग-धन्धों के नष्ट होने से विदेशी वस्तुओं के प्रचार और उपयोग के कारण खर्च बढ़ रहा है! अतएव भारत दिन पर दिन दीन-हीन हो रहा है‡। और आज भारत के समान और कोई देश दीन-हीन नहीं है*। इंगलैंड के वर्तमान प्रधान मंत्री मि० मेक्डोनल्ड साहब का कहना है कि 'Poverty of India is not an opinion but it is a fact—निस्सन्देह भारत धनहीन है।' जो थोड़े बहुत नवीन धनाढ्य दीख रहे हैं यदि उनकी धनाधिकता का अनुसंधान किया जाय तो मालूम होगा कि ये 'महापुरुष' कितने ही अपने देश-भाइयों के मुंह का ग्रास निकाल कर—अगणित देशवासियों को कंगाल बना कर—स्वयं धनवान हुए हैं। एक अंग्रेज़ लेखक का कहना है कि 'भारत में जो धनाढ्य दीख रहे हैं, उनकी संख्या बहुत थोड़ी है। भारत तो गरीबों का घर होगया है§।' इस विवेचना से स्पष्ट है कि भारत में धन-प्राचुर्य का कोई प्रश्न नहीं है। जो कुछ भी भारत की धन-वृद्धि के सम्बन्ध में कहा जाता है वह सर्वथा भ्रान्तिमूलक है।'

† Digby, p. 177, 534.

‡ Banerjea; Economics p. 62,

* Cotton: New India, p. 109; Cross: Self-Govt., p. 4; Lord George Hamilton, House of Commons Debates, Dt. 3-2-1902; Mr. Brodrick (Lord Mdleton), Commons Debates, Dt. 12-8-1904;

§ W. S. Lilly; India and its Problems

(२) आभूषणों के विषय में इतना लिखना ही पर्याप्त है कि यहां के उत्तराधिकार—दायाधिकार—के नियमों के कारण यह परमावश्यक है कि स्त्रियों के लिये इतने आभूषण बना दिये जाँय, जिससे आवश्यकता के समय उनका अच्छी तरह जीवन निर्वाह हो सके। स्त्री-प्रभुत्वशाली पश्चिमीय देशों की दृष्टि में हमारी स्त्रियों के आभूषण अनुत्पादक या निर्जीव धन Dead Capital हो सकता है, पर हमारी आवश्यकतानुसार उचित आभूषणों का होना अत्यावश्यक है। दुःख तो यह है कि यद्यपि सर्व साधारण के घरों में यथेच्छ आभूषण नहीं हैं, तथापि उन पर प्रहार किया जाता है। इस प्रकार क्या एक निर्मूल विषय का प्रतिपादन हो सकता है?

३. यह कहना भी उचित नहीं कि भारतवासी बड़े बड़े व्यवसायों में धन विनियोग करना नहीं चाहते। यहाँ के धनाढ्यों द्वारा रेलवे का निर्माण न होने के कई कारण थे। जब यहाँ रेलवे की आवश्यकता ही नहीं थी, तब यहां के धनवानों की इस ओर प्रवृत्ति ही किस प्रकार हो सकती थी। दूसरी बात यह थी कि जब नवजात रेलवे शैशवावस्था में ही था—आविष्कार हुए बहुत थोड़ा समय हुआ था—तब ही अंग्रेज शासकों ने यहां एकाएक निर्माणकार्य आरम्भ कर दिया। उन्होंने इस काम के लिये यहांवालों से धन नहीं मांगा। और यहाँ वालों को इतना अवसर ही नहीं मिला कि वे नवाविष्कृत रेलवे की जटिल समस्याओं पर विचार कर, उसके निर्माण के लिये उद्यत हो सकते। सब से महत्व की बात तो यह थी कि उस समय ईस्ट-इण्डिया कम्पनी भारत के सर्वनाश के लिये कटिबद्ध थी और रेलवे

जैसे महत्वपूर्ण कार्य के लिये शासक-कम्पनी की सहायता और सहानुभूति अनिवार्यतः अपेक्षित थी। अतएव यहाँ के धनिकों का इस सम्बन्ध में उद्योग करना अनधिकार चेष्टा थी, क्योंकि यह कदापि सम्भव नहीं था कि कम्पनी भारतवासियों को निर्माण करने देती। उस समय की बातें छोड़ दीजिये, अब भी यहांवालों को शाखा-रेलपथ भी नहीं बनाने दिया जाता! उदाहरणार्थ १६१४ में एक भारतीय कम्पनी एक शाखा-रेलवे बनाना चाहती थी, पर उसे ऐसा नहीं करने दिया गया। उस समय इंडिया-ओफिस के सदस्य सर अब्राहम यहां आये हुए थे। रेलवे-बोर्ड के प्रधान ने उक्त कम्पनी के प्रवर्तक को मित्रभाव से लिखा कि "आप सर अब्राहम से मिलें और उनसे यह कहें कि 'यहाँ रेलवे के लिये यथेच्छ धन मिल सकता है, पर भारतवासियों को शाखा-रेलवे भी नहीं बनाने दिया जाता†'।" इस पत्र से हमारे कथन की सम्यक् पुष्टि होती है। यदि येन केन प्रकारेण किसी भारतीय कम्पनी द्वारा रेलवे बन भी गया तो फल संतोषप्रद नहीं होसकता। जैसे राय जानकीनाथरायबहादुर और राय सीतानाथ राय बहादुर (बंगाल के दो प्रतिष्ठित व्यक्ति) ने ईस्ट-बंगाल-रिवर-स्टीम-सर्विस-लिमीटेड नामक एक जहाज (नदी में चलने वाले छोटे २ जहाज) कम्पनी स्थापित की थी। पर इस व्यवसाय में संलग्न अन्य गोरी-कम्पनियों की प्रेरणा से कलकत्ते की जूट मिलें उक्त कम्पनी को जहाजों द्वारा लाये हुए जूट को नहीं लेती थीं—उक्त कम्पनी की बिल्टियों पर मिल

† Letter from the President of Railway-Board, to S. C. Ghose Esq., Dt. 11th. January 1914.
(Acworth Com. Report, Vol. III; p. 53).

वाले रुपये नहीं देते थे। बीमा कम्पनियों ने भी उस कम्पनी की जहाजों द्वारा आनेवाले माल के लिये बीमा की दर अधिक करदी! यद्यपि इस नई कम्पनी के जहाज भी बर्न-कम्पनी तथा भोन-किंग-कम्पनी के बनाये हुए थे और गोरी-कम्पनियों के जहाजों से किसी अंश में भी कम उत्तम नहीं थे तथापि इस नई कम्पनी के जहाजों द्वारा लाये हुए माल की बिल्टी पर 'एडवान्स'—रुपया—नहीं देने, तथा बीमा की दर अधिक लेने का इसके अतिरिक्त और क्या कारण हो सकता है कि यह कम्पनी भारतीय-पूंजी से संचालित थी। उपर्युक्त बाधाओं के कारण इस कम्पनी के जहाजों द्वारा माल नहीं आता था। कम्पनी के संचालकों ने जूटमिलों के प्रबन्धकों और अन्य जहाज-कम्पनियों के अध्यक्षों को बहुत कुछ कहा सुनी की, किन्तु सब निष्फल रहा। रिवर-स्टीम-नेवीगेशन नामक एक गोरी-कम्पनी के प्रधान ने भारतीय कम्पनी के स्वामियों से कहा कि 'यातो आप हमें अपनी कम्पनी के संचालक—मेनेजिंग-एजेंट—नियुक्त करदें, अथवा अपने जहाज हमें बेचदें, नहीं तो, आपके जहाज एक दिन भी नहीं चल सकते! आप की कम्पनी का पददलित होना अवश्यम्भावी है!!' इन बातों से स्पष्ट है कि यहां के धनाढ्यों का धन-विनियोग न करने का यह कारण नहीं है कि उनकी बड़े २ उद्योग-धन्धों में प्रवृत्ति नहीं, परन्तु वास्तविक कारण यह है कि वर्तमान शासन प्रणाली के कारण उनके मार्ग में अनेक विघ्न-बाधाएं उपस्थित हो रही हैं।

४—ऋण न मिलने का जो मिथ्या दोष लगाया जाता है उसका रहस्य यह है कि यहाँ ऋण लेने का प्रयत्न ही नहीं

किया जाता। पोर्ट-ट्रस्टों और म्युनिसीपलिटियों के लिये यहां यथेष्ट धन मिलजाता है। यदि रेलवे के लिये भी धन प्राप्त करने का उद्योग किया गया होता तो बहुत कुछ धन यहां मिल सकता था। कहा जाता है कि 'भारत में ब्याज की दर अधिक होने के कारण इङ्गलैण्ड में ऋण लेना पड़ता है।' हम पीछे लिख चुके हैं कि पुरानी गारन्टी कम्पनियों को वैसे तो पांच प्रति सैकड़ा ब्याज देने की शर्त थी, पर वास्तव में उन्हें ६-१० प्रति सैकड़ा मिलता था! भारत और इंगलैंड की धनाढ्यता की तुलना में भारत में ब्याज की दर अधिक होना स्वाभाविक है। इसलिये, और देशहित की दृष्टि से, उचित तो यह था कि ६-१० प्रति सैकड़े से भी अधिक ब्याज देकर यहाँ धन लिया जाता, पर यदि इतने भी ब्याज का प्रलोभन दिया गया होता, तो भी यहाँ बहुतसा धन मिल सकता था। पर अबभी हम क्या देखते हैं? सरकार इंगलैंड की अपेक्षा कम ब्याज पर ही यहाँ ऋण लेना स्वीकार करती है*।

बड़े बड़े व्यापारिक कार्यों के लिये धन-प्राप्त करने के उद्देश्य से ही आधुनिक बैंकों की सृष्टि हुई है†। विदेशों में बैंकों से बहुत सहायता मिलती है। यहाँ जो विदेशी-बैंक हैं, वे यहांवालों को सहायता नहीं देते। उनका प्रधान कार्य विदेशी व्यापार का भुगतान करना है, इसी कारण उन्हें एकसचेंज-बैंक कहते हैं। जो यहाँ के बैंक हैं उनका जीवन बहुत कण्टकाकीर्ण है। विदेशों

* Acworth Com. Report, Vol. III, para 4872.

† Dunbar; Theory and History of Banking, p. 9.

में कष्ट के समय बैंकों को सरकार द्वारा अथवा सरकारी-सहायता-प्राप्त-बैंकों द्वारा सहायता मिलने से उनका जीवन सहसा नष्ट नहीं होता। भारतीय बैंकों को—भारतीय पूँजी से संचालित बैंकों को—कोई सहायता नहीं मिलती। १९१४ में भारतीय बैंकों के नष्ट होने का प्रवाह प्रचण्ड गति से प्रवाहित हो रहा था। अतएव पंजाब नेशनल बैंक ने सरकार से प्रार्थना की कि 'हमें आवश्यकता के समय सहायता मिलनी चाहिये।' सरकार ने आश्वासन दिया कि 'बंगाल बैंक अवश्य सहायता देगा। सरकार ने इसी प्रयोजन से उसके (बंगाल बैंक) पास बहुत धन रख छोड़ा है।' पंजाब नेशनल बैंक ने सरकारी-प्रोमीजरी नोटों के बदले आवश्यकता पड़ने पर सहायता देने के लिये बंगाल बैंक से आश्वासन चाहा, पर उसने साफ इंकार कर दिया! यही नहीं, किन्तु उस समय तो स्वयं पंजाब सरकार भारतीय बैंकों को नष्ट करने पर तुली हुई थी!! येन केन प्रकारेण पंजाब नेशनल बैंक तो बचगया, पर अन्य अनेक बैंक विलीन हो गये! हां, भारत में जो गोरों के बैंक हैं उनकी स्थिति कुछ भी निर्बल होने पर उन्हें पर्याप्त धन सरकार तथा सरकारी बैंकों द्वारा मिल जाता है। अलायंस बैंक की शक्तियां इतनी शिथिल होगई थीं कि सरकारी सहायता उसे जीवन-दान नहीं दे सकती थी। रहस्य तो यह है कि उसके नष्ट होने पर भी उसके ऋण-दाताओं को सरकार ने ५० प्रति सैकड़ा दे दिया! यह इसलिये कि भविष्य में विदेशी बैंकों से सर्व साधारण का विश्वास न उठ जाय। भारतीय बैंकों के टूटने का कारण यहांवालों की बैंक-संचालन सम्बन्धी अयोग्यता बताई जाती है। सुसम्पन्न पश्चिमीय देशों के बड़े बड़े बैंक नाश को प्राप्त हो चुके हैं। छोटे छोटे बैंकों की तो कोई गणना

ही नहीं। इंगलैंड-बैंक जैसे सुदृढ़ और सर्वोपरि बैंक का भी जीवन अनेक बार नष्टप्राय हो चुका है*। पर यह कोई नहीं कहता कि उन बैंकों के संचालक निपुण नहीं थे। यूरोपियन संचालकों की क्षमता का परिचय टाटा बैंक के रूप में अपरिच्छिन्न दीख रहा है। टाटा बैंक के मैनेजर यूरोपियन थे। मूलधन भी सेंट्रल बैंक की अपेक्षा अधिक था। तथापि टाटा को टोटा ही रहा, पर सर्वाङ्ग भारतीय सेंट्रल बैंक को आशातीत लाभ। विदेशों में संचालकों की बेईमानी और स्वार्थपरता के कारण अनेक बैंक नष्ट होजाते हैं, परन्तु भारत में ऐसे दुष्कर्म वहां की अपेक्षा बहुत कम हैं†। इन बातों से सहज में ही समझ सकते हैं कि भारतीय बैंकों के सुदृढ़ और समृद्ध न होने का प्रधान कारण उन्हें समय पर सहायता न मिलना ही है।

भारतीय धनाढ्यों द्वारा रेलवे के निर्माण न होने के कारणों का विचार हो चुका, अब यह विचार करना आवश्यक है कि रेलों में विदेशी पूंजी के प्रयोग से भारत को कितनी हानि पहुंच रही है। पुरानी गारन्टी कम्पनियों को जो धन गारन्टी-इंटरेस्ट आदि के नाम से दिया गया था उसका उल्लेख पीछे कर चुके हैं। वर्तमान कम्पनियों को जो गारन्टी इंटरेस्ट दिया जाता है वह, तथा रेलों के लिये सरकार ने जो अर्बों रुपये का ऋण ले रक्खा है उसका ब्याज, दोनों के लिये लगभग २४–२५ करोड़ रुपये प्रतिवर्ष इंगलैंड आते हैं। इसके अति-

* Dr. Andreades: History of Bank of England, p. 404.
† Industrial Com. Report, p. 337.

रिक्त सर्प्लस तथा लंडन बोर्डों के खर्च आदि के रूप में २ करोड़ रुपया प्रति वर्ष इंगलैण्ड जाता है। इस दो करोड़ रुपये की हानि का कारण भी विदेशी-पूंजी का उपयोग है। विदेशी पूंजी से सञ्चालित जो स्वामी रेलवे-कम्पनियां हैं उनके द्वारा लगभग १ करोड़ रुपये प्रतिवर्ष इंगलैंड पहुंचते हैं। सारांश यह है कि भारतीय रेलों में विदेशी--पूंजी के व्यवहार से हमें लगभग ३० करोड़ रुपये की वार्षिक हानि हो रही है।

विदेशी धन के उपयोग करने का विषय विवादग्रस्त है, पर साथ ही बहुत महत्वपूर्ण है। विदेशी धन के प्रयोग करने के पक्षपातियों का कहना है कि "विदेशी धन के कारण देश का बहुत उपकार हो सकता है*। ब्याज के रूप में यदि थोड़ा बहुत धन विदेशों को जाय तो, कोई हानि नहीं।" यह सत्य है कि विदेशी धन की सहायता से अनेक देशों को बहुत कुछ लाभ हुआ है। पर ध्यान देने की बात यह है कि अन्य देशों में विदेशी धन का ब्याज मात्र विदेशियों को दिया जाता है। उस धन के उपयोग से जो लाभ होता है वह सारा देशवासियों को मिलता है। वहां विदेशी-धन का उपयोग देशोपकारक कार्य्यों में किया जाता है। अतएव जितना धन ब्याज के रूप में विदेश भेजना पड़ता है उससे बहुत अधिक लाभ देश को यह होता है कि धनाभाव के कारण जो उद्योग-धन्धे अथवा अन्य देशोन्नतिकारक रेलवे आदि का निर्माण नहीं हो सकता वे उस विदेशी धन के कारण सुगमता से स्थापित होजाते हैं। इस प्रकार विदेशी-धन के द्वारा संस्थापित उद्योग धन्धों आदि के कारण जो आर्थिक लाभ देश को होता है उससे

* List; Economy, p. 183, 250, 297.

सर्व प्रथम उस ऋण को कम किया जाता है जिसके द्वारा उनका (उद्योग-धन्धों आदि का) उद्भव हुआ है। इस प्रकार ऋणी देश बहुत शीघ्र ही उऋण हो जाता है और उसे ब्याज के रूप में सदैव हानि नहीं सहनी पड़ती। अनेक देश रेलवे आदि कार्य्यों के लिये इङ्गलैंड आदि से बहुत-सा धन लेते हैं। पर ये ऋणी-देश ऋणदाता को केवल ब्याज मात्र देते हैं। इस धन के उपयोग से जो लाभ होता है वह देश में ही रहता है—उससे ऋणदाता का कोई सम्पर्क नहीं है। वहां की रेलों के सर्वोच्च पदाधिकारी से लेकर निम्नतम श्रेणी के मजदूर तक सारे उसी देश के निवासी होते हैं। अर्थात् प्रसिद्ध अर्थशास्त्री मि० गञ्जल के शब्दों में यों कहा जा सकता है कि 'विदेशी-पूंजी को केवल ऋण के रूप में प्रयोग करने से, ब्याज से जितना अधिक लाभ होता है वह सारा स्वदेश में रहता है, जिससे देश की उत्तरोत्तर धन-वृद्धि होती है†।' परन्तु यदि किसी देश में विदेशी पूंजी से संचालित उद्योग-धन्धों का लाभ भी विदेशी उठाएं, उस अवस्था में विदेशी-पूंजी का उपयोग हितकर नहीं हो सकता। प्रत्युतः वह देश के लिये असंदिग्धरूप से घातक है। एक लब्धप्रतिष्ठ अर्थशास्त्री का कहना है कि 'इस बात का इतिहास साक्षी है कि धन का उपयोग विदेशों को लूटने के लिये भी किया जा सकता है। विदेशी धन ने अनेक देशों के धन का अपहरण किया है, वहाँ के आर्थिक अवयवों को अत्यन्त शिथिल और नैतिक जीवन को नष्ट कर दिया है। इसका ज्वलंत उदाहरण यूरुप से भारत का सम्बन्ध है* ।'

† Grunzel: Protectionism, p. 254, 262–66, 271–72.

* C. K. Hobson; Export of Capital, p. XIX, XXI, (London. 1914)

गोरे-धनाढ्यों ने भारतीय रेलों के लिये केवल धनही नहीं दिया, पर वे यहाँ की रेलों का संचालन भी करते हैं, जिससे रेलवे की सारी आय इंगलैंड पहुंच जाती है। सब से महत्व की बात यह है कि रेलवे से एक देश को जो लाभ हुआ करते हैं, वे सारे लाभ यहां विदेशियों को हो रहे हैं, नकि यहांवालों को। रेलों से हमारा यत्किञ्चित भी हित नहीं हुआ। जो कुछ हुआ है वह महा भीषण कुठाराघात। अतएव यहां की रेलों में जो विदेशी पूँजी लगी हुई है उस के ब्याज आदि के जो ३० करोड़ रुपये विदेशों को जाते हैं, उनका निर्गम किसी प्रकार भी उचित नहीं कहा जा सकता। अन्य देशों में विदेशी-धन से संचालित रेलवे आदि की आय द्वारा सब से पहले विदेशी-धन से उऋण होने की चिन्ता की जाती है, जिस से ब्याज की हानि सदैव न होती रहे। यहां के भाग्य-विधाता इस सम्बन्ध में बिलकुल निश्चेष्ट हैं। उनका तो यही उद्देश्य है कि यहाँ से इंगलैंड को सदैव ही ब्याज के रूप में धन-प्रवाह बहता रहे।

किसी देश के भूगर्भ से सुवर्ण तथा अन्य खनिज पदार्थों का न मिलना, एक प्राकृतिक कारण है। किन्तु भारतवासियों का खनिज सम्पत्ति से वञ्चित रहना, प्राकृतिक कारण नहीं। वास्तव में इसका कारण विदेशी-पूंजी है, जिसके प्रयोग से विदेशी-धनवानों ने, न कि प्रकृति देवी ने, हमारे प्राकृतिक साम्पत्तिक साधनों का अपहरण कर रक्खा है। विचारवान पुरुषों का कहना है कि 'विदेशी पूंजी की सहायता से बर्मा के मिट्टी के तेल का, मैसूर की सोने की और बंगाल की कोयले की खानों का व्यवसाय होने की अपेक्षा तो तेल, सोना और कोयला आदि का भूगर्भ में ही रहना देशहित की दृष्टि से अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि इन खानों का सारा का

सारा लाभ विदेशी ले जाते हैं। हमें तो केवल मजदूरी के दो चार पैसे ही मिलते हैं* ।' खानों की सम्पत्ति का विदेशी पूंजी पतियों द्वारा अपहरण होने से देश के प्राकृतिक धन का क्षय होता है। क्योंकि खानें अक्षय नहीं हैं। जिस प्रकार भूमि से कृषि द्रव्य सदैव उत्पन्न होता रहता है, उस प्रकार खानों से खनिज द्रव्य निरंतर प्राप्त नहीं हो सकता। खानों में परिमित द्रव्य है, अतः उसका क्षय अनिवार्य है। जितना खनिज धन विदेशी निकाल लेंगे उतने धन से हमको वञ्चित रहना पड़ेगा। यदि सारा द्रव्य विदेशी निकाल लेंगे तो उस अवस्था में भारत को कितनी हानि होगी उसका अनुमान नहीं हो सकता। भारतीय रेलवे के विषय में भी यही कहा जा सकता है कि विदेशी पूंजी से रेलवे का निर्माण होने की अपेक्षा तो रेलवे का यहाँ न होना ही बहुत हितकर था। मि० कोनल ने भारतीय रेलों में विदेशी पूंजी के उपयोग से देश को जो हानि हुई है उसका बहुत मार्मिक वर्णन किया है$ । जनरल स्ट्रेची ने कहा था कि 'चाहे गारन्टी-इंटरेस्ट हो, चाहे विदेशी ऋण का ब्याज हो, किसी रूप में हो, विदेशी धन का उपयोग तो सर्वथा त्याज्य है† । विदेशी धन की महाव्याधा से मुक्त होने के उद्देश से ही बेलजियम और स्विटजरलैंड आदि की सरकारों ने रेलवे को स्वाधीन कर लिया है‡ ।

* Indian Industrial Conference, 1906, Presidontal Address; Sir. T. Holland (Indian Industial Conference 1905).

$ Connell: Economic Revolution of India and the Public Work Policy, p. 31.

† Select Com. (1884) Report, para 197 (Evidence).

‡ Alfred Marshall; Industry and Trade, (1919).

नवां प्रकरण।

रेलवे-कार्यक्षेत्र में भारतवासियों का स्थान

विदेशों में रेलवे के कारण वहां के निवासियों को एक नया कार्यक्षेत्र मिला पर रेलवेजनित कार्यक्षेत्र में भारतवासियों को स्थान नहीं है। यहां की रेलों पर ७,५३ हजार जन काम करते हैं। इनमें ७ हज़ार गोरे, १२ हज़ार अर्ध गोरे और शेष भारतवासी हैं*। यद्यपि भारतवासियों की संख्या अधिक है, किन्तु इसका रहस्य यह है कि उनमें लगभग सारे मज़दूर हैं अथवा निम्नश्रेणी के कर्मचारी। आकवर्थ कमेटी का कहना है कि "लाखों कार्यकर्ताओं में गोरे केवल ७ सहस्र ही हैं, पर ये ७ सहस्र जलपूर्ण पात्रके शिखरस्थ तेलके अतिसूक्ष्म आवरण—झिल्ली—के सदृश हैं। अर्थात् गोरे सर्वोच्च स्थान पर नियुक्त हैं और उनका जलरूपक भारतवासियों से कोई संयोग और सम्मिश्रण नहीं है। एक भी भारतवासी सर्वोच्च पद पर नहीं है। दूसरी श्रेणी के पदोंपर बहुत कम हैं।

* Ry. Report, (1922–23), Vol. I, p. 32.

प्रधान प्रधान रेलों के सारे १७४६ उच्चपद हैं। इनमें केवल १८२ (१० प्रति सैकड़ा) भारतवासी हैं। इन १८२ में भी १५८ तो गोरों के सहायक-कर्मचारी हैं। वास्तव में केवल २४ भारतवासी ही उच्च पदोंपर नियुक्त हैं* !" १९२१ की जन-गणना के अनुसार भारत में २,३८,८८१ गोरे और अध-गोरे हैं†। यदि इनमें से स्त्रियों और बच्चों की संख्या निकाल दी जाय तो पुरुषों की संख्या लगभग १ लाख से कम ही है। यहाँ अंग्रेजी पढ़े लिखे कुल २५ लाख जन हैं। इनमें २२॥ लाख पुरुष और शेष स्त्रियां हैं §। यद्यपि जितने गोरे यहाँ हैं उन में अधिकतर अपढ़ फौजी हैं तथापि यदि सारे गोरों और अध-गोरों को शिक्षित समझ लिया जाय तो एक लाख गोरे और अध-गोरे, और २२॥ लाख भारतवासी अंग्रेजी पढ़े हुए हैं। इस हिसाब के अनुसार ४-५ प्रति सैकड़ा गोरे और अधगोरों को और ६५-९६ प्रति सैकड़ा भारतवासियों को उच्च पदों पर नियुक्त करना चाहिये। किन्तु हैं १० प्रति सैकड़ा भारतवासी और ९० प्रति सैकड़ा गोरे और अध-गोरे!!

यद्यपि रेलों की कृपा से यहाँ वस्तुओं की बहुत मूल्य-वृद्धि हो गई है तथापि अन्य देशों की अपेक्षा यहां मूल्य अल्प ही है। अतएव विदेशों की तुलना में यहां कम वेतन होना उचित है। किन्तु उच्च पदाधिकारियों को यहां बहुत अधिक वेतन दिया जाता है। फ्रान्स के राष्ट्रपति को ५ हजार रुपया, इङ्गलैण्ड के प्रधान मन्त्री को ६ हजार रुपया और संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति को १८००० रुपया प्रति मास मिलते हैं, पर भारत के गवरनर-जनरल को १,५०,००० रुपया प्रतिमास मिलते हैं:—

* Acworth Com. Report, Vol. I, para 182.

† Census Report, Vol. I, part I, p. 231. § p. 181.

वेतन	रु० २,५०,८००
अलाउंस (Sumptury allowance) ...	रु० ४०,०००
कोंट्रेक्ट अलाउंस (Contract allowance)	रु० १,५६,०००
कर्मचारियों का वेतन आदि तथा गृह-खर्च	रु० ४,७१,१००
यात्रा खर्च	रु० ३,६५,०००
बाजा तथा अन्यान्य खर्च (Band, Body-guard and personal staff) ...	रु० ४,३६,०००
जोड़	रु० १७,१८,९०० प्रति वर्ष

यहाँ के इम्पीरियल बैंक के प्रबन्धक (Managing Governor) को १० हजार रुपया प्रति मास मिलते हैं! संसार के सर्व श्रेष्ठ बैंक—बैंक आफ इङ्गलैण्ड—के प्रबन्धक को केवल २५०० रुपया मासिक। अमेरिका आदि के राष्ट्रपतियों को तथा इङ्गलैण्ड-बैंक के प्रबन्धक को जितना कष्टप्रद काम करना पड़ता है उसका शतांश भी यहां के गवरनर-जनरल को तथा इम्पीरियल बैङ्क के प्रबन्धक को नहीं करना पड़ता। जापान में रेलवे कर्मचारियों का अधिक से अधिक वेतन १००० रुपया है, फ्रान्स में १००० रुपया और जर्मनी में केवल ७५० रुपया है*। परन्तु यहाँ की रेलों के प्रत्येक एजेंट या मैनेजर को ३०००-४००० रुपया मासिक मिलता है। उच्चपदाधिकारियों की वेतन वृद्धि के सम्बन्ध में जो कमीशन पिछले दिनों नियुक्त हुआ था उसकी रिपोर्ट हाल में ही प्रकाशित हुई है। इस में गोरों की ओर भी वेतन-वृद्धि के लिये अनुरोध किया गया है। (देखो, Civil Service Com., 1924, Report)

* Tiwari: Indian Rys., p. 151.

यद्यपि उच्चपदों के लिये यहां विदेशों की अपेक्षा अधिक वेतन है परन्तु निम्नश्रेणी के कर्मचारियों तथा मजदूरों के लिये बहुत कम वेतन है। अर्थात् यहां के रेलवे-नौकरों का अधिक-से-अधिक ४००० रुपया और कम से ८ रुपया मासिक है। या यों कहिये कि अधिक-से-अधिक और कम-से-कम वेतन में ५०० गुना अन्तर है। अन्य देशों में इतना अन्तर नहीं है। यूरुप और जापान की रेलों में जापान में ही सब से अधिक अन्तर है, पर वहाँ भी केवल २२ गुना है। बेलजियम में तो ८ गुना ही है*। इसका कोई नवीन रहस्य नहीं है। भारत में सर्वोच्च वेतनों के अधिकारी गोरे हैं और कम-से-कम वेतनों के अधिकारी भारतवासी! अतएव ५०० गुना अन्तर है। यही कारण है कि यद्यपि रेलवे-कार्यकर्ताओं में भारतवासियों की संख्या ९७ प्रति सैकड़ा है और गोरे-अधगोरों की २—३ प्रति सैकड़ा, तथापि जो धन वेतन रूप में मिलता है वह प्रत्येक भारतवासी को औसत में २० रुपया और गोरे या अधगोरे को ५०० रुपया प्रति मास, अर्थात्—

७,३४,००० भारतवासियों को रु० १,५०,००,००० प्रतिमास और
१९,००० गोरे-अधगोरों को रु० १,००,००,००० प्रतिमास† !

* Tiwari; Indian Rys., p. 151.

† १९२२–२३ में प्रधान प्रधान रेलों के कार्यकर्त्ताओं को २९ करोड़ रुपया मिला था (Ry. Report 1922–23, Vol. I, p. 32)। इस हिसाब से २ करोड़ ४० लाख के लगभग होते हैं। पर इसमें अन्य रेलों के कार्यकर्ताओं का वेतन जोड़ने से लगभग २ करोड़ ५० लाख होते हैं। उपर्युक्त दोनों रकमों का (१,५०,००,०००और १,००,००,०००)योग भी २ करोड़ ५०लाख है।

गोरों को अन्य देशों की अपेक्षा अधिक वेतन दिया जाता है यह तो अन्याय है ही, परन्तु निरुपाय दीन भारतवासियों को जो कम से कम वेतन दिया जाता है वह अन्य देशों से बहुत कम है, यह अत्याचार की पराकाष्ठा है।

एक ही काम करनेवालों में गोरों को भारतवासियों की अपेक्षा अधिक वेतन मिलता है। भारतीय ड्राइवर का गोरे ड्राइवर से दो-तिहाई वेतन है†। इसी प्रकार 'शंटरों' और गार्डों के सम्बन्ध में नियम हैं। इस अत्याचार पर दुःख प्रकट करते हुए औद्योगिक कमीशन ने अनुरोध किया है कि 'समान कार्यकर्ताओं को समान वेतन देने का जो सर्वमान्य सिद्धान्त है, उसका अनुकरण अवश्य होना चाहिये‡।' गोरे कर्मचारियों को आरम्भ में तो अधिक वेतन दिया ही जाता है, पर थोड़े थोड़े समय के उपरान्त उनकी पदोन्नति और वेतन-वृद्धि होती रहती है। किन्तु चिरकाल से काम करने वाले एवं अधिक योग्य भारतवासियों की वेतन-वृद्धि और पदोन्नति इतनी शीघ्रता से नहीं होती*। बहुधा यह देखा जाता है कि जो गोरे एक समय भारतवासियों के आधीन काम करते हैं वे ही कुछ समय में उन भारतवासियों से (जिनकी आधीनता में काम करते थे) ऊपर की श्रेणी में पहुंच जाते हैं। योग्यता के कारण नहीं, परन्तु सफ़ेद चमड़े के कारण! गोरों को भारतवासियों की अपेक्षा अधिक छुट्टियाँ मिलती हैं$। उदाहरणार्थ

---

† State Open Line Code, Vol. II, p. 78.

‡ Industrial Com. Report, para 152.

* Assembly Debates, Dt. 23-7-1923, p. 4845.

$ Assembly, Debates, Dt. 20-1-1923, p. 1293-94; Dt. 2-7-1923, p. 4145.

जी० आई० पी० रेलवे के जिस भारतवासी को ९०० रुपया मासिक मिलता है, उसकी अपेक्षा एक गोरे कर्मचारी को (जिसे ६० रुपया मासिक ही मिलता है) अधिक छुट्टी मिलती है* । गोरे कर्मचारियों और अफसरों के लिये रेलवे की आय से जो बंगले बनाये गये हैं, उनके सम्बन्ध में १८७५–७६ की रेलवे-रिपोर्ट में लिखा है कि "अनेक स्थानों पर बंगलों—मकानों—की संख्या इतनी अधिक है कि दूर से उनका समूह एक नगर के समान प्रतीत होता है। और इनके निकट पहुँचने पर एक अत्यन्त प्रभावशाली और मनोहर दृश्य दृष्टिगत होता है। ये भव्य भवन इतने सुन्दर हैं—बाग-बगीचों से इतने सुसज्जित हैं—कि इनकी तुलना लंडन के धनकुबेरों के विशाल प्रासादों से की जा सकती है!" पर भारतीय कर्मचारियों के लिये ऐसा प्रबन्ध कहाँ है? उनके लिये भग्नावशेष स्थान भी नहीं! १९२१-२२ में सरकारी रेलों के गोरे-नौकरों के बालकों की शिक्षा में ६,२१,३११ रुपये व्यय हुए। परन्तु यद्यपि भारतीय-कर्मचारियों की संख्या गोरों से बहुत अधिक है तथापि उनके बालकों की शिक्षा में केवल ९६,४४६ रुपये† !

जब कोई स्थान रिक्त होता है तब विज्ञापन में स्पष्ट लिखा जाता है कि 'केवल गोरे अथवा अधगोरे पदान्वेशी ही प्रार्थना पत्र भेजें ‡।' जी० आई० पी० रेलवे के एजेंट ने यह स्वीकार करने का साहस किया है कि 'कई विभागों में एक निश्चित

* Assembly Debates, Dt. 2-7-1923, p. 4146.

† Dt. 27-3-23, p. 4008; Dt. 21-3-1921, p. 1424-1428

‡ "The Times of India," Dt. 2-2-1921;
"The Statesman," Dt. 26-5-1923.

संख्या से अधिक भारतवासी नियुक्त नहीं किये जाते। इस नियम के कारण सम्भव है कि यदि गोरों की अपेक्षा अधिक योग्य भारतवासी मिलें, तब भी उन्हें नियुक्त नहीं किया जायगा*। ऐसी व्यवस्था सारी रेलों पर है। कम्पनी-संचालित रेलों पर अधिक अन्याय और अत्याचार होता है। कम्पनी-संचालित रेलों के एजेंट तथा अन्य गोरे कर्मचारी नहीं चाहते कि भारतवासियों को रेलवे कार्यक्षेत्र में उच्चस्थान मिले। गत वर्ष बी० एन० रेलवे के गोरे नौकरों की एक समिति के प्रधान ने स्पष्ट कहा था कि "यदि भारतीय ड्राइवर—इंजिन चलाने वाले—रेलवे-गाड़ियां चलाने लग जायँगे तो बहुत दुःखकी बात होगी, इसलिये अभी उपाय सोच लेना चाहिये। वे ड्राइवर न होसकें, इसका सर्वोत्तम उपाय तो यह है कि उन्हें खलसी—ड्राइवर के हाथ के नीचे काम करने वाले—के पदपर नियुक्त न किया जाय। क्योंकि खलासी का काम करते करते ही वे इंजिन चलाना सीखलेते हैं‡।" कम्पनी-संचालित रेलों के कर्मचारी सरकार की इच्छानुसार नियुक्त होते हैं। जब सरकार—संचालित रेलों पर ही अन्याय होरहा है तब यह कोई प्रश्न ही नहीं कि सरकार को कम्पनियों के अत्याचारों को रोकने की सत्ता है अथवा नहीं। कुछ भी हो, यह तो प्रत्यक्ष है कि रेलवे जन्य कार्यक्षेत्र में हमें उच्च पद पर नियुक्त नहीं किया जाता।

विदेशियों की नियुक्ति से केवल अपव्यय ही नहीं होता पर औद्योगिक कमीशन के शब्दों में 'विदेशी-कार्याध्यक्षों पर अवल-

* Acworth Com. Report, Vol. III, para 5522.

‡ Amrit Bazar Patrika, Dt. 4 and 19-4-1923.

ञ्चित रहना अत्यन्त हानिकारक है‡।' उच्च पदों पर विदेशियों का एकाधिकार रहने से देश का हितसाधन नहीं हो सकता; क्योंकि वे जनता की आवश्यकताओं को नहीं समझते। यदि उन्हें इस बात का ज्ञान भी होता है तो वे जानबूझकर उस ओर ध्यान नहीं देते। विदेशियों की नियुक्ति के कारण सबसे बड़ा अनर्थ यह होता है कि उनके वेतन के करोड़ों रुपये प्रति वर्ष विदेशों को चले जाते हैं। इन्हीं बातों पर विचार कर १९१३ के रौयल कमीशन (Public Services Commission) का अनुरोध था कि 'जब तक सारे पदोंपर भारतवासियों की नियुक्ति का उचित प्रबन्ध न होजाय तब तक कम से कम ५० प्रति-सैकड़ा पदों पर भारतवासियों को अवश्य नियुक्त करना चाहिये। ली-कमीशन की जो रिपोर्ट पिछले दिनों प्रकाशित हुई है, उस में भी यही अनुरोध है, पर कमीशन ने इस कार्य के लिये १५ वर्ष की अवधि निश्चित की है, तथा ५० प्रति सैकड़ा से अधिक पदों पर भारतवासियों को नियुक्त न करने के लिये अनुरोध किया है (देखो, Civil Service Commission, 1924, Report)। यह १५ वर्ष की अवधि क्यों? और क्यों ५० प्रति सैकड़ा पर ही पूर्ण विराम? बड़ी व्यवस्थापक सभा में भी अनेक बार इस सम्बन्ध में आन्दोलन हो चुका है, और १९२२ में यह प्रस्ताव भी पास होगया था कि रेलवे-कार्य में अधिकाधिक भारतवासियों को नियुक्त किया जाय और रेलवे बोर्ड में भी भारतवासियों को स्थान दिया जाय*। पर आज तक कुछ भी नहीं हुआ। कमेटी-कमीशन नियुक्त होते रहे हैं, व्यवस्थापक

‡ Industrial com. Report, para 155.

* State Council Debates, Dt. 22-2-1922, p. 828;
Dt. 25-9-1922, p. 465.

सभा में प्रस्ताव पास होजाते हैं, पर नतो प्रस्ताव ही कार्य में परिणत होते और न कमेटियों और कमीशनों को शिफारिशें ही ! हाँ, गोरे नौकरों की वेतन-वृद्धि आदि (Pay, pension, promotion, leave and allowance) के सम्बन्ध में जो कुछ कमेटी कहती है. उसका अनुकरण तत्काल होने लगता है। १९१३ के कमीशन ने भारतवासियों की नियुक्ति के सम्बन्ध में जो कुछ आग्रह किया था, वह आजतक नही हुआ, पर १९२४ के कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित होने के साथ ही गोरों की वेतन वृद्धि आदि कर दी गई !

सन् १८३३ के चार्टर एक्ट की ८७वीं धारा Clause में स्पष्ट लिखा है कि 'कोई भी भारतवासी केवल भारतवासी होने के कारण किसी पद से वञ्चित नहीं रक्खा जायगा। इन्हीं शब्दों में महारानी विक्टोरिया के १८५८ और १८८७ के घोषणापत्र हैं। महाराज एडवर्ड और महाराज जार्ज के भी ये ही शब्द हैं। समय समय पर वाइसरायों ने भी इसी प्रकार का आश्वासन दिया है* और उक्त कथन के समर्थन में सरकारी विज्ञप्तियां भी प्रकाशित हुई हैं‡। परन्तु वास्तव में ये सारी बातें लिखने और कहने मात्र की हैं। ड्यूक आफ आर्जिल Argle के शब्दों में 'इङ्गलैंडवासियों ने अपनी प्रतिज्ञाओं का पालन नहीं किया है !' लार्ड लिटन ने उक्त चार्टर को लक्ष्य कर एक वार कहा था कि हम सब जानते हैं कि भारतवासियों का उच्चपदों को प्राप्त करने का अधिकार, उन्हें कभी

* Lord Lytton's Speech (March 1877), As chancellor, Calcutta University.

‡ P. W. D. Nos: 1450-55 E. R. Dt. 27-11-1878.

नहीं मिलेगा। इस सम्बन्ध में उनकी महत्वाकांक्षाएं कभी सफल न होंगी।' लार्ड कर्जन ने तो महारानी के घोषणापत्र की प्रतिज्ञाओं के अनुसार कार्य होना असम्भव बताया था! १८८३ में लार्ड नार्थब्रुक के प्रश्न के उत्तर में विख्यात भारत-मंत्री लार्ड सलिसबरी ने पार्लियामेंट में कहा था कि 'महारानी द्वारा विघोषित प्रतिज्ञाओं के अनुसार कार्य नहीं किया जा सकता। महारानी की घोषणा राजनैतिक छल-छद्म था अथवा यह राजनीतिज्ञों की कुटिल कूटनीति का एक उदाहरण है। वास्तव में घोषणा कार्य में व्यवहृत करने के उद्देश्य से नहीं की गई थी!"

भारतवासियों को नियुक्त न करने के कई कारण बताये जाते हैं। कहा जाता है कि 'भारतवासी योग्य और कार्य कुशल नहीं है, वे चरित्र-हीन—बेईमान—हैं। अतएव उन्हें उच्च पदों से वञ्चित रक्खा जाता है। ये आक्षेप द्वेषपूर्ण, सर्वथा भ्रान्तिमूलक और असत्य हैं। भारतवासी किसी अंश में भी गोरों से अयोग्य नहीं हैं और न उनमें औरही कोई दोष है। वास्तव में, वे गोरों से कहीं अधिक कार्यक्षम, चतुर और सच्चरित्र हैं। सर अबदुलरहमान और सर चोबल (१९१३ के रौयल कमीशन के सदस्य) ने अपनी भिन्न-रिपोर्ट में यह सम्यक् प्रकार से सिद्ध कर दिया है कि भारतवासियों को उच्च पदों पर नियुक्त नहीं करने का कारण उनकी अयोग्यता नहीं है, किन्तु सच्ची बात यह है कि उन्हें नियुक्त ही नहीं किया जाता। उन्हें यह अवसर ही नहीं मिलता कि वे अपनी अनुपम योग्यता प्रत्यक्ष कर सकें। हाँ, जब कभी भी वे उच्च पदों पर नियुक्त किये गये हैं, तभी उन्हों ने अपनी उत्कृष्ट योग्यता का परिचय दिया है। राजा दिनकरराव, सर माधव-

राव, दीवान रघुनाथराव, सर सालरजंग, सर शेशाद्रि आदि अनेक महानुभाव देशी राज्यों में सर्वोच्च पदों को सुशोभित कर अपनी अप्रतिम प्रतिभा-प्रभा प्रदर्शित कर चुके हैं। अंग्रेजी शासन में भी जब उन्हें उत्तरदायित्वपूर्ण काम सौंपा जाता है, तब वे उसे सुचारु रूप से सम्पादित करते हैं और अपनी विशाल बुद्धिमत्ता को भलीभांति प्रमाणित करते हैं। जिस किसी कार्यक्षेत्र में उन्हें गोरों से प्रतिद्वन्द्वता करने का मुक्त-द्वार मिला है, वहीं उन्हों ने गोरों को नीचा दिखाया है। उदाहरणार्थ डाकृरी और वकालत ही देखलें।

टाटा कारखाने के मैनेजर मि० टटवीलर T.W. Tutwiler का कहना है कि "भारतीय कर्मचारी बहुत बुद्धिमान हैं। वे प्रत्येक बात को बहुत शीघ्र ग्रहण कर लेते हैं। हमारे बार-मिल विभाग में ९ गोरे थे और ४०० टन माल प्रतिमास तैयार होता था। अब पहले से दूनी मिलें हैं, पर माल २२०० टन प्रतिमास तैयार होता है। इस आश्चर्य-जनक उन्नति का कारण यह है कि अब गोरों के स्थान में भारतवासी काम कर रहे हैं* !" १८८१ में साबरमती जंकशन (अहमदाबाद) पर, भारत में ही नहीं पर सारे संसार में, सब से अधिक माल का एक प्रकार के गाज से दूसरे गाज के रेलपथ पर परिवर्तन होता था। इसका प्रबन्ध 'सर्व-शक्ति-सम्पन्न' श्वेतांग नहीं कर सके। अजमेर के चीफ-गुड्स क्लर्क पंडित मूलराज ने इस अत्यन्त कष्टसाध्य कार्य को बड़ी योग्यता से किया। इस योग्यता के पारितोषिक में पंडित जी को रायसाहब की

* Industrial Com. Report, Vol. II, p. 354.

'उपाधि' से विभूषित होना पड़ा‡।' यदि कोई गोरा इस प्रकार को अनुपम प्रतिभा और कार्य-कुशलता का परिचय देता तो उसे बहुत उच्चपद पर नियुक्त कर दिया जाता और न जाने और क्या क्या पुरस्कार मिले होते। पर पंडित जी आजन्म साबरमती की स्टेशनमास्टरी करते रहे! एक अंग्रेज लेखक का कहना है कि 'भारतीय ड्राइवर पूर्णतया योग्य हैं, गोरों की अपेक्षा बहुत अधिक परिश्रमी और बुद्धिमान हैं। यदि उन्हें गोरों की अपेक्षा आधा वेतन भी दिया जाय तब भी वे संतुष्ट रहते हैं*।' भारतीय ड्राइवरों को ये सारी विशेषताएं होने पर भी उन्हें नियुक्त नहीं किया जाता। इञ्जिन चलाने जैसे छोटे-से काम से भी भारतवासी वञ्चित रक्खे जाते हैं। सर विश्वेश्वरऐयर अंग्रेजी भारत में निरीक्षक-इञ्जिनियर के योग्य भी नहीं समझे गये परन्तु मैसोर राज्य में वे प्रधान-इञ्जिनियर के पद पर नियुक्त हो गये और वहां उन्होंने अत्यन्त संतोषजनक कार्य किया। इन बातों से भारतवासियों की योग्यता का भली भांति ज्ञान हो सकता है।

गोरों की योग्यता के सम्बन्ध में मद्रास के भूतपूर्व गवर्नर अब्रुतनट A. J. Arbhuttnot का कहना है कि 'इङ्गलैंड की परीक्षाओं (Competitive Examinations) में अनुत्तीर्ण गोरे नवयुवक भारत चले आते हैं और अपने साथ इङ्गलैण्ड के इष्ट मित्रों से भारत के अधिकारियों के नाम पत्र लिखा लाते हैं। इन पत्रों में उन्हें उच्चपदों पर नियुक्त करने का विशेषतः अनु-

‡ Tiwari; Indian Rys., p. 196.

* Bell; Ry. Policy, p. 102.

रोध रहता है* । इसलिये यहां के उच्चपदाधिकारी उनकी योग्यता और अयोग्यता का विचार न कर उन्हें बड़े बड़े पदों पर नियुक्त कर देते हैं ।' यह जानीबूझी बात है कि गोरे कठिन काम नहीं करते । जो गोरे उच्चपदों पर विराजमान हैं उनकी कार्य सीमा हस्ताक्षर करना मात्र है—सारा काम उनके सहकारी भारतवासी करते हैं । एक प्रतिष्ठित एवं अनुभवी अंग्रेज (Sir Walter Lawrance G. C. I. E; G. C. V. O; B. C; मद्रास और ए० बी० रेलवे कम्पनियों के डाइरेक्टर, महाराज जार्ज की भारतयात्रा के समय उनके कर्मचारियों में प्रधान, तथा लार्ड कर्जन के प्राइवेट-मन्त्री) का कहना है कि "भारत में हम (गोरे) बिलकुल निर्बोध होते हैं । हमें सारा काम भारतवासियों की सहायता से करना पड़ता है । हम कहते तो यह हैं कि अमुक जिले का हम शासन-प्रबन्ध करते हैं, पर सत्य तो यह है कि भारतवासी ही जिले का प्रबन्ध करते हैं । केवल यही नहीं, वे हमें सिखाते और चलाते हैं । यदि हम लोगों के सहायक भारतवासी योग्य हैं तो काम अच्छा होता है, नहीं तो गोलमाल मच जाती है । अर्थात् रेलवे-एजेंट के पास कार्य-कुशल भारतवासी हैं तो रेलवे संचालन अच्छी तरह होता हैं, यदि अधीनस्थ भारतवासी अयोग्य हैं तो कार्य भलीभांति नहीं होता† ।" इससे प्रत्यक्ष है कि यद्यपि हमारी बुद्धि और श्रम से कार्य विशेष का सम्पादन होता है, परन्तु सारे कामों का श्रेय गोरे कार्याध्यक्षों को ही मिलता है ! सरकारी सर्वे (Survey) विभाग के अध्यक्ष Col. De Pree ने अपनी

* Minute Dt. 15-6-1872 (Supplement to the Gazettee of India, Dt. 14-12-1872.

† Acworth Com. Report, Vol. II, para 2390.

रिपोर्ट में एक बार लिखा था कि "सर्वे के समय गोरे अध्यक्ष केवल खड़े देखते हैं। सारा काम भारतवासी करते हैं। यह उचित नहीं है। यह स्वीकार करना कि भारतवासी हमसे अधिक कार्यकुशल हैं, हमारे लिये आत्मघातक है। हमें सदैव ही सारे कामों में उनसे अधिक योग्य और श्रेष्ठ होने का दावा करना चाहिये। उन्हें तो केवल निम्न कार्य ही सौंपना उचित है। मैंने कभी किसी भारतवासी को सर्वे-यंत्र Theodolite आदि का स्पर्श तक नहीं करने दिया। मेरे ऐसे करने का सैद्धान्तिक कारण यह है कि सर्वे आदि का काम केवल अधिक वेतन प्राप्त गोरों का ही विशेषाधिकार है†।" इन बातों से स्पष्ट है कि गोरों की अपेक्षा भारतवासी किसी प्रकार भी अयोग्य नहीं हैं, निस्सन्देह वे उनसे कहीं अधिक बुद्धिमान और कार्य-कुशल हैं। पर उन्हें जानबूझ कर अयोग्य बताया जाता है और उच्चपदों से उन्हें वञ्चित रक्खा जाता है। यदि भारतवासी किसी समय उच्चपदों के लिये अधिकारियों के सम्मुख इच्छा प्रकट करते हैं तो उनको निर्भर्त्सना करदी जाती है, उनकी महत्वाकांक्षाएं अपमानाग्नि में विदग्ध करदी जाती हैं, जिससे भविष्य में वे इस प्रकार की 'धृष्टता' न कर सकें।

योग्यता प्राप्त करने के साधन। हम देखते हैं कि बम्बई की मिलों के अधिकतर इञ्जिनियर यहीं के निवासी हैं, अतएव रेलवे इञ्जिनियरिंग विभाग के लिये भारतवासियों को अयोग्य

---

† Late Gokhle's Speech on Public Services, in the Imperial Legislative Council, 1911.

नहीं समझना चाहिये। यदि हम यह भी मानलें कि भारतवासी किसी आधुनिक वैज्ञानिक कार्य में निपुण नहीं हैं, तो इसका कारण यह नहीं कि उस विषय में उनकी अनभिज्ञता स्वाभाविक है। वास्तव में इस अनभिज्ञता का कारण यह है कि उन्हें उस विषय की शिक्षा नहीं दी जाती। उनके लिये शिक्षामार्ग कण्टकाकीर्ण होरहा है। और उनके विकास-पथ में अनेक विघ्न-बाधाएं उपस्थित करदी गई हैं। ई० आई० रेलवे कम्पनी के मैनेजिंग-डाइरेक्टर मि० हाइट का कहना है कि 'भारतवासी बुद्धिमान हैं, योग्य हैं, पर उन्हें कार्य विशेष के लिये उपयुक्त बनाने की आवश्यकता है†।' गोरे जब स्वदेश से यहाँ आते हैं, तब प्रायः वे भी योग्य नहीं होते—उन्हें यहीं कार्यकुशल बनाया जाता है‡। उनके लिये योग्यता प्राप्त करने के अनेक साधन हैं, पर हमारे लिये नहीं! रेलवे कारखानों में गोरों और अधगोरों को यथेष्ट वेतन देकर इंजिनियरिंग सिखाई जाती है। भारतवासियों को इतना कम वेतन दिया जाता है कि उससे उनका जीवन-निर्वाह भी नहीं हो सकता*। अतएव शिक्षित भारतवासी इन कारखानों से लाभ नहीं उठा सकते$। जमालपुर के रेलवे कारखाने में गोरों को पहिले वर्ष ३० रुपया मासिक और दूसरे वर्ष ३५ रुपया इस प्रकार पांचवें वर्ष ५० रुपया मासिक देकर काम सिखाया जाता है। पांच वर्ष में जब वे काम सीख लेते हैं तब उन्हें

† Acworth Com. Report, Vol. II, para 6859.

‡ Acworth Com. Report, Vol. III, para 5981.

* Royal Com. on Public Services, (1913), Report, Vol. XIX, paras 81260–72.

$ Industrial Com. Report, paras 150–152.

१३० रुपया मासिक देकर 'फिटर' आदि के काम पर नियुक्त कर दिया जाता है। भारतवासियों को पहले वर्ष केवल १० रुपया और पांचवें वर्ष केवल १५ रुपया ! दूसरी श्रेणी के भारतवासियों को पहले वर्ष ४ रुपया और छठे वर्ष केवल ६ रुपया † !!

रेलवे द्वारा निर्मित अनेक स्कूल हैं। इनमें टेक्नीकल-शिक्षा दी जाती है। ये केवल गोरों के लिये स्थापित हैं ! १६२२ में जी० आई० पी० के २७६६ गोरे नोकर थे और १,११,६६६ भारतवासी। पर गोरों की शिक्षा में ८६,६८२ रुपया व्यय हुए और भारतवासियों की शिक्षा में केवल १३,४७८ रुपया ‡ ! वैज्ञानिक और शिल्पीय शिक्षा प्राप्त करने के अन्य मार्ग भी भारतवासियों के लिये अवरुद्ध हैं ! जब मारकोनी Marconi ने बेतारकेतार (Wireless telegraphy) का अविष्कार किया तब भारत में यह कानून बना दिया गया कि भारतवासी उसकी प्रक्रियाओं का प्रयोग नहीं कर सकें। यही क्यों, हमारे रसायनशास्त्री अनेक रसायन-द्रव्यों का उपयोग करने से रोक दिये गये हैं (देखो, Explosive Substance Act)। अर्थात् जिन वैज्ञानिक नियमों और सिद्धान्तों (Laws and Principles) का गवेषण और विश्लेषण और वैज्ञानिक प्रक्रियाओं का प्रयोग देश की सुरक्षा और देशी शिल्पकला की उन्नति के लिये अनिवार्यतः आवश्यक है उनके सम्बन्ध में हम अपने मस्तिष्क की शक्ति का उपयोग करने से रोक दिये गये हैं ! यहां जो शिक्षा-संस्थाएं हैं उनमें व्यवहारोपयोगी आवश्यक शिक्षा नहीं दी

† Industrial Com. Report, Appendices, p. 175–176, Assembly Debates Dt. 15–9–1921, p. 291–95.

‡ Assembly Debates Dt. 2–7–1923, p. 4150–51.

जाती। यहां तो उनमें केवल निम्नश्रेणी के क्लर्क ही तैयार होते हैं। औद्योगिक कमीशन का कहना है कि 'सरकार को शासन-कार्य के लिये जिस प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता थी वही शिक्षा भारतवासियों को दी गई। व्यवहारिक शिक्षा की सर्वथा उपेक्षा की गई है†' (देखो, १७ वां प्रकरण)। यहां उचित शिक्षा का प्रबन्ध न होने के कारण बहुत से भारतवासी शिल्पीय शिक्षा के लिये इंग्लैंड आदि को जाते हैं। यद्यपि जर्मनी, जापान, आदि के कारखानों में उन्हें काम सिखा दिया जाता है, पर इंगलैंड के कारखानों में नहीं सिखाया जाता‡।' इसका कारण "व्यापार के अमूल्य गुप्त रहस्यों के उद्घाटन होने का और प्रतिस्पर्धियों को सहायता मिलने का भय' बताया जाता है। इस लिये कारखाने वाले उन्हें ही काम सिखाते हैं जो काम सीखकर उनके पास काम करते हैं*।" जो गोरे इंजिनियर यहां की रेलों का काम करते हैं, वे इंगलैंड के कारखानों में ही अनुभव प्राप्त होते हैं। अतएव उक्त कथन का क्या मूल्य हो सकता है? बात तो यह है कि जापानियों आदि को काम सिखा दिया जाता है, पर हिन्दुस्तानियों को नहीं। जापानियों ने अंग्रेजों से ही क्लाइड नदी पर जहाज बनाना सीखा था, उसी कारण आज वे जापान में जहाज तैयार कर रहे हैं। यहाँ की रेलों के

† Industrial Com. Report, para 135.

‡ Banerjea; Economics, p. 125:
Acworth Com. Report, Vol. II, para 3624.
Industial com. Report, Para 139;

* Report of Morison Com. on System of State technical scholarship (1913);
Acworth Com. Report Vol. II, para 3625.

लिये करोड़ों रुपये की वस्तुएं इंगलैंड के कारखानों से खरीदी जाती हैं। अन्य देशों की अपेक्षा इंगलैंडवालों को उनकी वस्तुओं का मूल्य भी अधिक दिया जाता है (देखो, १२वां प्रकरण)। यदि सरकार दबाये तो वहाँवाले अवश्य ही हमें काम सिखाने लगें। भला सरकार यह क्यों करने लगी ? एक महत्वपूर्ण बात यह है कि पद विशेष के लिये गोरों की अपेक्षा भारतवासियों के लिये अधिक शिक्षा अपेक्षित है†। योग्यता की यह विचित्र परिभाषा है। इसका आश्चर्य क्यों ? यहां तो पद पद पर पक्षपात है। दूसरी बात यह है कि यहां पद विशेष के लिये जितनी योग्यता की आवश्यकता है उतनी इंगलैंड आदि में नहीं।

दूसरा आक्षेप हमारी सच्चरित्रता पर है। अनेक लब्ध प्रतिष्ठ अंग्रेजों ने यह मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया है कि "यूरुप की अपेक्षा भारत बहुत अधिक सदाचारी है। उनका नैतिक जीवन अत्युत्तम है, इत्यादि*।" प्रसिद्ध सर टामसमुनरो का तो यह कहना है कि 'यदि किसी देश को सच्चरित्र बनाना है

† Note by Sir M. B. Chaubal and Justice Sir Abdur Rahman, p. 381-82 (Royal Com. Report, 1913).

* The people of India are on a far higher level of morality than Englishmen.—Sir Lepel Griffin; There is less immorality in India than Europe. —Sir G. B. Clark G. C. S. I. इनके अतिरिक्त M. Elphinstone आदि अनेक अंग्रेजों के मत मि० अलफ्रेड वेब ने अपनी "The People of India" नामक पुस्तक में उद्धृत किये हैं।

तो वहां वालों को उच्चपदों पर नियुक्त करना चाहिये। यदि आज इङ्गलैण्ड पराधीन हो और वहां के निवासियों को विश्वस्त और अधिक वेतन के पदों से वञ्चित रक्खा जाय, प्रत्येक कार्य में उन्हें अविश्वासी समझा जाय, तो उनका ज्ञान और विज्ञान उन्हें चरित्र भ्रष्ट होने से कदापि नहीं रोक सकता। जिस परिमाण में हम भारतवासियों को ऊंचे पदों से दूर रक्खेंगे उसी अंश में हम उन्हें चरित्र-भ्रष्ट बनायेंगे।' इन्हीं शब्दों में सर हेनरी काटन ने लिखा है। मि० वेब Webb कहते हैं कि "भारतवासियों के शुद्ध चरित्र पर सतत लाञ्छन लगाना सभ्यता को कलङ्कित करना है। प्रो० रोबर्टसन का कहना है कि 'यह समझना कि हम निर्दोष हैं, इसलिये समाज विशेष पर हमारा आधिपत्य है, बहुत अहितकर है—पागलों का लक्षण है*।' सर हेनरी स्ट्रेची के शब्दों में 'गोरों को इतना अधिक वेतन दिया जाता है कि उन्हें लोभ-लालच में पड़ने की कोई आवश्यकता ही नहीं। भारतवासियों को बहुत कम वेतन मिलता है, इसलिये यदि वे चरित्र-हीन हों तो क्या आश्चर्य है? दुःख तो यह है कि हम उन्हें वृथा ही कलङ्कित करते हैं।' अत्यधिक वेतन तथा अन्यान्य विविध लाभों और सुख-सुविधाओं के होने पर भी, रेलवे के उच्चपदाधिकारी गोरे भी लोभ-लिप्सा के कारण चरित्र-भ्रष्ट होते हुए देखे गये हैं। जिस श्वेताङ्ग महाप्रभु को ३००० रुपया मासिक मिलता था, उस पर भी कलकत्ते में १८२३ के अगस्त में रेलवे कार्य में कुमार्ग से लाखों रुपये प्राप्त करने के अपराध में आरोप लगाया गया था। भारतवासियों द्वारा जो घूस खोरी होती है [illegible] अधिकारियों की सम्मति से होती

---

* N. C. Kelkar's Case for Indian Home Rule, p. 90

है—उनकी सम्मति बिना इतनी भयंकर घूसखोरी कभी सम्भव नहीं हो सकती* ।

स्टोर-विभाग में नियुक्त होने के लिये उच्च शिक्षा के अतिरिक्त उत्तम सामाजिक स्थिति भी आवश्यक है। गोरों का सामाजिक जीवन सदैव उच्च समझा जाता है। केवल भारतवासियों के लिये ही उक्त नियम का उपयोग होता है। सामाजिक उत्तमता की कोई परिभाषा नहीं है। प्रत्येक देश का सामाजिक जीवन भिन्न है। इंगलैंड में व्यभिचार कोई अपराध नहीं, (adultery is no crime!) ।भारत वासियों की दृष्टि से यह महान दुष्कर्म है। एक शराबी, कबाबी और व्यभिचारी गोरे की सामाजिक अवस्था उच्चतम गिनी जा सकती है, पर एक भारतवासी, जो इन निकृष्ट और घृणित कार्यों से सर्वथा बहिर्मुख है, अयोग्य समझा जा सकता है! भारतवासियों को नियुक्त न करने का एक कारण यह भी बताया जाता है कि सुशासन और सुप्रबन्ध के लिये गोरों की अनिवार्यतः आवश्यकता है। १६२२ के अगस्त में इंगलैंड के प्रधान मंत्री मि० लायडजार्ज ने अपनी विख्यात 'स्टील-फ्रेम-स्पीच' में कहा था कि "European servants are the steel frame of the whole structure. If you take that out the fabric will collapse" अर्थात् गोरे-नौकर सारे प्रबन्ध के आधार-भूत स्थम्भ हैं। यदि उस आधार को निकाल लिया जायगा तो सारी व्यवस्था नष्ट हो जायगी।" इस गर्वोक्ति की निस्सारता के विषय में लिखना अनावश्यक है। भारतवासियों की योग्यता के सम्बन्ध में जो कुछ लिख आये हैं वही इस कथन के

* Acworth Com. Report, Vol. III, para 5978.

प्रत्युत्तर में पर्याप्त है।

उपर्युक्त विवेचना से बिलकुल स्पष्ट है कि भारतवासियों को नियुक्त न करने के जो जो कारण बताये जाते हैं, वे सारे निर्मूल और मनोरथ-सृष्ट हैं। इसका सत्य रहस्य कर्नल बाकर के शब्दों में यह है कि "हम स्वार्थवश भारतवासियों को अयोग्य आदि बताकर उन्हें नियुक्त नहीं करते।" अर्थात् गोरों की नियुक्ति बिना भारत का दोहन और शोषन किस प्रकार सुगम और निर्विघ्न हो सकता है? सरकारी पदाधिकारी मि० रेन (Mr. T. Ryan) ने १९१३ के रौयल कमीशन से कहाथा कि 'रेलवे का राजनीति से बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है, इसलिये पदाधिकारियों की नियुक्ति बहुत सोच समझ कर होनी चाहिये†। अर्थात् भारत में अंग्रेजी शासन की सुदृढ़ता के लिये गोरों का पदारूढ़ होना आवश्यक है। गोरों को नियुक्त करने का एक कारण मि० आर० एन० कास्ट के शब्दों में यह भी है कि 'मध्यवित्त अंग्रेज और बुभुक्षित स्काटलैंड-निवासी भारत में आजीविका के लिये आते हैं। अतएव भारतवासियों को नियुक्त न कर इन्हें ही नियुक्त किया जाता है।' (Lingustic and Oriental Essays).

† Royal Com., 1913, Report, para 80984.

दसवां प्रकरण।

यात्रा की सुगमता।

रेलवे से सर्वोपरि लाभ यात्रा की सुगमता समझा जाता है। विदेशों में रेलवे के कारण यात्रा निस्सन्देह अत्यन्त सुखकर और सुखसाध्य हो गई है। यहाँ की रेलों में यात्रियों की जो दुर्दशा होती है उसको देख कर यही कहना पड़ता है कि यहां की रेलों ने यात्रा को सुगम नहीं, किन्तु दुर्गम बना रक्खा है। 'दुगम' शब्द आश्चर्यजनक प्रतीत होता है, पर रेलवे अन्य कष्टों पर एक बार दृष्टिपात करने से यह पूर्णतया निर्भ्रान्त हो जायगा कि जो कुछ हम कह रहे हैं वह सर्वथा सत्य है। १९२१-२२ की रेलवे रिपोर्ट के अनुसार—प्रत्येक ट्रेन में—

	पहले दर्जे में	दूसरे में	मध्यम में	तीसरे में
ई० आई०	३	६	१५	२१८
बी० एन०	२	५	१२	२२९
बी० बी० सी० आई०	३	१५	१९	२३४
ई० बी	२	४	१०	१८६
जी० आई० पी०	२	८	३	२०२

तथा अन्य रेलों की प्रत्येक ट्रेन में इसी परिमाण में प्रत्येक दर्जे के यात्री होते हैं। अर्थात् रेलवे-यात्रियों में ६० प्रति सैकड़ा तीसरे दर्जे में यात्रा करते हैं। अतएव तीसरे दर्जे के यात्रियों के सुख-दुःख से ही रेलवे यात्रा की सुख-सुविधा और दुःख दुविधा का अनुमान हो सकता है। इन यात्रियों को जो जो असह्य कष्ट हैं, उनकी जो हृदय-विदारक दुर्दशा होती है, उस का भीषण किन्तु कारुणिक दृश्य वज्र-हृदय को भी द्रवीभूत किये बिना नहीं रह सकता। भारत के भूतपूर्व वाइसराय लार्ड लारेंस ने कहा था कि 'भारत में रेलवे यात्रियों की बहुत बुरी दुर्दशा होती है*।

तीसरे दर्जे के यात्रियों को अनेक कष्ट हैं। इन्हें बहुत कठिनता से टिकिट मिलती हैं। और ट्रेन के स्टेशन पर पहुँचने के पीछे इन्हें प्लेटफार्म पर जाने दिया जाता है। गाड़ी में इतनी भीड़ होती है कि ये बहुधा खड़े खड़े यात्रा करते हैं। प्रति डिब्बे में जितने यात्रियों के बैठने का नियम है उतने व्यक्तियों के लिये भी डिब्बों में स्थान नहीं होता; इस पर भी देखते यह हैं कि नियम से भी बहुत अधिक यात्री डिब्बों में भर दिये जाते हैं। सरकारी-कृषि-विभाग के अध्यक्ष मि० टाउनसीड का कहना है कि "तीसरे दर्जे के यात्रियों को निर्दयता से डिब्बों में ठूंसा जाता है†।" कानून द्वारा प्रत्येक डिब्बे के लिये यात्रियों की संख्या निश्चित है (रेलवे एक्ट, धारा ६३)—प्रत्येक डिब्बे में संख्या सूचक अङ्क लिखे रहते हैं। तीसरे दर्जे के डिब्बों में बैठने के लिये यात्रियों की जो संख्या निश्चित है, वह

* Select Com. (1878) Report. paras 4589, 4777,4781

† Acworth Com. Report, Vol. IV, page 228.

सैनिकों और साधारण यात्रियों के लिये भिन्न भिन्न है। जितने साधारण यात्री इस दर्जे के प्रत्येक डिब्बे में यात्रा कर सकते हैं, उससे लगभग आधे सैनिक यात्रा कर सकते हैं! यदि किसी डिब्बे में निश्चित संख्या के अनुसार यात्री, हैं तो, उस डिब्बे में न तो रेलवेकर्मचारी ही और अधिक यात्री बैठा सकते हैं अथवा न और कोई यात्री ही उस डिब्बे में बैठने के लिये प्रयत्न कर सकता है। कोई इस नियम का उल्लंघन करता है तो उसे दण्ड देने की व्यवस्था है (रेलवे एक्ट, धारा १०२, १०६)। प्रति दिन देखते हैं कि रेलवेवाले निश्चित संख्या से बहुत अधिक यात्रियों को डिब्बों में भर देते हैं! पर उन्हें कभी दण्ड नहीं दिया जाता! यहां प्रत्येक ट्रेन में लगभग ३०० यात्री होते हैं। संसार में कहीं भी एक ट्रेन में इतने यात्री नहीं होते‡। इंगलैंड की प्रत्येक ट्रेन में केवल ५० यात्री रहते हैं*। तीसरे दर्जे के डिब्बों में यात्रियों की ठसाठसी के कारण ही यहां की ट्रेनों में यात्रियों की अधिकता है।

तीसरे दर्जे वालों की असुविधा का कारण यह बताया जाता है कि 'यहां के लोग यात्रा के समय बहुतसा सामान साथ में रखते हैं। इंगलैंड आदि में तो गण्य-मान्य पुरुषों के साथ भी एक दो बेग होते हैं। उनके पास अधिक सामान होता है तो उसे 'ब्रेक' में दे देते हैं। यहां वाले ऐसा नहीं करते।' पहली बात यह है कि इंगलैंड आदि में अधिक दूर का सफर नहीं करना पड़ता। दूसरी बात यह है कि वहां के रेलमार्ग में भोजन आदि का बहुत अच्छा प्रबन्ध है, अतएव

‡ Robertson's Report, para 165.

* Tiwari: Indian Rys., p. 73.

यहां के यात्रियों को भोजन सामिग्री साथ में रखने की कोई आवश्यकता नहीं है। वहां की ट्रेनों में ओढ़ने-बिछाने के यथेच्छ वस्त्र भाड़े पर मिल सकते हैं, इस लिये वहाँ वाले बिस्तर भी साथ में नहीं रखते। यहां ये सुविधाएं कहाँ हैं? हमें तो भोजन सामिग्री और आवश्यक वस्त्र आदि साथ रखने ही पड़ते हैं। ब्रेकों में दिये हुए माल में से यहां प्रायः चोरी होजाती है, इसलिये हमलोग ब्रेकों में असबाब नहीं रखते। इंगलैंड आदि में तो ब्रेकों में दिये हुए माल को बिल्टी भी नहीं मिलती, फिर भी माल यथास्थान सुरक्षित पहुंच जाता है।

तीर्थोत्सवों के समय तो पशुओं के और माल के डिब्बे तीर्थयात्रियों के लिये प्रायः उपयोग किये जाते ही हैं, पर तीर्थयात्रा के सिवा भी कई रेलवे यात्रियों के लिये माल के डिब्बे काम में लेती हैं*! स्वास्थ्य-रक्षाकी दृष्टि से यह कार्य अत्यन्त हानिकारक है। सरकारी स्वास्थ विभागके अध्यक्ष ने अपने २७-६-१९१६ के पत्र में, अनेक पिल्प्रिम (तीर्थयात्रके सम्बन्ध में विचार करने के लिये नियुक्त) कमेटियों ने†, और आकवर्थ कमेटी ने इस सम्बन्ध में बहुत दुःख प्रकट किया है और इस प्रथा का अन्त करने के लिये अनुरोध किया है। कहा जाता है कि 'तीर्थयात्रा का कोई निश्चित समय नहीं है—ये कभी कभी होती हैं। इसलिये अधिक यात्रियों के लिये यात्रियों-के-डिब्बे नहीं मिल सकते।' इस तर्क का कोई मूल्य नहीं है। तीर्थ यात्राएँ यहां बहुधा होती रहती हैं, पर विदेशों में जब अभूतपूर्व यात्रियों की संख्या होजाती है, तब भी

* Acworth Com. Report Vol. III, paras 6000–6001.

† State Council Debates, Dt. 13-2-1922, p. 733–734.

वहाँ यात्रियों के लिये कभी माल के डिब्बों का उपयोग नहीं होता। महाराज जार्ज के राज्याभिषेक के समय इंगलैंड, स्काटलैंड, आयर्लैंड और वेल्स आदि से लंडन को इतने यात्री आये थे कि भारत में उतने यात्री कभी किसी तीर्थस्थलपर किसी तीर्थस्थान को नहीं गये हैं। वहाँ उन अगणित यात्रियों के लिये एक भी माल का डिब्बा काम में नहीं लिया गया।

तीसरे दर्जे के डिब्बों में जब बैठने को ही स्थान नहीं, तब सोने को कहाँ? सोना-बैठना दूर रहा, मलमूत्र त्यागने के लिये भी स्थान का संकोच है। जो स्थान है, वह अपर्याप्त, अस्वास्थ्यकर और असुविधाजनक है। हाँ, स्टेशनों पर मलमूत्र त्यागने के लिये स्थान हैं, पर शीघ्रगामी ट्रेनें बहुत कम ठहरती हैं। इसलिये, समय के अभाव के कारण, उनका उपयोग नहीं हो सकता। तीसरे दर्जे के यात्रियों के लिये जो विश्राम-स्थान (जब एक ट्रेन से दूसरी ट्रेन में परिवर्तन करने की आवश्यकता पड़ती है, तब दूसरी ट्रेन के आने तक, उसके प्रतीक्षकों के लिये विश्रामस्थान—वेटिंगशेड—होता है। पहले और दूसरे दर्जे के यात्रियों के लिये जो विश्रामस्थान होता है उसे वेटिंगरूम कहते हैं) हैं वे एक तरह के छायादार मैदान होते हैं। इनमें—

"हेमन्त उनको है कंपाता, तप तपाता है तथा,—
है झेलनी पड़ती उन्हें सिर पर विषम वर्षा व्यथा!"

ये स्थान अत्यन्त संकुचित होते हैं अतः कूड़े कर्कट में पड़े हुए दीन यात्रियों को आते जाते यात्रियों के जूतों की ठोकरें खानी पड़ती हैं। ये इतने गन्दे हैं कि यात्रियों के स्वास्थ पर इनका बहुत भयंकर असर पड़ता है। बहुधा अनेक यात्री हैजे आदि के शिकार बन जाते हैं। ये स्थान अत्यन्त दीन के लिये भी असह्य हैं। इनसे तो उनका घर ही कहीं अधिक अच्छा है। यात्रियों

को सर्वोपरि कष्ट भोजन का है। स्टेशनों पर या ट्रेन में जो भोजनालय हैं, उनमें गोरों के लिये उपयोगी भोजन मिलता है। यहाँ के लोग इन से लाभ नहीं उठा सकते। जिन स्टेशनों पर हिन्दू और मुसलमानों के लिये भोजनालय हैं, वेभी उपयोगी नहीं हैं। उनमें अच्छा भोजन नहीं मिलता। जो हिन्दू भोजनालय हैं वे केवल नाम मात्र के 'हिन्दू' हैं। अधिकतर हिन्दू उनमें भोजन नहीं कर सकते। स्टेशनों पर बेचने वालों का भोजन सामिग्री कितनी अस्वास्थकर और दुर्गन्धित होती है, यह भुक्तभोगी ही जान सकता है। घूसखोर रेलवे कर्मचारी तीसरे दर्जेवालों की जो दुर्दशा करते हैं वह वास्तव में अकथनीय है।

भाड़े की अधिकताने तीसरे दर्जे के यात्रियों को बहुत विकल कर रक्खा है। भाड़ा इनकी सामर्थ से बहुत अधिक है। पर कहा यह जाता है कि "भारत में सारे संसार से कम भाड़ा है। उदाहरणार्थ १९१८में संयुक्तराज्य अमेरिका में २॥ सेंट(१००सेंटो का मूल्य लगभग ३ रुपया है) स्विटजरलैंड में १। सेंट, जापान में आधे सेंट से कुछ अधिक और भारत में आधा सेंट प्रति मनुष्य प्रति मील भाड़ा था*। इन अङ्कों को विश्वासनीय मानलें तब भी वास्ताव में अन्य देशों से भारत में कम भाड़ा नहीं है। 'आधे से अधिक रेलवे का संचालन-व्यय श्रमजीवियों को दिया जाता है। जापान में रेलवे के एक मजदूर को प्रति दिन एक रुपया, अमरिका में १० रुपया और भारत में केवल आठ आने मिलते हैं। इसी कारण भारत और जापान में कम भाड़ा है।

* Ry. Report, 1920-21, Ch. VI, para 6;
Acworth Com. Report. Vol. I, para 72.

पर मजदूरी को देखते हुए और भी कम भाड़ा होना चाहिये*। मि० रोबर्टसन का कहना है कि 'भारत में जो भाड़ा यात्रियों से और माल के लिये लिया जाता है वह देखने में इङ्गलैण्ड से कम है, पर वास्तव में कम नहीं है। वास्तविक तुलना के लिये दोनों देशों की अवस्था और व्यवस्था का तथा दोनों देशों की रेलवे के निर्माण-व्यय और संचालन-व्यय का विचार करना चाहिये। इन बातों का तुलनात्मक विचार करने से तो भारत में इङ्गलैण्ड से छठा हिस्सा भाड़ा होना चाहिये। भारत में जो भाड़ा है वह इङ्गलैण्ड से १८ से ४० प्रति सैकड़ा अधिक है†'। मि० पिस्टले का कहना है कि अमेरिका के एक मजदूर को प्रति दिन ४ रु० मिलते हैं और वह एक दिन के वेतन से ६३ मील यात्रा कर सकता है। इसी प्रकार एक भारतीय मजदूर को केवल २-३ आने प्रतिदिन मिलते हैं, वह एक दिन के वेतन से १० मील से अधिक यात्रा नहीं कर सकता। अमेरिका की अपेक्षा भारत में भाड़ा बहुत अधिक है‡।' यात्रा के लिये व्यय करने की शक्ति आय-की-बचत (संचित धन) पर अवलम्बित है, न कि प्रतिदिन की उपार्जित मजदूरी पर। अतएव दो देशों के भाड़े की तुलना करते समय बचत का भी विचार करना आवश्यक है। अमेरिका-इंगलैंड आदि के निवासियों और भारतवासियों की मजदूरी में जितना अन्तर है उससे कहीं अधिक अन्तर बचत में है। इस दृष्टि से तो भारत में तीसरे दर्जे के यात्रियों का भाड़ा विदेशों की अपेक्षा और भी कम होना चाहिये।

* Acworth: State Ownership, p. 49.

† Robertson's Report, paras 191-193.

‡ Priestly: American Rys., para 199-200.

गतवर्षों में भाड़े की जो वृद्धि हुई है उसका कारण संचालन-व्यय की अधिकता बताया जाता है, किन्तु तीसरे दर्जे के यात्रियों के आवागमन के लिये पहले से जितना अधिक व्यय अब होता है उससे कहीं अधिक भाड़े की वृद्धि हुई है। संचालन-व्यय और भाड़े का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। एक दूसरे की न्यूनाधिकता एक दूसरे पर निर्भर है। रेलवे-विशारदों का कहना है कि भाड़े की बहुत वृद्धि करने से यात्रियों का तथा माल का आवागमन कम होजाता है। जिसके फलस्वरूप सञ्चालन-व्यय प्रतिटन या प्रतिजन प्रतिमील अधिक होने लगता है। भाड़े के कम होने से वस्तुओं और यात्रियों के आवागमन में वृद्धि होती है अतएव सञ्चालन व्यय कम होता है। उदाहरणार्थ १८९८ के पहले जी० आई० पी० रेलवे का भाड़ा अधिक होने से लाभ नहीं होता था। इसलिये १८९८ में भाड़ा कम कर दिया गया। इसका फल यह हुआ कि १८९७ में जो ९. लाख की आय और ४॥ पाई प्रति मील प्रति टन सञ्चालन व्यय हुआ था वह भाड़ा कम करने से १९०० में १६५ लाख की आय और ३। पाई सञ्चालन-व्यय हुआ*। मि० रोबर्टसन का कहना है कि 'भाड़ा कम करने से एक बार तो आय में कमी हो जाती है, पर अन्य देशों का अनुभव कहता है कि यह हानि क्षणिक होती है—कुछ समय में इस हानि की पूर्ति स्वयं हो जाती है‡। इस सम्बन्ध में एक रेलवे-शास्त्री के शब्द विशेषतः उल्लेखनीय हैं। आपका कहना है कि "Small profit, many times repeated, is better than a large one obtained only occasionally, and a large business

* Monograph, p. 104–105.

‡ Robertson's Report, para 196.

affords greater opportunities of gain than a small and restricted one.—Chapter on "Goods Rates" in Hugh Monro Ross' Book on British Railways. (Monograph, p. I) अर्थात् कभी कभी के अधिक लाभ की अपेक्षा थोड़े थोड़े लाभ का अनेक बार होना अधिकतर अच्छा है। थोड़े और परिमित व्यापार की अपेक्षा अधिक व्यापार में अधिक लाभ की सम्भावना है।"

जहां रेलें सरकारी हैं, यदि वहां रेल-भाड़े की वृद्धि द्वारा सरकारी आय की वृद्धि की जाती है तो वह एक प्रकार का कर समझा जाता है (that virtually amounts to extra taxation*). बेलजियम में सरकारी रेलें हैं, वहां की रेलें उतना ही भाड़ा लेती हैं जितना कि रेलवे-संचालन के लिये आवश्यक है‡। यहाँ जो भाड़े की वृद्धि की जाती है, उसका प्रधान कारण सरकारी आय की वृद्धि करना है। अर्थात् यहां के भाड़े की अधिकता का कारण आवागमन पर टैक्स समझना चाहिये।

पहले और दूसरे दर्जों के यात्रियों के आवागमन में रेलवे का जितना व्यय होता है, उससे बहुत कम आय उनके द्वारा (भाड़े के रूप में) होती है। अतएव रेलवे को इनके कारण सदैव हानि होती है। यह हानि तीसरे दर्जे के यात्रियों द्वारा पूरी की जाती है। तीसरे दर्जे के भाड़े की अधिकता का यह भी एक कारण है। पहले दर्जे के प्रत्येक डिब्बे के संचालन में ४ पाई प्रति मील हानि और तीसरे दर्जे के प्रति डिब्बे से ५६ पाई

---

* Select Com. (1884) Report, para 4299.

‡ C. S. Vrooman: American Railway Problem, p.179

प्रति मील लाभ होता है†। उचित तो यह है कि तीसरे की अपेक्षा पहले दर्जे से अधिक लाभ हो, पर यदि कम से कम तीसरे दर्जे के समान भी (अर्थात् ५६ पाई प्रति मील प्रति डिब्बा) पहले दर्जे से लाभ होना उचित समझा जाय तब भी पहले दर्जे से तीसरे दर्जे की अपेक्षा ६० पाई (५६ पाई तीसरे दर्जे के समान लाभ और ४ पाई को पहले दर्जे से जो हानि होरही है वह) प्रतिडिब्बा प्रतिमील कम आय होती है। अथवा यों समझिये कि तीसरे दर्जे की तुलना में पहले दर्जे से ६० पाई की हानि होती है। पहले दर्जे से प्रति डिब्बा प्रति मील कुल आय (व्यय नहीं काट कर। व्यय की ३४ पाई काटने से तो ४ पाई की हानि होती है, जैसा ऊपर लिख चुके हैं) ३० पाई होती है*। अर्थात् प्रत्येक ३० पाई पर ६० पाई की हानि होती है—जितना भाड़ा लेना चाहिये उससे तिहाई लिया जाता है! प्रति वर्ष पहले दर्जे से रु०१३६ लाख की कुल आय (व्यय न काटकर) होती है‡ अतएव उपर्युक्त हिसाब के अनुसार इस दर्जे से ३ करोड़ के लगभग हानि होती है!

पहले दर्जे से गोरे यात्रा करते हैं इस लिये इस दर्जे के यात्रियों को अत्यधिक सुख-सुविधा पहुंचाने में बहुत व्यय होता है, पर भाड़ा बहुत कम लिया जाता है। इसलिये इस दर्जे से हानि होती है। हाँ, यदि भाड़ा बहुत कम कर

† Ry. Report, 1919–20, Appendix 13, Col. 82, 85.
(१९२० से १९२३ तक की रिपोर्टों में ये अङ्क नहीं दिये गये हैं।)

* Ry. Report, 1919–20, Appendix 13, Col. 56.

‡ Ry. Report, 1921-22, Vol. II, Appendix 5, p. 46, col. 4.

दिया जाय तब भी हानि कम हो सकती है, क्योंकि भाड़ा कम होने से अधिक यात्री इस दर्जे में बैठने लगेंगे। परन्तु भाड़ा कम तो यों नहीं किया जाता है कि भाड़ा कम होने से हिन्दुस्तानी भी इस दर्जे से यात्रा करने लगेंगे, जिससे गोरों के एकाधिकार में बाधा पड़ जायगी। जब तीसरे दर्जे के निस्सहाय यात्री इस दर्जे की हानि पूरी करने के लिये हैं हीं, तब इस दर्जे के लिये भाड़ा अधिक किया ही क्यों जाय — क्यों अधिक भाड़ा गोरों की जेबों से निकाला जाय? जापान में पहले दर्जे का प्रतिजन प्रति मील ७। पाई, दूसरे दर्जे का ५ पाई और तीसरे दर्जे का ३।।। पाई भाड़ा है*। पर यहाँ क्रमशः २४, १२ और ३ पाई के लगभग है! जान बूझ कर पहले दर्जे से इतना अधिक भाड़ा लिया जाता है कि जिससे, भाड़े की अधिकता के कारण, हिन्दुस्तानी इस दर्जे में यात्रा न कर सकें! कुछ भी हो, यह तो प्रत्यक्ष है कि पहले दर्जे से रेलवे को जो हानि होती है, वह तीसरे दर्जे वालों से पूरी कराई जाती है! विदेशों में तो The fares for first class are made to exceed those for inferior class by more than the difference in the costs of providing those different sorts of service—A. C. Pigou: Economics of Welfare, p. 269. अर्थात् पहले दर्जे और तीसरे दर्जे के संचालन व्यय में जितना अन्तर होता है उससे भी कहीं अधिक भाड़ा पहले दर्जे के यात्रियों से लिया जाता है।" स्वर्गीय ग्लेडस्टन की प्रेरणा से इंगलैंड में तीसरे दर्जे के यात्रियों से विशेषतः कम भाड़ा लेने के लिये कानून (Railway Cheap Trains Act, 1844, 46–47 Vic. C. 34.) बना हुआ है। इंगलैंड में, विशेष कर बेलजियम में, मजदूरों से

* Tiwari; Indian Rys., p. 430.

भाड़ा लिया जाता है* । यही नहीं, किन्तु अनेक देशों में तो एक ही दर्जे के यात्रियों में जो गरीब होते हैं, उनसे उसी दर्जे के अन्य यात्रियों की अपेक्षा कम भाड़ा लिया जाता है† । भारत में दीन-हीन तीसरे दर्जे के यात्रियों से धन छीन कर सुसमृद्ध पहले दर्जे के यात्रियों को सुख पहुंचाया जाता है !! यह अत्याचार की पराकाष्ठा है। सभ्यताभिमानी शासकों के "सुशासन और सभ्यता का एक साधारण किन्तु अत्यन्त महत्व-पूर्ण उदाहरण है।

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि तीसरे दर्जे के यात्रियों की शोचनीय दुर्दशा हो रही है। रसकिन Ruskin ने विनोदार्थ लिखा है कि 'रेलवे-यात्री मानव तनु से परिवर्तित हो कर प्राणधारी पारसलों के समान हैं। यात्रा के समय उनकी कुलीनता तथा उनके और सारे गुण उनसे दूर होजाते हैं—Railway travellers are like living parcels transmuted from human beings and they for the time being part with all that is noble in them।' यहां के तीसरे दर्जे के यात्रियों के सम्बन्ध में ये शब्द अक्षरशः सत्य हैं। निष्कर्ष यह है कि तीसरे दर्जे के यात्रियों को यहाँ जो असुविधा है, उनका जो अपमान होता है, वैसा संसार में और कहीं नहीं होता। अन्य देश वाले ऐसी विकट विभीषिका की कल्पना भी नहीं कर सकते। अनेक बार यह कहा गया है कि तीसरे दर्जे के यात्रियों से आशातीत लाभ हो रहा है, इसलिये उनकी सुख-सुविधा की ओर सब से पहले ध्यान देना परमा-

* Rowntree: Land and Labour, p. 289.

† Colson: Cours d' economie politique, Vol. VI, p. 230 (Pigou: Economics, p. 269).

वश्यक है। विगत रेलवे-कमेटी का भी यही कहना है कि 'रेलवे की सारी आय का तीसरा भाग तीसरे दर्जे के यात्रियों से मिलता है अतएव इन यात्रियों का रेलवे पर सर्वोपरि अधिकार है* ।' पर इन विचारों के अभाव अभियोगों को कौन सुनता है ? इनके दुःख दूर करने की सारी प्रार्थनाएं केवल अरण्य-रोदन है। अनेक बार कौंसिलों में इनके दुःख दूर करने की बातें कही गईं, प्रस्ताव पास हुए, पर इनके कष्ट को अद्यावधि अंशतः भी कम नहीं किया गया, प्रत्युत दिन पर दिन इनकी कठिनाइयाँ वृद्धि कर रहीं हैं। १९१६ के पीछे तीसरे दर्जे के भाड़े में ७०-७५ प्रति सैकड़ा वृद्धि होगई, पर पहले दर्जे के भाड़े में केवल ४०-४५ प्रति सैकड़ा ही‡ !

तीसरे दर्जे के यात्रियों को जो असह्य कष्ट है, उसका कारण धनाभाव बताया जाता है। कहा जाता है कि 'रेलवे के पास इतना धन नहीं है कि वह इनकी कठिनाइयों का निवारण कर सके।' रेलवे की अनावश्यक, अपार और अत्यन्त घातक वृद्धि में २०-२५ करोड़ रुपये प्रति वर्ष व्यय होते हैं, और इस कार्य के लिये कभी धनाभाव नहीं हुआ, पर रेलवे के जीवन-प्राण तीसरे दर्जे के यात्रियों के कष्ट-निवारण के लिये धन का टोटा ! ये महापुरुष यह नहीं विचारते कि जो करोड़ों रुपये इन दीन यात्रियों से छीनते हैं, उनमें से क्यों नहीं थोड़ा बहुत इनकी सुख-सुविधा के लिये व्यय किया जाय अथवा जो करोड़ों रुपये प्रति वर्ष रेलों की वृद्धि में व्यय होते हैं उनका एक अंश

* Acworth Com. Report, Vol. I, para 171.

‡ Railways and the Budget, p. 56.

क्यों नहीं इनकी भीषण यातनाओं को कम करने में व्यय किया जाय। भला वे यह क्यों विचार करने लगे? उनकी सारी कार्य शक्तियों का प्रवाह तो एक ओर ही प्रवाहित हो रहा है; अर्थात्—(१) विदेशी वस्तुओं के अधिकाधिक प्रचार के लिये अथवा देश के धन को बटोरने के लिये रेलपथ तथा माल के डिब्बों की आंख मूंद कर अपरिमित वृद्धि करना,(२)और गोरे यात्रियों को विविध प्रकार की सुख-सुविधाएं पहुंचाना। तीसरे दर्जे के यात्रियों के कष्ट-निवारण के लिये धन की कमी सदैव बनी रहती है पर उपर्युक्त दोनों कामों के लिये स्वप्न में भी कभी धन का अभाव नहीं होता, जैसा निम्न लिखित बातों से प्रत्यक्ष है।

१—तीसरे दर्जे के यात्रियों का दुःख दूर करने की अपेक्षा माल के आवागमन की वृद्धि के लिये निरर्थक माल के डिब्बों आदि की वृद्धि की जारही है, इसके प्रमाण में एक उदाहरण देखिये। १९०५ की अपेक्षा १९१५ में यात्रियों के डिब्बे ४० प्रति सैकड़ा और माल के डिब्बे ६० प्रतिसैकड़ा अधिक थे, पर उक्तवर्षों में यात्रियों की वृद्धि ९० प्रतिसैकड़ा और माल की वृद्धि ५० प्रति सैकड़ा हुई। अर्थात् ९० प्रति सैकड़ा यात्रियों के लिये केवल ४० प्रति सैकड़ा डिब्बों की वृद्धि और ५० प्रति सैकड़ा माल के लिये ६० प्रति सैकड़ा डिब्बों की वृद्धि! इसी प्रकार १९१४ से १९२१ में १० प्रति सैकड़ा यात्रियों के डिब्बे और २६ प्रति सैकड़ा माल के डिब्बे अधिक थे, पर यात्रियों की वृद्धि २१ प्रति सैकड़ा और माल की वृद्धि ९ प्रति सैकड़ा ही हुई*। अर्थात्

* १९०५ से १९१५ तक के लिये देखो—
Assembly Debates Dt. 7-9-1922, p. 211;
१९१४ से १९२१ तक के लिये देखो—
Retrenchment Com. Report, App. B, D.

२१ प्रति सैकड़ा अधिक यात्रियों के लिये केवल १० प्रति सैकड़ा डिब्बों की वृद्धि परन्तु ६ प्रति सैकड़ा अधिक माल के लिये २६ प्रति सैकड़ा माल के डिब्बों की वृद्धि ! तीसरे दर्जे के यात्रियों के लिये आवश्यक डिब्बों की वृद्धि न कर माल के डिब्बों का अनावश्यक वृद्धि करना कदापि उचित नहीं हो सकता। ई० आई० रेलवे के एजेंट मि० हिंडले ने तो स्पष्ट कहा है कि तीसरे दर्जे के यात्रियों के डिब्बों में भीड़ कम करने के लिये यदि अधिक ट्रेनें चलाई जायँगी तो माल की ट्रेनें कम करनी पड़ेंगी*। इसलिये माल के आवागमन की सुविधा के लिये तीसरे दर्जे के यात्रियों के लिये अधिक ट्रेने नहीं चलाई जा सकतीं।

२—दूसरी बात गोरे यात्रियों की सुख-सुविधा की है। पहले लिख चुके हैं कि प्रति ट्रेन में एक दो ही पहले दर्जे के यात्री रहते हैं। अथवा यों कह सकते हैं कि जितने पहेले दर्जे के डिब्बों का आवागमन होता है उनमें जितने यात्रियों के बैठने की नियमित संख्या है उसमें से केवल १० प्रति सैकड़ा ही यात्रा करते हैं। पहले दर्जे के डिब्बे बहुमूल्य और अत्यन्त सुन्दर और सुखद होते हैं। इनमें शयन करने के लिये पर्याप्त स्थान, बैठने के लिये कुरसियां। हेमन्त और शिशिर में भी मदिरा-जन्य परिताप के प्रहार को पंखों की परिमल पवन! शौचादि के लिये सुखावह स्थान! ट्रेन के साथ सुरम्य भोजनालय, जिसमें सुलभ और संतोषप्रद भोजन। इस दर्जे के यात्रियों के लिये या यों कहिये कि गोरे यात्रियों के लिये स्टेशनों पर सुदृश्य, सुसज्जित और सुविधाजनक विश्रामस्थान,

* Acworth Com. Rept. Vol. I, p. 8.

जहाँ प्रायः सारी आवश्यक वस्तुओं के अतिरिक्त बिजली के पंखों की सुरभि समीर। और सुखधाम—विश्रामस्थान—के समीप ही सुशोभित भोजनालय, जिसमें सुस्वादु और सुगन्धित सामान। कहा जा सकता है कि पहले दर्जे का भाड़ा तीसरे दर्जे से आठ गुना है, अतः पहले दर्जे के यात्रियों को उक्त सुख और सुविधाएँ पहुंचाना उचित ही है। प्रश्न तो यह है कि जितना धन इनकी सुख-सुविधा में व्यय होता है, उतना इन के द्वारा प्राप्त होता है अथवा नहीं। पहले लिख चुके हैं कि इस दर्जे के यात्रियों के लिये जितना खर्च होता है उतना उन से नहीं मिलता। जो आराम सुसमृद्ध गोरों को दिया जाता है उसका सारा मूल्य वे नहीं देते। जो घाटा रहता है वह तीसरे दर्जे के दीन यात्रियों को देना पड़ता है!! तीसरे दर्जे के यात्रियों को हृदय-विदारक दुःख पहुँचा कर उनके धन से सुसम्पन्न पहले दर्जे के यात्रियों को अलौकिक सुख पहुँचाना नृशंस अत्याचार है। गोरों तथा अधगोरों के लिये दूसरे और मध्यम दर्जे के पृथक् डिब्बे हैं; उनमें भारतवासी नहीं बैठ सकते *। पहले दर्जे के विश्राम स्थान तो गोरों के एकाधिकार में हैं ही, क्योंकि ये ही इस दर्जे से यात्रा करते हैं, पर दूसरे दर्जे के विश्रामस्थान गोरों के लिये प्रायः पृथक् होते हैं' और ये (भारतवासियों के इसी दर्जे के विश्रामस्थानों से) अधिकतर सुशोभित और सुखदायक हैं! स्टेशनों और ट्रेनों के भोजनालय इन्हीं

---

* कहा जाता है कि विदेशी भेष में भारतवासी भी इन डिब्बों में यात्रा कर सकते हैं (Assembly Debates Dt. 8-2-1923., p. 2045)। पर यह कहां तक सत्य है, नहीं कहा जा सकता!

के लिये हैं। इनमें इन्हीं के उपभोग की वस्तुएं होती हैं। जो कतिपय नवसभ्यताभिमानी भारतवासी गोरों का भोजन करते हैं, उनमें से अधिकतर तो मूल्याधिकता के कारण इन भोजनालयों से लाभ उठाने में असमर्थ हैं, और जो समर्थ हैं वे प्रायः प्रवेश नहीं कर सकते !

भारतवासी और गोरे यात्रियों के मध्य जो भेदभाव रक्खा जाता है, वैसा घृणित पक्षपात अन्य देशों में सम्भव नहीं हो सकता। भारतीय रेलवे एक्ट की ४२ वीं धारा केवल वस्तुओं के लिये ही नहीं, किन्तु यात्रियों के भी प्रति पक्षपात करने का विरोध करती है। बम्बई हाईकोर्ट के प्रधान विचारपति (Chief Justice) सर लल्लूभाई शाह ने पिछले दिनों निर्णय किया था कि 'रेलवे एक्ट की ४२ वीं धारा के कारण गोरों के लिये पृथक् डिब्बे नहीं हो सकते* । सहयोगी विचारपति मि० क्रम्प इस निर्णय के विरोधी थे। नियमानुसार तीसरे विचारपति मि० मार्टन ने इस सम्बन्ध में विचार किया और मि० क्रम्प के मत का समर्थन किया। यह ठीक ही था। जब गोरों के हिताहित का प्रश्न होता है तब न्याय का खून करना एक साधारण बात है! यदि कभी गोरों के लिये पृथक् डिब्बा नहीं होता है तो जिस डिब्बे में वे बैठ जाते हैं, उसमें प्रायः भारतवासियों को नहीं बैठने दिया जाता। मद्रास हाईकोर्ट में एक ऐसाही मामला था†। न्यायाधीश श्रीयुत कृष्ण का निर्णय था कि 'जिस डिब्बे के सम्बन्ध में झगड़ा है, वह गोरों के लिये था, इसका कोई प्रमाण नहीं, अतएव उसमें भारतवासी बैठ सकते थे।' सह-

* Bombay Law Reporter, XXV, p. 26.

† Indian Law Reports, Madras, XLV, p. 215.

योगी विचारपति का मतभेद होने से तीसरे जज द्वारा निर्णय हुआ। इन महाशय ने श्री० कृष्ण के मत का खण्डन किया! वर्तमान शासन प्रणाली में इसके सिवा और हो ही क्या सकता था। 'टिकिट' लेने के पश्चात् पहले और दूसरे दर्जे के यात्रियों के लिये डिब्बों में स्थान रिजर्व—सुरक्षित—करने का कानून है सही, परन्तु यात्रियों का अर्थ जाति विशेष से नहीं है। यात्रियों का अर्थ जाति विशेष के लिये प्रयोग करना किसी भाषा-विज्ञान से सिद्ध नहीं हो सकता! जब यात्री ही डिब्बे में नहीं तब एक अदृश्य व्यक्ति के लिये, डिब्बा सुरक्षित रखना कदापि कानून संगत नहीं हो सकता। हां, रेलवे एक्ट में स्पष्ट लिखा है कि स्त्रियों के लिये प्रत्येक दर्जे का एक या एक से अधिक पृथक् डिब्बा होना चाहिये (रेलवे एक्ट, धारा ६४), पर यह कहीं नहीं लिखा कि गोरों के लिये अथवा किसी जाति विशेष के लिये डिब्बे पृथक् रहें। रेलवे-कानून के अनुसार अनेक कारणों से यात्रियों को डिब्बे में से निकाल दिया जाता है, पर रेलवे एक्ट में यह कोई नियम नहीं है कि गोरों के लिये निश्चित डिब्बों में से भारतवासियों को निकाला जासकता है।

सन् १८५८ में महारानी विक्टोरिया के घोषणापत्र में लिखा है कि 'अंग्रेजों के समान ही भारतवासियों के साथ व्यवहार करना हमारा (इंगलैंड के शासकों का) परम कर्तव्य है और ईश्वर की कृपा से हम इस कर्तव्य को निष्कपट हृदय से पालन करेंगे।' इन्हीं शब्दों में महारानी के उत्तराधिकारियों ने घोषणा की है। ये सारी प्रतिज्ञाएं कहने और लिखने मात्र के लिये हैं। लार्ड लिटन ने लिखा था कि 'यह पत्र गुप्त है, अतएव मैं निस्संकोच कहता हूँ कि अंग्रेज सरकार ने भारतवासियों से जो जो प्रतिज्ञाएं की उनका अंशतः भी पालन

नहीं किया गया। प्रत्युत उनको समूलतः नष्ट करने का अविकल प्रयत्न किया गया है।' केवल रेलवे पर ही गोरों और भारतवासियों के मध्य असम दृष्टि नहीं रक्खी जाती, पर पद पद पर पक्षपात प्रदर्शित होरहा है। एक भारतवासी जज गोरे के अपराध का निर्णय नहीं कर सकता*। जेलों में भारतीय अपराधी की अपेक्षा गोरे अपराधी को बहुत कम कष्ट दिया जाता है (देखो, Jail Code)। साम्राज्यान्तर्गत देशों में हमारे प्रति अनेक अमानुषिक अत्याचार होते हैं। निष्कर्ष यह है कि श्वेताङ्गों के स्वार्थ और सुख के लिये हमारा सदैव और सर्वत्र रक्त शोषण किया जाता है। इस प्रकरण का अन्त करने के पूर्व इंगलैंड के प्रधान मंत्री मि० मेक्डोनल्ड के कुछ शब्द उद्धृत करना आवश्यक है। आपका कहना है कि "If we can not tolarate Indian ways in Railway trains, obviously we can do no permanent good in India and should leave the place altogether. (Macdonald: Awakening of India), अर्थात् यदि हम (इंगलैंडवासी) भारतवासियों के साथ रेलवे डिब्बों में बैठने से घृणा करते हैं, तो हम भारत का किञ्चित भी भला नहीं कर सकते, इसलिए उचित तो यह है कि हम भारत से अपना सम्बन्ध तोड़लें।"

---

* Ac. III of 1884. किन्तु Racial Distinction Committee (1922) के अनुरोध करने से इस सम्बन्ध में कुछ परिवर्तन हुआ है। पर अब भी एक भारतवासी-मजिस्ट्रेट गोरों के अपराध का विचार और निर्णय नहीं कर सकता।

ग्यारहवां प्रकरण।

माल के आवागमन की सुविधा।

रेलवे का उत्तरदायित्व।

माल के आवागमन के लिये रेलवे एक अलभ्य साधन है। परन्तु यहाँ की रेलों द्वारा माल भेजने में अनेक कठिनाइयाँ और हानियाँ हैं। सर्व प्रथम रेलवे का उत्तरदायित्व ही देख लीजिये। रेलवे एक्ट की धारा ७२(१) में लिखा है कि 'जो माल रेलवे द्वारा भेजा जाता है यदि वह रेलवे की आधीनता में नष्ट-भ्रष्ट हो जाय तो उस हानि के लिये रेलवे का उत्तरदायित्व यह है कि 'यदि माल रेलवे की असावधानी या अपराध के कारण नष्ट-भ्रष्ट हुआ हो तो उस हानि को पूरी करने के लिये रेलवे बाध्य है। यदि रेलवे उतनी ही सावधान थी जितनी सावधानी एक साधारण व्यक्ति अपने उसी प्रकार के माल की रखता है, तो क्षतिपूर्ति के लिये रेलवे उत्तरदायी नहीं है। इससे स्पष्ट है कि माल की हानि के लिये रेलवे का उत्तरदायित्व बहुत कम है। ई० आई०रेलवे-कम्पनी ने अपने एक वक्तव्य में लिखा है कि 'येनकेन प्रकारेण प्रायः हम क्षतिपूर्ति करने से बच जाते हैं*।' इंगलैंड में रेलवे का उत्तरदायित्व बीमा-कम्पनियों के

* Risk Note Com. Report, p. 59.

समान है। अतएव वहां माल को बहुत सावधानी रक्खी जाती है। उक्त नियम के कारण यहाँ की रेलें माल की बिलकुल हिफाजत नहीं करतीं, जिससे माल बहुधा नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है। और इस हानि के लिये रेलवे के अनुत्तरदायी होने से, सर्व साधारण को बहुत हानि होरही है। यद्यपि उक्त धारा के अनुसार रेलवे का उत्तरदायित्व नाम मात्र का है, तथापि यह अत्यल्प उत्तरदायित्व भी धारा ७२(२) के कारण और भी कम हो जाता है। इस धारा की शरण में उत्तरदायित्व को कम करने के लिये सरकार द्वारा निर्मित 'फार्म' पर माल भेजने वाले के स्वीकृतिरूप--हस्ताक्षर अपेक्षित हैं। इस छपे हुए फार्म कोही रिस्क-नोट कहते हैं। ये फार्म १० प्रकार के हैं:—(१) जो माल रेलवे को सौंपा जाता है यदि वह खराब अवस्था में है, अथवा-अच्छी तरह 'पैक' (बंधा-सिमाँ) नहीं है, और मार्ग में उसके नष्ट-भ्रष्ट होने की सम्भावना है, तब रिस्क-नोट-फार्म-ए. का; (२) जब कोई व्यक्ति साधारण भाड़े से कम भाड़े पर माल भेजना चाहता है तब बी-फार्म का; (३) प्रति बार बी-फार्म को असुविधा से मुक्त होने के लिये एच-फार्म का; (४) खुले हुए डिब्बों में जिस माल के खराब होने का भय है, उसे यदि माल-स्वामी खुले हुए डिब्बों में भेजना चाहता है, तब सी-फार्म का; (५-६) बारूद आदि के लिये डी और जी फार्मों का; (७) हाथी, घोड़े आदि को कम भाड़े पर भेजने के लिये ई-फार्म का; (८) यदि भेजने वाला हाथी-घोड़ों को गाय-भैसों के डिब्बों में भेजना चाहता है, तब एफ-फार्म का; (९-१०)और चांदी-सोने को कम भाड़े पर भेजने के लिये एक्स और वाई फार्मों का उपयोग होता है। 'ए' और 'बी' के कारण ही घोर अन्याय हो रहा है।

इसलिये इन्हीं के सम्बन्ध में विचार करना आवश्यक है।

ए-फार्म में लिखा है कि "हमने जो माल रेलवे को दिया है वह खराब अवस्था (bad condition) में है—मार्ग में उसके नष्ट-भ्रष्ट होने की सम्भावना है। अतएव जिस दशा में यह पहुंचेगा, उसी दशा में हम उसे ले लेंगे—इस माल के नष्ट-भ्रष्ट होने के लिये रेलवे उत्तरदायी नहीं होगी।" इस फार्म के शब्द ठीक हैं, पर इस का दुरुपयोग किया जाता है। यद्यपि माल अच्छी दशा में है तब भी भेजने वाले को इस पर हस्ताक्षर करने पड़ते हैं! मिलों में प्रेस हुई गांठों तक के लिये भी इस फार्म का प्रयोग होता है! जिस स्टेशन पर माल को सुरक्षित रखने के लिये स्थान नहीं होता, वहाँ तो ए-फार्म बिना माल लिया ही नहीं जाता*! रेलवे वालों ने यह स्वीकार किया है कि 'रेलवे सुरक्षित और अच्छी तरह 'पैक' माल के लिये भी ए-फार्म ले लेती है‡! कई रेलों का तो यह नियम है कि वे बिना ए-फार्म के माल लेती ही नहीं! यदि हम ए-फार्म पर हस्ताक्षर न करें और रेलवे से इस सम्बन्ध में लिखा-पढ़ी करें तो सम्भव है कि भली भांति 'पैक' माल के लिये ए-फार्म का उपयोग न हो। पर लिखा पढ़ी में बहुत समय व्यतीत हो जाता है जिससे व्यापारियों को बहुत हानि होने का भय है। दूसरी बात यह है कि प्रति बार लिखा-पढ़ी करना बहुत असुविधाजनक और हानिकारक है। अतएव माल-स्वामी को विवश हो ए-फार्म स्वीकृत करना पड़ता है। ए-फार्म की स्वीकृति का परिणाम यह होता है कि रेलवे माल की कोई हिफाजत

* Risk Note Com. Report, p. 34. ‡ p. 45.

नहीं करती जिससे माल नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है। जब डिब्बों में बोरों आदि से निकला हुआ माल नहीं रहता तब यह कैसे कहा जा सकता है कि माल के अच्छी तरह पैक न होने से, वह कम होगया है। वास्तव में, रेलवे-कर्मचारी चोरी करते हैं, इसलिये माल कम हो जाता है। इस कमी के लिये रेलवे उत्तरदायी नहीं, क्योंकि उसने माल-स्वामी से पहले ही यह लिखा लिया है कि 'माल के नष्ट-भ्रष्ट होने के लिये रेलवे उत्तरदायी नहीं है'। हां, गोरों के माल के लिये ए-फार्म प्रायः नहीं लिया जाता उनके बोरे अच्छी तरह पैक समझे जाते हैं*। पर हम लोगों के उनसे अधिक अच्छी तरह पैक हुए भी अच्छी तरह पैक नहीं समझे जाते!

बी-फार्म में लिखा है कि 'हमने जो माल रेलवे को दिया है उसका भाड़ा मामूली भाड़े की अपेक्षा कम लिया गया है। अतएव—कम भाड़ा लेने के कारण—यदि यह माल किसी कारण नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा तो उसके लिये रेलवे उत्तरदायी नहीं है। यदि संख्या में एक या एक से अधिक बोरे (अथवा गांठ, पेटी आदि, पर सुविधा के लिये इन सबके लिये केवल 'बोरा' शब्द का ही उपयोग करेंगे) रेल वालों द्वारा चुरा लेने से अथवा उनकी असावधानी के कारण संख्या में कम हो जायंगे तो रेलवे क्षतिपूर्ति के लिये बाध्य है। परन्तु अग्नि से अथवा चलती हुई गाड़ी में डाका पड़ जाने से अथवा अन्य अदृष्ट आकस्मिक कारणों से जो हानि होगी वह असावधानी नहीं समझी जायगी।' इस फार्म के शब्द अत्यन्त आपत्ति-जनक हैं। इसके कारण बहुधा बोरों में से बहुत सा माल

* Risk Note Com. Report, p. 3.

चोरी होजाता है। कभी कभी यहां तक देखा जाता है कि सारे बोरों से सारा का सारा माल निकाल लिया जाता है और माल-स्वामी को केवल खाली बोरे देकर भी माल की हानि के लिये रेलवे अनुत्तरदायी बन बैठती है!

(क) बोरों का माल कम होने के लिये तो रेलवे (बी-फार्म के कारण) उत्तरदायी है ही नहीं, पर संख्या में एक या एक से अधिक बोरों की कमी का कारण चोरी आदि बता कर रेलवे अपनी जिम्मेदारी से बच जाती है। क्योंकि फार्म-बी के अनुसार संख्या की कमी के लिये रेलवे तभी उत्तरदायी है जब कि यह कमी कर्मचारियों द्वारा चोरी होने से अथवा उनकी जानबूझकर असावधानी से हुई है। रेलवे को यह प्रमाण नहीं देना पड़ता कि 'संख्या की कमी उसकी असावधानी के कारण नहीं हुई है'। माल-स्वामी को यह प्रमाण देना पड़ता है कि रेलवे-वालों की असावधानी से अथवा उनके द्वारा चोरी होने से संख्या में कमी हुई है। यदि माल-स्वामी यह प्रमाण न देसके तो रेलवे उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाती है! बी-फार्म में प्रमाण के सम्बन्ध में कुछ उल्लेख नहीं है। अतएव वाहकों सम्बन्धी कानून (Carriers Act III of 1865, Sec. 9) और रेलवे एक्ट की धारा ७६ के अनुसार प्रमाण-भार माल-स्वामी पर नहीं हो सकता। उक्त धारा में स्पष्ट लिखा है कि 'माल-स्वामी को यह प्रमाणित नहीं करना पड़ेगा कि हानि किस प्रकार हुई है'। इंगलैंड के न्यायाधीश लार्ड बकमास्टर (Lord Buckmaster) का कहना है कि 'जब माल रेलवे की आधीनता में है तब उसकी हानि का कारण

रेलवे के अतिरिक्त अन्य किसी को विदित होना असम्भव है* ।' अतएव साक्षी-कानून† के अनुसार भी प्रमाण-भार रेलवे पर होना चाहिये। लार्ड हल्सबरी Lord Halsbury की Laws of England नामक विख्यात पुस्तक में लिखा है कि 'जब रेलवे माल न दे और उसकी हानि का कारण भी न बताये, उस अवस्था में रेलवे की असावधानी का प्रमाण स्वतः सिद्ध है।' इन बातों पर विचार करने से सिद्ध होता है कि हानि का कारण प्रत्यक्ष करने के लिये रेलवे बाध्य है। परन्तु आश्चर्य तो यह है कि माल-स्वामी को वह बात प्रमाणित करने के लिये बाध्य किया जाता है जो प्रमाणित करना उसके लिये असम्भव है! यह सरासर अन्याय है। इस सम्बन्ध में हाई कोर्टों के निर्णय परस्पर में विरोधात्मक हैं। कुछ निर्णय ये हैं कि 'बी-फार्म द्वारा भेजे हुए माल की हानि के सम्बन्ध में यदि माल-स्वामी रेलवालों की असावधानी आदि प्रमाणित न कर सके तो, रेलवे उस हानि के लिये अनुत्तरदायी है‡।' कुछ निर्णय ऐसे भी हैं कि 'यदि रेलवे हानि का कारण प्रत्यक्ष न

* Risk Note Com. Report, p. 4.

† When any fact is especially within the knowledge of any person, the burden of proving that fact is npon him—Evidence Act, 1872, Sec. 106.

अर्थात् जो व्यक्ति जिस बात से विशेषतः परिचित है, उस बात को प्रमाणित करने का भार उसी व्यक्ति पर है।

‡ C. W. N., 16, p. 766 (Sheobarut Vs. B. N. W. Ry.) Bom. L. R., 21, p. 779 (B. B. C. I. Ry. Vs. Ranchhod) C. W. N., 22, p. 622 (E. I. Ry. Vs. Kank Behari); I. L. R. Mad. 39. (S. I. Ry. Vs. Nathmal);

I. L. R. All. 39, p. 418 (E. I. Ry. Vs. Nathmal); I. L. R. Cal. 41, p. 576 (E. I. Ry. Vs. Nilkanth).

करे और न यह प्रमाण ही दे कि 'हानि उसकी असावधानी के कारण नहीं हुई है' उस अवस्था में हानि की पूर्त्ति के लिये रेलवे बाध्य है† ।'

(ख) यदि माल-स्वामी येन केन प्रकारेण यह प्रमाणित भी करदे कि हानि का कारण रेलवालों की असावधानी आदि है, तथापि बी-फार्म के शब्दों का विचित्र अर्थ बना कर रेलवे अनुत्तरदायी बन जाती है। एक उदाहरण देखिये। एक बार रेलवालों ने चावलों के कुछ बोरों पर 'एसीड' रख दिया था जिससे एक अंश में चावल जल गये। यद्यपि इस हानि का कारण रेलवे की असावधानी थी, तथापि रेलवे का यह तर्क था कि "बी-फार्म में जो 'नष्ट-भ्रष्ट' (Loss, destruction, damage, deterioration) शब्द है, उनके अन्तर्गत यह हानि नहीं है। जब तक चावल, चावलों के रूप में हैं—उन्हें चावलों के रूप में पहिचाना जा सकता है—तब तक नष्ट भ्रष्ट हुए नहीं समझे जा सकते !" मद्रास हाईकोर्ट के भूतपूर्व न्यायाधीश शेषगिरि ऐयर के शब्दों में 'दुःख है कि हाईकोर्ट ने भी इस तर्क का समर्थन किया*।' (ग) बहुधा रेलवे संख्या में बोरों की कमी या सारे बोरों की कमी का कारण चलती गाड़ी-का-डाका या अग्नि बतादेती है और बी-फार्म के कारण उत्तरदायित्व से

† Bom. L. R., 24, (Central Weaving Co. Vs. G. I. P.);
All. 22, p. 361 (Nankuram Vs. I. M. Ry.);
Bom. 3, p. 109, 120 (Isardas Vs. G. I. P. Ry);
Bom. 23, p. 525 (Ghelabhai Vs. E. I Ry);
Cal. 47, p. 1027.

* Assembly Debates, Dt. 9. 3. 22 p. 2955.

मुक्त हो जाती है। डाके का प्रमाण रेलवे यह देती है कि 'पहले स्टेशन पर 'गार्ड' ने डिब्बों या डिब्बे को ठीक देखा पर दूसरे स्टेशन पर डिब्बों या डिब्बे में से माल निकला हुआ देखा।' डिब्बों के ताले नहीं लगाये जाते। तालों के स्थानों में कागजों का उपयोग किया जाता है; अथवा एक पतली डोरी के दोनों नाकों को मिला कर चपड़ी-मोहर लगा दी जाती है। तालों के होने से डाका एकाएक नहीं हो सकता। डाका प्रमाणित करने के लिये यह सिद्ध करना आवश्यक है कि डाकुओं ने गार्ड आदि के साथ बलप्रयोग किया, उन्हें पीड़ा पहुंचाई अथवा पहुँचाने की चेष्टा की, इत्यादि (पिनलकोड धारा ३६०)। रेलवे इस प्रकार का कोई प्रमाण नहीं देती*। अनुमान और कल्पना के आधार पर ही रेलवे को उत्तरदायित्व से मुक्त कर दिया जाता है! स्टेशनों पर जो चोरी हो जाती है उसे भी प्रायः चलती-गाड़ी-का-डाका बता दिया जाता है! यदि स्वतः-प्रवर्तित-दाह (Spontaneous Combustion) के कारण या इंजिन के अग्निकण से अग्नि प्रज्वलित होकर माल को नष्ट करदे, उस अवस्था में रेलवे का अनुत्तरदायी होना उचित है, पर जब रेल वालों की असावधानी के कारण, जैसे असावधानी से तम्बाकू पीने से अथवा एक्सिल्स axles के गरम होने से, लालटैन आदि को सुरक्षित न रखने से, या ऐसे ही अन्य कारणों से यदि माल जल जाय, तब भी रेलवे क्षतिपूर्ति नहीं करती! यह अन्याय है।

माल जिस मार्ग से भेजा जाता है, यदि रेलवे उस मार्ग से न लेजाकर दूसरे मार्ग से ही ले जाय और ऐसा करने से यदि माल नष्ट--भ्रष्ट होजाय तब भी रेलवे बी-फार्म की दुहाई देकर

* Risk Note Com. Report, para 15.

उत्तरदायित्व से बच जाती है! इस विषय में भी हाईकोर्टों के विचार परस्पर में विरोधात्मक हैं। कई निर्णय रेलवे के पक्ष में हैं*। पर पिछले दिनों एक निर्णय यह हो चुका है कि 'यदि माल को अन्य मार्ग से भेजने से हानि हो तो बी-फार्म की शरण में रक्षा नहीं होसकती†। निष्कर्ष यह है कि बी-फार्म के कारण माल प्रायः नष्टभ्रष्ट हो जाता है, और एक न एक मार्ग से रेलवे बहुधा बच जाती है। यहां तक देखा जाता है कि रिस्कनोटों द्वारा भेजे हुए माल के कागजों Records तक का पता नहीं रहता‡। रेलवे जानती है कि माल को किसी भी प्रकार हानि क्यों न हो, रिस्कनोट उसकी अवश्य रक्षा करेगा। फिर कागजों को क्यों सुरक्षित रक्खा जाय?

अब प्रश्न यह है कि बी-फार्म के कारण हानि और असुविधा है तो क्यों नहीं रेलवे-रिस्क से (बिना रिस्क-नोट के, अर्थात् रेलवे के उत्तरदायित्व पर) माल भेजा जाता? रिस्क-नोट-बी द्वारा माल भेजने का कारण है। वह यह कि रेलवे-रिस्क और ओनर-रिस्क (माल के रिस्कनोट द्वारा भेजने को ओनर-रिस्क—माल-स्वामी का उत्तरदायित्व—कहते हैं) के भाड़ों में इतना अधिक अन्तर है कि विवश होकर ओनर रिस्क से माल भेजना पड़ता है$। इंगलैंड की १९२० वाली एडवीजरी-कमेटी का कहना है कि 'ओनर-रिस्क से रेलवे-

---

* I. L. R. Mad., 33, p. 120 (Arunchela Vs. M. Ry.)
A. L. J., 14, p. 396 (Junilal Vs. B. B. and C. I. R.]

† Bom. L. R., 24, p. 316. (Vall Vs. G. I. P. Ry).

‡ Risk Note Com. Report., page 17.

$ Risk Note Com. Report, para 15 (*i*).

रिस्क का भाड़ा उतना ही अधिक होना चाहिये जितना अधिक रेलवे--रिस्क के कारण रेलवे का उत्तरदायित्व है। इंगलैंड के रेलवे कानून में ऐसाही नियम है (English Ry. Act 1921, Section 46–3)। लंडन के व्यापार-विभाग (Board of Trade) की डिपार्टमेंटल-कमेटी ने अपनी १६११ की रिपोर्ट में लिखा है कि "रेलवे-रिस्क का भाड़ा आनर-रिस्क से थोड़ा ही अधिक होना चाहिये, जिससे व्यापारी आनर--रिस्क से माल भेजने को विवश न हों। आनर--रिस्क से रेलवे-रिस्क के लिये १०–२० प्रति सैकड़ा भी अधिक लेना अनुचित है*।" परन्तु १६२१ के अप्रैल में यहां की रेलवे-ट्रैफिक-कमेटी ने स्वीकार किया है कि 'यहां आनर-रिस्क और रेलवे-रिस्क के भाड़ों में बहुत अन्तर है।' इंगलैंड में १०–२० प्रति सैकड़ा ही अनुचित समझा जाता है, पर यहां १००–१२५ प्रति सैकड़ा तक अन्तर है! उदाहरणार्थ घी का भाड़ा आनर-रिस्क से रेलवे-रिस्क का दूना है!

इन बातों से स्पष्ट है कि यद्यपि रेलवे-रिस्क से माल भेजा जा सकता है, पर रेलवे-रिस्क का भाड़ा इतना अधिक है कि रेलवे-रिस्क से माल भेजने से व्यापारियों को लाभ नहीं हो सकता। एक रेलवे-विशेषज्ञ का कहना है कि 'एक प्रकार से यह सत्य है कि रिस्क-नोट पर माल-स्वामी से बलात् हस्ताक्षर नहीं कराये जाते, पर व्यावहारिक दृष्टि से निस्सन्देह बलात्कार होता है†।' यदि रेलवे का अभीष्ट व्यापारियों को

---

* Monograph, p. 573–74.

† "World Carriers," Feby–March 1907; Quoted in Thomas Woghorn: "Traders and Railways" p. 25.

आनर-रिस्क से माल भेजने के लिये विवश करना न होता तो दोनों भाड़ों में इतना अधिक अन्तर न होता। गतवर्षों में और भी अधिक अन्तर हो गया है। उदाहरणार्थ देशी कपड़े के दोनों भाड़ों में केवल ३२ प्रति सैकड़ा ही अन्तर था, पर अप्रैल १६२२ से ५५ प्रति सैकड़ा अन्तर होगया है! कई वस्तुओं के लिये तो रेलवे-रिस्क का भाड़ा है ही नहीं, अतएव अनिवार्यतः आनर-रिस्क से भेजना पड़ता है। बी० एन० रेलवे की भाड़े की किताब के पृष्ठ ६६ में गोंडिया से नागपुर तक चावलों का भाड़ा २ आने ११ पाई आनर-रिस्क के लिये लिखा हुआ है। सरकार ने इतनी दूरी के लिये चावलों का जो 'अधिक-से-अधिक' भाड़ा निश्चित किया है वह २ आना ११ पाई है। जब आनर-रिस्क के लिये सर्वोच्च भाड़ा है, तब रेलवे-रिस्क के लिये क्या हो सकता है? जी० आई० पी० रेलवे की भाड़े की किताब (Goods Tariff No. 2, in force from Oct. 1916, p. 32) में भी झांसी से बम्बई तक चावलों का आनर-रिस्क का भाड़ा ६ आना ४ पाई है। इसके अतिरिक्त और कोई भाड़ा नहीं है*। ऐसे और भी कई उदाहरण हैं।

यहां की रेलों के ४५ वर्ष के अनुभवी मि० बागले F. *R.* Bagley का कहना है कि "आनर-रिस्क की प्रथा बहुत बुरी है। यह माल की चोरी होने में उत्तेजना देती है। इसी के कारण स्टेशनें चोरों के अड्डे बनगए हैं। यह कहना कि आनर-रिस्क से माल भेजना मालस्वामी की इच्छा पर निर्भर है, सर्वथा असत्य और भ्रममूलक है‡।" इन्हीं महाशय ने

* Monograph, 576–77

‡ Acworth Com. Report, Vol. IV, p. 47.

अन्यत्र कहा है कि 'रेलवे को हानि के लिये उत्तरदायी करने से रेलवे वालों द्वारा जो चोरियां होती हैं, वे बिलकुल रुक आयंगी† ।' रेलवे-पोलिस-कमेटी का कहना है कि 'माल की अधिकतर चोरी रेलवे वाले करते हैं। इस सत्य के समर्थन के लिये हमारे पास यथेष्ट प्रमाण है* ।' कमेटी ने यह भी लिखा है कि 'रेलवालों द्वारा चोरी होने का एक मात्र कारण ए और बी फार्म हैं।' निस्सन्देह रिस्क-नोट ए और बी रेलवे वालों को चोरी करने के लिये उत्तेजना देते हैं‡ । अथवा यों कह सकते हैं कि रेलवे-कर्मचारियों का चरित्र-भ्रष्ट करने में रिस्क-नोट बहुत सहायता पहुंचाते हैं ।

रिस्क-नोटों की भयंकरता दूर करने के लिये १९२२ में एक कमेटी नियुक्त हुई थी। इस रिस्क-नोट-कमेटी का अनुरोध है कि 'ए-फार्म में यह शर्त होनी चाहिये कि यदि माल-स्वामी यह प्रमाणित करदे कि रेलवालों के दुराचरण (असावधानी नहीं, दुराचरण Misconduct—इसकी व्याख्या आगे की गई है) से हानि हुई है, तो उस हानि के लिये रेलवे उत्तरदायी होगी।' इस प्रस्तावित परिवर्तन का कोई मूल्य नहीं है। ए-फार्म का जिस प्रकार दुरुपयोग होता है, उससे प्रत्यक्ष है कि भलीभांति 'पैक' माल के लिये भी ए-फार्म लेकर रेलवाले चोरी करने से वञ्चित न रहेंगे। 'चोरी रेलवालों द्वारा हुई है' यह प्रमाण देना माल-स्वामी के लिये असम्भव है। कमेटी द्वारा प्रस्तावित बी फार्म इस प्रकार है:-"......माल के नष्ट-भ्रष्ट

† *R*isk Note Com. *R*eport, para 63

* Ry. Police Com. Report, para 22; Evidence Vol. p. 204–208,

‡ Risk Note Com. *R*eport, para 15 (iii).

होने के लिये रेलवे उत्तरदायी न होगी। नष्ट-भ्रष्टता का कारण रेल वालों का दुराचरण होगा तो रेलवे अवश्य उत्तरदायी होगी। यदि आकस्मिक दैवी-घटना या अग्नि, संख्या में बोरों को कमी हो जाने (सो भी केवल कमी, न कि माल का दूषित—खराब—हो जाना) का कारण न होगा तो उस अवस्था में, और अच्छी तरह से पैक बोरों में से माल निकल जाने से, रेलवे को यह प्रत्यक्ष करना पड़ेगा कि उसने माल का कैसे व्यवहार किया। माल की कमी का सबब बताने में रेलवे की असमर्थता के कारण प्रकट हुई वस्तु-स्थिति से यदि रेलवे वालों का दुराचरण भली भांति अनुमानगम्य न होगा तो, उस अवस्था में मालस्वामी को रेलवालों का दुराचरण सिद्ध करना होगा।" इस परिवर्तन के समर्थन में कमेटी का कहना है कि 'जब रेलवे संख्या की कमी के लिये उत्तरदायी है तब अच्छी तरह पैक बोरों में से माल निकल जाने पर रेलवे को क्यों नहीं उत्तरदायी होना चाहिये? रेलवालों द्वारा जो माल बोरों से निकाल लिया जाता है, उसके लिये रेलवे का अनुत्तरदायी होना लोकनीति Public Policy के विरुद्ध है।' प्रमाण-भार के सम्बन्ध में कमेटी का कहना है कि 'प्रचलित बी-फार्म के कारण रेलवे यह प्रत्यक्ष नहीं करती कि उसने मार्ग में माल का किस तरह व्यवहार किया, किन्तु हमारे प्रस्तावित फार्म के अनुसार रेलवे को यह प्रकट करना पड़ेगा कि उसने माल का किस तरह व्यवहार किया—the railway to lead evidence to show how the consignment was dealt with throughout the time it was in its possession. यदि रेलवे माल की कमी का कारण बताने में असमर्थ रहेगी, और उस असमर्थता के कारण प्रकट हुई वस्तुस्थिति द्वारा यदि

रेलवे वालों का दुराचरण भलीभांति अनुमानगम्य हो सकेगा तो रेलवे उस कमी के लिये उत्तरदायी होगी। यदि रेलवे द्वारा प्रकट हुई बातों से रेलवे वालों का दुराचरण प्रतीत न होगा तो माल-स्वामी को रेल-कर्मचारियों का दुराचरण प्रमाणित करना पड़ेगा।'

कमेटी द्वारा प्रस्तावित परिवर्तन से प्रमाण-भार की समस्या अधिक जटिल हो गई है। रिस्क-नोट के कारण रेलवे को केवल इतनी सहूलियत होना ही पर्याप्त है कि माल के दूषित होने की अवस्था में, उसके ऐसा होने का कारण कर्मचारियों की असावधानी प्रमाणित करने का भार माल-स्वामी पर रहे। माल की कमी होने पर तो प्रमाण भार रेलवे परही रहना आवश्यक है। कमेटी ने 'जानबूझकर-असावधानी' (Wilful neglect के स्थान में 'दुराचरण' (Misconduct) शब्द करदिया है। इस परिवर्तन के समर्थन में कहा जाता है कि "जानबूझकर-असावधानी—अभिप्रेत निरपेक्षता—और दुराचरण में भेद नहीं है, दोनों का एक अर्थ है। किन्तु 'जान-बूझकर-असावधानी' शब्द का अर्थ अनिश्चित है।" यदि 'जान-बूझकर-असावधानी' शब्द में पारिभाषिक दोष (अनिश्चितता) Terminological inexectitude मान लें, तब भी 'दुराचरण' शब्द 'जानबूझकर-असावधानी' शब्द का समानार्थी—पर्यायवाची—नहीं है। 'जानबूझकर' विशेषण के कारण 'असावधानी' शब्द का अर्थ गौरव न्यूनाधिक नहीं है। इंगलैंड में एक रेलवे सम्बन्धी अभियोग में यह निर्णय हो चुका है कि 'इस विशेषण की कुछ विशेषता नहीं है*'। असावधानी और जानबूझकर

* Sheppard and Co. Vs. Midland Railway (114 Times Law Report 515),-Justice Lust.

असावधानी में कुछ अन्तर नहीं। अतएव असावधानी (neglect) और दुराचरण (Misconduct) के भावों का संतुलन करने से इन दोनों का अन्तर प्रत्यक्ष प्रतीत होती है। लार्ड हल्सबरी ने अपनी सुविख्यात पुस्तक में लिखा है कि 'जानबूझकर असावधानी से भी बढ़कर जो निन्दनीय असावधानी Culpable negligence है, वह भी दुराचरण नहीं हो सकता'—Misconduct is not necessarily established by proving even culpable negligence—Lord Hulsbury's Laws of England, Vol. IV, p. 34। अतएव स्पष्ट है कि दुराचरण शब्द का प्रयोग सर्वथा अनुचित है। क्योंकि असावधानी प्रमाणित करना उतना कठिन नहीं जितना कि दुराचरण। सारांश यह है कि कमेटी द्वारा प्रस्तावित परिवर्तन के कारण वर्तमान कठिनाइयां दूर न होंगी। आनर-रिस्क और रेलवे-रिस्क के भाड़ों में जो अत्यधिक अन्तर है उसके सम्बन्ध में कमेटी को अवश्य विचार और निर्णय करना चाहिये था, किन्तु कमेटी के ऐसा नहीं करने से उसके प्रस्ताव का क्या मूल्य हो सकता है?

माल पहुंचने में विलम्ब।

यहां की रेलों द्वारा माल कितने दिनों में यथास्थान पहुंचेगा, यह कोई निश्चित नहीं है। प्रायः माल बहुत दिनों में पहुंचता है। कभी कभी दिनों के स्थान में महीनों लग जाते हैं। इससे सर्व साधारण को, विशेषतः व्यापारियों को अकथनीय हानि और असुविधा है। यूरुप आदि की रेलें एक निश्चित समय में बहुत शीघ्र माल पहुंचा देती हैं। वहाँ यदि निश्चित समय में माल नहीं पहुँचता है तो विलम्ब के कारण जो आर्थिक हानि होती है, उसे पूरा करने

को रेलवे बाध्य है। यद्यपि यहाँ की रेलों का उत्तरदायित्व भी 'उचित समय में' माल पहुंचाने का है (रेलवे एक्, धारा ७२; कौन्ट्रैक्ट एक्, धारा १६१), परन्तु उचित शब्द की कोई परिभाषा नहीं की गई। यदि महीनों में माल पहुँचता है, तब भी वह उचित समय में पहुँचा समझा जाता है! अन्य देशों में माल के स्टेशन पर पहुँचने के दिन से उसके लिये रेलवे उत्तरदायी है, और उसी दिन से एक निश्चित समय में उसे यथास्थान पहुँचाने को बाध्य है*। यहाँ तो जब तक डिब्बे स्टेशन पर नहीं पहुँचते, तब तक माल माल-स्वामी की जिम्मेदारी पर स्टेशन पर खराब होता है। डिब्बों के देरी से मिलने का कारण डिब्बों की कमी नहीं है$। जब तक कर्मचारियों को घूस का कुछ न कुछ नहीं दिया जाता तब तक डिब्बों का मिलना बहुत कठिन है†। हाँ, गोरों के लिये न डिब्बों की कमी, न घूस और न विलम्ब‡।

क्षति पूर्त्ति।

क्षतिपूर्ति के सम्बन्ध में महीनों तक रेलवे उत्तर नहीं देती, और जब उत्तर मिलता है तब बारबार यही होता है कि 'विषय विचाराधीन' है। यूरोपीय रेलें ४-५ घंटे में संतोषप्रद उत्तर दे देती हैं। अधिक से अधिक विलम्ब होता है तो २४ घंटे में उत्तर मिलता है। यहाँ की रेलें कई महीनों पीछे (अनेक बार वर्षों तक नौबत पहुंच जाती है) क्षति-

* Acworth; State Ownership, p. 55.

$ Acworth Com. *Report*, Vol. III, para 6131.

† Acworth Com. *Report*, Vol. III, para 5091, 6235.

‡ Ghose: *Ry*. Economics, Vol. III, p. 44, 47.
Acworth Com. *Report*, Vol. III, para 4917.

पूर्ण करना स्वीकार अथवा अस्वीकार करती हैं। कभी स्वीकार कर लेती हैं तो क्षतिपूर्ति में महीनों लगा देती हैं! जिस हानि के विषय में कोई विवाद नहीं, उसका मिथ्यापवाद कर उससे अनुत्तरदायी होने की रेलवे सदैव भरसक चेष्टा करती है। आकवर्थ कमेटी का कहना है कि "रेलवे क्षतिपूर्ति के सम्बन्ध में निर्णय करने में निस्सन्देह अनुचित विलम्ब करती है। जिस हानि के सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं, उसकी पूर्ति न करना अन्याय है। यह सत्य है कि यदि मालस्वामी कोर्ट की शरण ले तो यद्यपि क्षतिपूर्ण होने की सम्भावना है पर Business can not be conducted by Law suits अर्थात् व्यवसाय मुकद्मों द्वारा नहीं चल सकता। व्यावहारिक दृष्टि से अदालत में जाना उपयोगी और उचित नहीं है*।" गोरों के लिये इस सम्बन्ध में भी कोई असुविधा नहीं। जिन गोरों ने रेलवे-पोलोस-कमेटी के सम्मुख साक्षी दी थी उन्होंने इस विषय में संतोष प्रकट किया था‡। पर भारतवासियों ने तो एक स्वर से कहा था कि 'क्षतिपूर्ति के सम्बन्ध में रेलवे अत्यन्त अन्याय कर रही है'।

यदि अदालत की भी शरण ली जाय तो अनेक नियमोपनियमों की जटिलता के कारण सर्व साधारण की विजय प्रायः दुस्साध्य हो जाती है। गुजरात-रेलवे की संचालक किलिक कम्पनी (Messrs Killick Nixon and Co.) का कहना है कि 'लोगों की रेलवे सम्बन्धी नियमों की अनभिज्ञता का रेल-

* Acworth Com. Report, Vol. I, para 163.

‡ Ry. Police Com. Report, Evidence Vol., p. 292–99.

वाले अनुचित लाभ उठाते हैं* ।' एक नियम यह है कि जिस दिन माल रेलवे को सौंपा है, उससे ६ मास के अन्दर रेलवे को क्षतिपूर्ति के लिये न लिखने से, रेलवे का कोई उत्तरदायित्व नहीं रहता (रेलवे एक्ट, धारा ७७) । क्षतिपूर्ति के लिये रेलवे-मैनेजर या एजेंट को लिखना चाहिये (रेलवे एक्ट, धारा १४०), डी० टी० एस० आदि अन्य प्रबन्धकों को लिखना निरर्थक है‡ ।'

जब कोई माल कई रेलों द्वारा वाहन होता है, उस अवस्था में जिस रेलवे पर हानि हुई है वह, अथवा जिस रेलवे को माल सौंपा गया था वह, क्षतिपूर्ति के लिये उत्तरदायी है (रेलवे एक्ट, धारा ८०) । उदाहरणार्थ यदि माल 'अ' स्थान से एन० डब्लू० द्वारा भेजा गया है और 'ब' स्थान को एन० डब्लू० के अतिरिक्त क्रमशः जी० आई० पी० और बी० एन० द्वारा पहुंचा है तो माल के नष्ट-भ्रष्ट होने पर उसको क्षतिपूर्ति के लिये एन० डब्लू० उत्तरदायी है (हानि एन० डब्लू० पर हो चाहे न हो) । जी० आई० पी० या बी० एन० उस अवस्था में ही उत्तरदायी हैं जब कि क्षति उनपर हुई है । मालस्वामी के लिये यह जानना कि हानि किस रेलवे पर हुई, बहुत कठिन है । जिस पर हानि हुई है उसे अथवा जिसे माल सौंपा गया था उसे, पत्र न देने से रेलवे हानि के लिये बाध्य नहीं है (I. L. R. Bom., 46, p. 176– Shanker Vs. S. I. Ry) । जिस रेलवे को माल दिया गया है उस रेलवे पर हानि न होने पर भी जब वह हानि के लिये उत्तर-

* Risk Note Com. Report, p. 45.

‡ C. W. N., 16, p. 356 (Jankidas Vs. B. N. Ry.); I. L. R. All., 33, p. 544 (G. I. P. Ry. Vs. Ganpat); Indian Cases, 21, p. 970 (Radhakishan Vs. E. I. Ry.)

दायी है, तब जिस रेलवे द्वारा माल पहुंचता है, उसका उक्त रेलवे (जिसे माल सौंपा जाता है) के समान उत्तरदायी न होना अनुचित नियम नहीं तो क्या है ? हां, जिस रेलवे पर हानि नहीं हुई है यदि वह उत्तरदायित्व स्वीकार करे तो उसे क्षति पूर्ति करनी पड़ती है (I. L. R. All., 44, p. 763--Gangaje Co. Vs. E. I. Ry). अथवा यदि अन्तिम रेलवे (जैसे उपर्युक्त उदाहरण में बी०एन० रेलवे) माल--स्वामी को माल न दे कर और ही किसी को माल दे दे तो यह हानि अन्तिम रेलवे पर हुई समझी जाती है (I. L. R. Lahore, 2, p. 133—Hill Vs. Secratary of State)। केवल इतना ही संतोषप्रद नहीं हो सकता। अन्तिम रेलवे का प्रथम रेलवे के समान उत्तरदायी होना परमावश्यक है।

हानि होने के समय से, अथवा माल के सर्वथा न पहुँचने पर जब माल पहुंचना चाहिये था उस समय से, एक वर्ष के अन्दर* रेलवे पर नालिश न करने से रेलवे का उत्तरदायित्व नहीं रहता (Limitation Act, Articles 30 and 31)। हानि कब हुई, यह जानना मालस्वामी के लिये असम्भव है। माल कब पहुंचना चाहिये, इसका कोई निश्चित समय नहीं है। महीनों में जो माल पहुँचता है, वह भी यथासमय समझा जाता है। प्रायः रेलवे १०-१५ महीनों तक क्षतिपूर्ति का विश्वास देती रहती है।

* यदि रेलवे भाड़ा अधिक लेले तो उसे वापस लेने के लिये तीन वर्ष की अवधि है (Limitation Act, Article 62) इसके अतिरिक्त वस्तुस्थिति के अनुसार उक्त एक्ट के ११५ वें आर्टिकिल के अनुसार हानि के लिये भी तीन वर्ष की अवधि है (Calcutta Law Reporter, 44, p. 16; C.W. N. 20, p. 790).

कई बार एक वर्ष की अवधि होने पर भी रेलवे क्षतिपूर्ति कर देती है, इसलिये जब तक रेलवे अस्वीकार नहीं करती तब तक सर्वथा संशयात्मक, अत्यन्त कष्टावह, अत्यधिक व्यय-साध्य और नितान्त अविश्वासनीय व्रिटिश न्याय (वर्तमान अदालतों) की शरण लेना समुचित नहीं समझा जा सकता। जब १०–१५ महीनों पीछे रेलवे क्षतिपूर्ति नहीं करती, तब अवधि समाप्त हो जाती है! सरकार-संचालित रेलों पर नालिश करने के पहले मजिस्ट्रेट को सूचना देना आवश्यक है (Civil Procedure Code, Section 80)। इन सारी बातों का विचार करने से एक वर्ष की अवधि बहुत कम है और इस अल्पावधि के कारण बहुधा अवधि का उल्लङ्घन हो जाता है!

नष्ट--भ्रष्टता का बोध होने के पहले माल-स्वामी को बिल्टी पर हस्ताक्षर करने पड़ते हैं। हस्ताक्षर करने के पीछे माल की नष्ट-भ्रष्टता का ज्ञान होने से क्या हो सकता है? हस्ताक्षर करने का ही यह अर्थ है कि माल के सम्बन्ध में हस्ताक्षर करने वाले को कोई शिकायत नहीं है। रेलवे-पोलीस--कमेटी ने स्वीकार किया है कि माल-स्वामी को माल के सम्बन्ध में संतोष कराने के पहले ही हस्ताक्षर करने के लिये उसे विवश किया जाता है। कमेटी के सम्मुख अनेक प्रतिष्ठित साक्षियों ने इस बात पर दुःख प्रकट किया था*। रेलवे माल को तोलकर देने से बहुधा इनकार कर देती है। हां, यदि रेलवे के इनकार करने पर मालस्वामी माल की डिलेवरी न ले तो उस माल की

* Ry. Police Com. Report, Abstract of Evidence, p. 285–289.

जो क्षति होती है उसके लिये रेलवे उत्तरदायी है सही*, परन्तु माल न लेने से, व्यापारिक दृष्टि से बहुत हानि होती है। अतएव माल के न तोलने पर भी विवश हो माल लेना ही पड़ता है। यद्यपि यह निर्णय हो चुका है कि बिल्टी पर हस्ताक्षर करने के पश्चात् माल को अपने घर पर लाने के पीछे भी यदि माल की नष्ट-भ्रष्टता प्रमाणित कर दी जाय तो रेलवे क्षतिपूर्ति के लिये बाध्य है†; परन्तु इस प्रकार का प्रमाण पहुंचाना लोहे के चने चबाना है।

रेलवे एक्ट धारा ७५ के अनुसार सोना चांदी आदि के लिये भाड़े के अतिरिक्त रेलवे बीमा का मूल्य भी लेती है। बीमा न होने पर इन वस्तुओं की क्षति के लिये रेलवे उत्तरदायी नहीं है। जैसे यदि चांदी की पांच ईंटें भेजी गईं और उनमें से सारी अथवा एक दो गुम होगईं तो रेलवे तभी उत्तरदायी है जब कि उन ईंटों का बीमा हुआ, अन्यथा नहीं‡। इस विषय में एक महत्त्वपूर्ण निर्णय यह है कि "यदि माल-स्वामी यह कहता है कि 'मैं अमुक वस्तु भेजता हूं' और उस वस्तु का यदि बीमा होना आवश्यक है, तो रेलवे-कर्मचारियों को भाड़े के साथ ही बीमा जोड़ देना चाहिये। यदि वे ऐसा न करें तो क्षिति के लिये रेलवे उत्तरदायी है। बिल्टी पर यह लिखा रहना कि 'बीमा की वस्तुओं का बीमा माल-स्वामी को देना

* A. L. J., 13, p. 417. (R. K. Ry. Vs. Ismail).
Bom. L.R., 38, p. 659 (Dolatram Vs. B. B. C. I. Ry.)

† Cal. Law Rep., 39, p. 311 (E. I. Ry. Vs. Sispal).

‡ All. Law Rep., 34.p.422,656 (Shyam Vs.G.I.P.Ry., Narayan Vs.E.I. Ry.); 37.p.463(E.I.Vs. N. Ray).

चाहिये, रेलवाले मांगने को बाध्य नहीं हैं' कोई मूल्य नहीं। क्योंकि यह शर्त रेलवे एक्ट की धारा ७५ के विरुद्ध है। माल-स्वामी के यह कहने पर कि 'यह चांदी सोना है' फिरभी यदि रेलवे बीमा न ले तो मालस्वामी का क्या दोष ? (A. L. J., 7, p. 606—R. K. Ry. Vs. Jagan)। ऐसी और भी कई कठिनाइयां क्षतिपूर्ति के मार्ग में पड़ी हुई हैं।

प्रतिद्वन्दता।

एक देश के भिन्न भिन्न रेलपथों में पारस्परिक प्रतिद्वन्दता होना स्वाभाविक है और देश हित की दृष्टि से इस प्रतिद्वन्दता की रक्षा करना आवश्यक है*। इस प्रतिद्वन्दता के कारण भाड़ा कम रहता है और अन्य अनेक सुख-सुविधाएं सर्व साधारण को सुलभ होजाती हैं। जैसे इंगलैंड में प्रतिद्वन्दता के कारण एक यात्री के लिये जितने स्थान की आवश्यकता है, उसके कहीं अधिक स्थान उसे मिलता है‡। पर यहाँ की प्रतिस्पर्धी रेलें परस्पर संधि करलेती हैं—प्रतिस्पर्धीमार्गों का एक समान भाड़ा लेना स्थिर करलेती हैं अथवा स्टेशनों को विभक्त करलेती हैं। जैसे सहारनपुर से मुगलसराय के दो मार्ग हैं। एक ओ०आर० रेलवे का जो ५१९ मील और दूसरा ई०आई०का जो ५७१ मील। कुछ समय तक दोनों में प्रतिद्वन्दता हुई, पर अन्त में दोनों ने समान भाड़ा लेना निश्चय कर लिया! चंदोसी से कलकत्ते के दो मार्ग हैं। ओ० आर० का ८५६ मील और ई० आई० का ९३७ मील पर दोनों में यह संधि हो गई कि चंदोसी से माल केवल ओ० आर० ही लेजाय। इस प्रकार अगणित संधि और समझौते

* U. S. America's Interstate Commerce Com's Decision I, 319; 2, 52; 4, 131. Ry. Report (1898), p. 20;
‡ Select Cam. (1884) Report, para 5757.

होने से प्रतिद्वन्द्वता के कारण जो लाभ होना अनिवार्य था वह न होसका, उलटा इन संधियों आदि का बहुत बुरा परिणाम हुआ है। उदाहरणार्थ १८६८ में दिल्ली आदि से बम्बई के लिये दो मार्ग होजाने से प्रतिस्पर्धी रेलों में यह निश्चित हो गया कि दिल्ली हाथरस आदिसे जो माल बम्बई जाय वह बी०बी०सी० आई० द्वारा और देहली-अम्बाला-कालका रेलवे की स्टेशनों से जो माल बम्बई जाय वह जी० आई० पी० द्वारा। यद्यपि देहली-अम्बाला-कालका रेलवे की स्टेशनों से बम्बई के लिये बी०बी०सी०आई० का मार्ग समीपवर्ती और सस्ता है, तथापि संधि के कारण इस मार्ग द्वारा माल नहीं जासकता। इंगलैंड और अमेरिका आदि में ऐसी घातक संधियां नहीं हो सकतीं*।

"यहाँ की रेलों में जो पारस्परिक स्पर्धा है, वह केवल "ब्लाक-रेट" Block Rate के बीभत्स रूप में विद्यमान है। प्रतिद्वन्द्वता के कारण विदेशों में कम भाड़ा लिया जाता है, यहाँ 'ब्लाकरेट' के रूप में अधिक! जिस रेलवे से माल का वाहन आरम्भ होता है वह रेलवे उस माल को अपनी सीमा (जंकशन‡) के बाहर न जाने देने के

---

* Monograph, p. 87; Meyer; Ry. Legislation.

‡ जहाँ दो भिन्न भिन्न रेलें मिलती हैं, उस स्थान को 'जंकशन' कहते हैं। जैसे नागपुर जंकशन। यहाँ बी० एन० और जी० आई० पी० की सीमा है और दोनों रेलें यहाँ मिलती हैं। जब किसी स्टेशन से एकही रेलवे के एक से अधिक रेलपथ भिन्नभिन्न स्थानों को जाते हैं, तब उस स्टेशन को भी जंकशन कहते हैं। जैसे लाहौर, यहां से एन० डब्लू० रेलवे की कई शाखाएँ भिन्न भिन्न स्थानों को गई हैं।

उद्देश से अधिक से अधिक भाड़ा लेती है। अथवा जो माल थोड़ी दूर उस रेलवे पर जाकर शेष मार्ग के लिये दूसरी रेलवे की शरण लेता है, उस माल के लिये भी वह रेलवे अधिक-से-अधिक भाड़ा लेती है। इस अधिक-से-अधिक भाड़े कोही ब्लाक-रेट कहते हैं। एक-दो उदाहरणों द्वारा यह बात सहज में बोधगम्य हो जायगी। बी० एन० रेलवे का भंडारा(Bhandara) स्टेशन नागपुर से पूर्व में ३९ मील है। बी० एन० रेलवे ७५ मील तक ३ पाई प्रतिमन प्रतिमील और ३०० मील के लिये १ पाई प्रतिमन प्रति तीन मील लेती है। और ८ पाई प्रतिमन 'टर्मिनल'*। भण्डारा से बम्बई जाने वाले अन्न के लिये बी० एन० भण्डारा से नागपुर तक (अर्थात् अपने जंकशन तक) ३९ मील का भाड़ा उक्त हिसाब से १० आने ५ पाई (३ पाई प्रतिमील के हिसाब से ३९ मील का ९ आने ९ पाई और ८ पाई टर्मिनल। अन्न के लिये टर्मिनल नहीं है पर बम्बई जाने वाले माल के लिये बी० एन० लेती है) प्रतिमन लेती है। किन्तु नागपुर से कलकत्ते जाने वाले अन्न के लिये, नागपुर से भण्डारा तक उसी ३९ मील का भाड़ा केवल ६॥ पाई प्रतिमन! और नागपुर से कलकत्ते तक ७०२ मील का १० आने प्रतिमन!! अर्थात् बी० एन०, या यों कहिये कि वही रेलवे एकही वस्तु का भण्डारे से नागपुर तक ३९ मील का भाड़ा १० आ० ५ पाई, और नागपुर से भण्डारे तक उसी ३९

* जंकशन पर एक रेलवे के डिब्बों से दूसरी रेलवे के डिब्बों में माल को परिवर्तन करने में जो व्यय होता है उसे ही 'टर्मिनल' या टर्मिनल-चारजेज कहते हैं। यदि एक ही गाज की दोनों रेलें होती हैं तो प्रायः परिवर्तन नहीं होता पर बहुधा टर्मिनल तो लेही लिया जाता है!

मील का ६॥ पाई लेती है। डूग से (नागपुर और कलकत्ते के मार्ग में बी० एन० रेलवे का एक स्टेशन) कलकत्ते का भाड़ा (५३७ मील के लिये) ७ आ० ९ पाई०, पर रायपुर से (यह भी नागपुर और कलकत्ते के बीच में बी० एन० रेलवे का एक स्टेशन) कलकत्ते का भाड़ा (५१४ मील का) ८ आ० ३ पाई है*; अर्थात् अधिक दूर के लिये कम भाड़ा और कम दूर के लिये अधिक! इस न्यूनाधिक भाड़े के मूल में प्रतिद्वन्द्वता है। बी० एन० बम्बई जाने वाले अन्न के लिये भण्डारे से नागपुर तक जो अत्यधिक भाड़ा लेती है उसका कारण माल को बम्बई जाने से रोकना तथा कलकत्ते भेजने में उत्तेजना देना है। माल के बम्बई जाने से बी० एन० पर वह केवल नागपुर तक जाता है, पर कलकत्ते जाने से केवल बी०एन० पर ही जाता है, जिससे बी० एन० को अधिक लाभ होना स्वाभाविक है। कलकत्ते की अपेक्षा बम्बई का भाड़ा कुछ अधिक होने पर भी अनेक कारणों से (कलकत्ते में अन्न आदि का विक्रयस्थान हवड़ा है, पर बी०एन० का माल-स्टेशन हवड़े से बहुत दूर सालीमार है। यह बहुत बड़ी असुविधा है। ऐसी और भी कई असुविधाएं हैं) माल कलकत्ते न जाकर बम्बई ही जायगा, इसलिये बी० एन० बम्बई जाने वाले माल के लिये नागपुर तक इतना अधिक भाड़ा लेती है, जिससे माल बम्बई न जाकर कलकत्ते ही जाय। डूग की अपेक्षा रायपुर से कलकत्ता समीप है तथापि रायपुर से कलकत्ते का भाड़ा अधिक लेने का कारण यह है कि रायपुर की अपेक्षा डूग से बम्बई समीप है। अर्थात् डूग से कलकत्ते का भाड़ा कम न होने से माल बम्बई

* ये तथा और अनेक उदाहरण रेलवे-बोर्ड द्वारा प्रकाशित Monograph, p. 211-213 में हैं।

चला जायगा इसलिये डूग से कलकत्ते का भाड़ा कम है। इसी तरह अन्य रेलों की व्यवस्था है। जैसे जी०आई०पी० के अकोला स्टेशन से बम्बई तक (३६३ मील का) रुई का किराया १ रुपया ६ आने है, पर नागपुर से बम्बई तक ५२० मील का भाड़ा केवल १४ आने* ! नागपुर से कम भाड़ा न लेने से बी०एन० द्वारा माल के कलकत्ते चले जाने का भय है।

ब्लाकरेट अनुचित और अहितकर है। इसके कारण वस्तुएँ अपने स्वाभाविक स्थान को नहीं पहुंच सकतीं। जिन स्टेशनों से कलकत्ता और बम्बई समान दूरी पर हैं, और यद्यपि बम्बई का बन्दर सस्ता और सुविधाजनक है तथापि ब्लाक-रेट के कारण मालको कलकत्ते जाना पड़ता है‡। अन्यदेशों में ऐसा अन्याय नहीं है। वहां केवल जंकशन तक (जैसे भण्डारा से नागपुर तक) जाने वाले माल की अपेक्षा दूसरी रेलवे पर जानेवाले माल के लिये जंकशन तक (जैसे भण्डारा से बम्बई जानेवाले माल के लिये नागपुर जंकशन तक) अधिक भाड़ा नहीं लिया जाता। टर्मिनल लेना न्यायोचित है। रेलवे एक्ट की धारा ४५ और ४६ के अनुसार कानून विहित भी है। इङ्गलैंड में भी यह समुचित समझा जाता है [English Rys. Act, 1888, Sec,24(1),]। अन्यदेशों में 'टर्मिनल' बहुत कम लिया जाता है और यदि जंकशन पर टर्मिनल-व्यय नहीं होता है तो वह नहीं लिया जाता †। यहाँ तो खर्च न होने

* Monograph, p. 219.

‡. Acworth Com. Report, Vol. III, Para 5226.

† 6th Report of Ry. and Canal Traffic cases, Case No. 39 [English Ry. Act. 1888.]

परभी बहुधा ले लिया जाता है, जैसे भण्डारा से बम्बई जाने वाले माल के लिये नागपुर में टर्मिनल व्यय नहीं होता, तथापि माल को बम्बई जाने से रोकने के लिये बी० एन० रेलवे टर्मिनल लेलेती है।

भाड़े को जानने के कठिनता भी माल के आवागमन के सम्बन्ध में एक समस्या बड़ी विकट है। अमुक वस्तु के लिये स्थान विशेष का क्या भाड़ा होगा, यह जानना सहज नहीं। बन्दरों से आने वाले और वहां जाने वाले माल के लिये पृथक् भाड़ा है। स्टेशन से स्टेशन तक का भाड़ा भी है। ब्लाक-रेट हैं। पृथक् २ रेलों की पृथक् २ भाड़े की दर हैं। पहले तो स्टेशन-से-स्टेशन के भाड़े की सूची देखना चाहिये ('General classification of goods' in force from 1st Jany 1924, General Rule No. 61)। यह सूची प्रधान प्रधान रेलों की भाड़े की किताबों में (Pamphlet No. 1 of Goods Tariff) है। इन सूचियों में वाञ्छित स्थान के लिये भाड़ा न मिले तो विशेष-सूची (Exception List) को देखना आवश्यक है। इसमें भी कुछ पता न लगे तो जनरल-क्लासीफिकेशन-आफ-गुड्स में देखना चाहिये। इतनी खोज पर कहीं भाड़े का पता लगता है। इस जटिलता के कारण रेलवेवाले बहुधा न्यूनाधिक भाड़ा ले लेते हैं। रेलवे के महारथी भी भाड़ेकी विषम समस्या को सुलझाने में अनेक बार किंकर्तव्यविमूढ होजाते हैं। उदाहरणार्थ, एक बार १५० मन मूंगफली कोलापुर से अहमदाबाद भेजी गई थी, मार्ग तीन रेलों में—मद्रास, जी० आई० पी० और बी० बी० सी० आई०—में विभक्त था। इन रेलों का मूंगफली

के लिये निम्नलिखित भाड़ा थाः—

मद्रास० जी० आई० पी०	तोलके अनुसार पहली श्रेणी का भाड़ा।
बी० बी० एण्ड- सी० आई०	२०० मन के लिये शिडूल-ए का भाड़ा। अथवा— तोलके अनुसार दूसरी श्रेणी का भाड़ा।

जिस रेलवे को माल सौंपा जाता है, उस रेलवे का तोल आदि के सम्बन्ध में जो नियम है, वही नियम गन्तव्यस्थान के मार्ग में जितनी रेलें हैं, उन सारी रेलों को स्वीकार करना पड़ता है (General classification of goods, Ru e 63)। इस नियम के अनुसार मद्रास रेलवे का तोल सम्बन्धी नियम जी० आई० पी० और बी० बी० सी० आई० मानने को बाध्य हैं। पर बी० बी० सी० आई० का २०० मन के लिये और जितना माल हो उतने के लिये, भिन्न भिन्न भाड़ा होने के कारण मामला गड़-बड़ हो गया। मद्रास और जी० आई० पी० का पूरे वज़न का —१५० मनका—पहली श्रेणीका भाड़ा, और बी० बी० सी० आई० का पूरे वज़न का—१५० मन का—दूसरी श्रेणी का भाड़ा मिलकर २०२ रुपये ५ आने ६ पाई होते हैं। बी० बी० सी० आई० का २०० मनका ए-शिड्यूल का भाड़ा लेने से सारा भाड़ा केवल १६० रुपये ६ आने ८ पाई होता है। पहले तो १६० रुपये ६ आने ८ पाई लेना उचित समझा गया। यह उक्त नियम के विरुद्ध था, अतएव बी० बी० सी० आई० के विरोध करने पर २०२ रुपये ५ आने ६ पाई लेना निश्चय हुआ। अथवा मद्रास० और जी० आई० पी० भी २०० मन का पहली श्रेणी का भाड़ा लें, और बी० बी० सी० आई० २०० मन का शिड्यूल-ए के अनुसार भाड़ा ले। अर्थात् इस प्रकार कुल भाड़ा १८७ रुपये ८ आने

लिया जाय। यद्यपि १६० रुपये ६ आने ८ पाई लेना उचित था, किन्तु लिये गये १८७ रुपये ८ आने* !

मि० रोबर्टसन ने और सरकारी डाइरेक्टर ने लिखा था कि 'भाड़े की किताबें और भाड़े सम्बन्धी नियम सरल और सुबोध नहीं हैं। सारी रेलों का भाड़ा एक समान होना चाहिये†।' ये बातें पुरानी उस समय की हैं, जब कि भाड़े की किताब बहुत छोटीसी थी। अबतो प्रत्येक रेलवे की कई बड़ी बड़ी किताबें हैं, जिनका समझना बहुत कठिन है।

भाड़े की अधिकता।

माल का रेलभाड़ा बहुत अधिक है। इस भाड़े की अधिकता का एक प्रधान कारण यह है कि यहाँ की रेलें थ्रू-रेट Through Rates नहीं लेतीं। अन्य देशों में यह नियम है कि जब माल एक से अधिक रेलों द्वारा यथा-स्थान पहुंचता है, उस अवस्था में भी भाड़ा इस प्रकार लिया जाता है मानो वह माल एकही रेलवे द्वारा पहुँचाया गया है। अर्थात् माल का एक समान दूरी तक एक रेल द्वारा और एक से अधिक रेलों द्वारा वाहन होने से भाड़े में न्यूनाधिकता नहीं होती—दोनों प्रकार से भाड़ा एक समान होता है। इस भाड़े की समानता को ही थ्रू-रेट कहते हैं। यहां इस प्रकार की थ्रू-रेट नहीं है। यहां तो एक रेलवे पर जाने से भाड़ा कम होगा, पर एक से अधिक रेलों पर जाने से अधिक। मान लीजिये कि 'क' स्टेशन से 'ग' स्टेशन को माल भेजना है। 'ग' बी० बी० सी० आई० का स्टेशन है और 'क' ई०

---

* Tiwari: Indian *Rys.*, p. 452-53.

† Robertson's *Report*, paras 204, 205; Tiwari: Indian *Rys.*, p. 456.

आई० का। 'ख' जंकशन है। 'क' से 'ख' २०० मील है और 'ख' से 'ग' २०० मील। खली के लिये ई० आई० रेलवे का भाड़ा—(Monograph, p. 226 से उद्धृत)—

१ मील से	५० मील तक	३३ पाई	प्रति १०० मन,	प्रतिमील	
५१ ,,	१०० ,,	२० ,,	,,	,,	
१०१ ,,	३५० ,,	१४ ,,	,,	,,	
३५० ,,	६०० ,,	१२ ,,	,,	,,	

बी० बी० सी० आई० का भाड़ा खली के लिये—

१ मील से	१०० मील तक	३३ पाई	प्रति १०० मन,	प्रतिमील	
१०१ ,,	३०० ,,	२० ,,	,,	,,	
३०१ ,,	५०० ,,	१० ,,	,,	,,	

इस हिसाब से ई० आई० का

२०० मील के लिये भाड़ा ... ... ३ आने ५ पाई प्रति मन

और बी० बी० सी० आई० का

२०० मील के लिये भाड़ा ... ... ४ आने ५ पाई प्रति मन

कुल ४०० मील का भाड़ा ... ... ७ आने १० पाई।

किन्तु यदि माल ४०० मील केवल ई० आई० पर ही आता है तो भाड़ा केवल ५ आने ८ पाई होता है! और बी० बी० सी० आई० का भाड़ा ४०० मील के लिये ६ आने! अर्थात् दो रेलों पर जाने से लगभग २ आने प्रति मन अधिक भाड़ा देना पड़ता है। इसके अतिरिक्त टर्मिनल और है। अन्य देशों में ऐसा नहीं होता। वहां माल ४०० मील चाहे एक रेलवे पर जाय अथवा एक से अधिक पर, भाड़ा एक समान होता है। और टर्मिनल तभी लिया जाता है जब कि मार्ग में भिन्न भिन्न राज्यों के रेलपथ होते हैं। इङ्गलैंड और अमेरिका आदि में माल के एक से अधिक रेलों द्वारा वाहन होने से जो एक रेलवे के समान भाड़ा लिया जाता है, वह प्रति मील के औसत भाड़े के हिसाब से रेलों में (जिनके द्वारा माल यथास्थान

पहुंचाया गया है) विभक्त कर लिया जाता है। जैसे यदि ५०० मोल के १० आने मिले हैं और तोन रेलों ने क्रमशः १००, १५०, २५० मील वाहन किया है तो उन्हें क्रमशः २, ३, ५, आने मिलेंगे, न कि न्यूनाधिक प्रतिमील प्रतिमन।

थ्रू-रेट सम्बन्धी भारतीय कानून [रेलवे एक्ट, धारा ४२(४)] इंगलैंड की कानून के (English Ry. Act 1888, Secs. 25 and 26) समान है पर यहां इंगलैंड के समान थ्रू-रेट नहीं ली जाती जैसा ऊपर लिख चुके हैं। मि० रोबर्टसन का कहना है कि 'एक या एक से अधिक रेलों द्वारा एक समान दूर तक वाहन होने से समान भाड़ा होना चाहिये और भारतीय रेलवे एक्ट भी यही कहता है, पर भारतीय रेलें इस नियम की उपेक्षा कर रही हैं! माल के अधिकाधिक आवागमन के लिये अमेरिका आदि का अनुकरण कर थ्रू रेट लेना परमावश्यक है (रिपोर्ट पैरा १९५)'। औद्योगिक कमीशन ने भी यही अनुरोध किया है (रिपोर्ट पैरा २७३)। थ्रू-रेट के कारण रेलवे को हानि होने का कोई भय नहीं। थ्रू-रेट होने पर माल का निस्सन्देह अधिक आवागमन होगा, अतः अन्त में अवश्य ही रेलवे को अधिक लाभ होगा।

भाड़े की नियुक्ति के सम्बन्ध में जो सर्वमान्य सिद्धान्त हैं उनकी यहां कोई कीमत नहीं। 'कमसे कम भाड़ा लेकर अत्युत्कृष्ट सुविधा' (Maximum service is rendered with a minimum of charge) पहुंचाने का सदैव और सर्वत्र ध्यान रक्खा जाता है। यहाँ की रेलें इस विषय में बिलकुल उदासीन हैं। अन्य देशों में 'माल के मूल्य के अनुसार (What the traffic will bear, i. e. Value of service

principle) भाड़ा लिया जाता है, नकि वाहन-व्यय (What the traffic will cost, i.e. Cost of service principle) के परिमाण में। यहां इन समुज्वल सिद्धान्तों का कोई मूल्य नहीं। वैसे तो विदेशोंकी तुलना में यहाँ सभी वस्तुओं के लिये अधिक भाड़ा है, पर जैसा पहले लिख चुके हैं घृत और घास आदि के लिये इनसे अधिक मूल्य की वस्तुओं की अपेक्षा अधिक भाड़ा लेना ऊपरोक्त सिद्धान्तों के सर्वथा प्रतिकूल है। भाड़े की अनुचित अधिकता के कारण माल का यथेष्ट आवागमन नहीं हो सकता और देश का व्यापार और उद्योग-धन्धे उन्नति नहीं कर सकते† । भाड़ा कम होने से माल का अधिकाधिक आवागमन होता है । जिससे रेलवे की आय–वृद्धि के अतिरिक्त देश का भी भला होता है। भाड़ा कम करने से एक बार तो रेलवे की आय कम हो जाती है पर विदेशों के अनुभव से प्रत्यक्ष है कि यह हानि कुछ समय उपरान्त लाभ के रूप में सदैव के लिये परिवर्तित हो जाती है* ।

भाड़े की अधिकता का एक यह भी कारण है कि विदेशों को जाने और वहाँ से आने वाली वस्तुओं के लिये बहुत कम भाड़ा लिया जाता है (देखो, १३ वां प्रकरण) । अतएव आन्तरिक आवागमन के लिये रेलें अधिक भाड़ा लेकर, उस कमी को पूरा करती हैं। माल के आवागमन के सम्बन्ध में और भी अनेक असुविधाएँ हैं पर उपर्युक्त विवेचना से भी यह तो पूर्णतया सिद्ध होगया है कि यहाँ की रेलों द्वारा माल भेजने में एक नहीं, अनेक कठिनाइयाँ और हानियाँ हैं।

† Williams: *Ry. Economics*, p. 66.

* *Robertson's Report*, para 196.

बारहवां प्रकरण।

उद्योग-धन्धों की उत्पत्ति और वृद्धि।

(रेलवे के लिये आवश्यक वस्तुएं)

रेलवे की आवश्यक वस्तुओं के लिये माँग उत्पन्न होने से देश में अनेक नये नये उद्योग-धन्धों का उद्भव होजाता है और प्रस्तुत उद्योग-धन्धों का विकास और समुत्थान होता है। विदेशों में हुआ भी ऐसा ही है। हमारी रेलों के लिये सामान विदेशों से आता है, अतएव यहाँ उद्योग धन्धों की उत्पत्ति और वृद्धि नहीं हुई। हां, यहाँ की रेलों के कारण इंगलैंड के उद्योग-धन्धों को अवश्य अनिर्वचनीय सहायता मिली है। १६२१ में सरकारी रेलों (आठ प्रतिनिधि कम्पनियों द्वारा और तीन सरकार द्वारा संचालित, आर० के० तथा बी० एन० डब्लू०) के लिये ३६ करोड़ का माल खरीद हुआ था। इस अङ्क में कोयला, पत्थर, चूना, ईंट, कंकड़-रोड़े आदि का मूल्य शामिल नहीं है। ३६ करोड़ रुपये के माल में विदेशी २६ करोड़ का और देशी १० करोड़ का है। देशी माल में लकड़ी के स्लीपरों आदि का मूल्य शामिल है। स्लीपर आदि कोयला आदि की श्रेणी का माल है, इसलिये इन्हें भी उनके साथ पृथक् कर देना आवश्यक है। १० करोड़ के देशी माल से स्लीपरों आदि का मूल्य—३ करोड़ रुपये—घटा देने से देशी माल का मूल्य ७ करोड़ रुपया होता है। अर्थात् सरकारी रेलें प्रति वर्ष २६ करोड़ का विदेशी और ७ करोड़

का देशी माल खरीदती हैं। इस हिसाब से सारी रेलें ४० करोड़ का विदेशी और १० करोड़ का देशी सामान प्रति वर्ष लेती हैं (इस सम्बन्ध में देखो, Ry. Report 1921-22, Vol. II, App. 22)।

रेलवे के लिये विदेशों से जो सामान आता है वह तैयार माल होता है और देशी सामान अधिकतर कच्चा होता है। अथवा अधिकतर देशी माल ऐसा होता है जिसका विदेशों से आना कठिन या असम्भव है। जो देशी वस्तुएँ खरीदी जाती हैं उनका भी अधिकतर लाभ भारत-प्रवासी गोरे व्यापारियों को मिलता है, क्योंकि अधिकतर माल उनका अथवा उनके द्वारा खरीदा जाता है। यद्यपि ईंट आदि विदेशों से नहीं आतीं तथा कोयला भी अधिकतर यहीं का काम में आता है, तथापि इन का लाभ हमें नहीं मिलता। ईंट, कंकरीट, आदि के ठेके गोरे व्यापारियों को दिये जाते हैं। यहाँ की रेलों के लिये बहुतसा कोयला नेटाल आदि विदेशों से आता है और जो कोयला यहाँ खरीदा जाता है, वह अधिकतर विदेशियों की खानों का होता है। भारतवासियों की खानों का कोयला न लेने का कारण उनके कोयले का घटिया होना बताया जाता है। वास्तव में बात यह है कि कोयले की उत्तमता और अनुत्तमता खानों के स्वामित्व पर निर्भर है। भारतवासियों की खानों का घटिया और गोरों की खानों का उसी श्रेणी का कोयला अत्युत्तम समझा जाता है! उदाहरणार्थ मोगमा के समीपवर्ती चितावड़ की खान पहले कुंजविहारी पाल की थी, अब वह एक गोरी-कम्पनी (Villior Ltd.) की है। पहले इस खान का कोयला अनुत्तम समझा जाता था, पर गोरों के हाथ में आने से इसका कोयला सर्वोत्तमश्रेणी (Admiralty coal) का गिना

जाता है! पहले बिलकुल नहीं खरीदाजाता है, अब बेरोकटोक लिया जाता है! यही नहीं, किन्तु गोरे व्यापारियों के पास कोयले की कमी होने पर वे (गोरे-व्यापारी) हमलोगों से कोयला लेकर अपने बेचान में देते हैं और रेलवे वाले वह कोयला प्रथमश्रेणी में पास कर देते हैं! यदि भारतवासी वही कोयला देना चाहें तो कभी प्रथमश्रेणी में स्वीकार नहीं किया जायगा!

इस प्रसङ्ग में एक उदाहरण और देखिये। सर आदमभाई पीरभाई के श्रीयुत करीमभाई ने औद्योगिक कमीशन से कहा था* कि 'सरकारी आवश्यकता को पूरी करने के लिये हमने चमड़े का कारखाना बनाया था। इस व्यवसाय में लाभ की अपेक्षा हानि की अधिक सम्भावना थी, इस लिये और कोई व्यापारी इस काम को करने को राज़ी नहीं था। यद्यपि सरकार के अनुरोध से हमने लाखों रुपये कारखाने में लगादिये थे और हमारी वस्तुओं को सरकार ने पसंद भी बहुत किया था, परन्तु जब यहाँ गोरों के कारखाने बन गये तब सरकार ने हमारा माल लेना बंद कर दिया! मेरे इंगलैंड जाकर उद्योग करने पर लंडन के युद्ध-विभाग ने कई वस्तुएं हमसे लेनेके लिये भारत-सरकार को अनेक बार पत्र और तार दिये पर यहाँ के गोरे अफसरों ने एक न सुनी, और आज तक हमसे पूछा तक नहीं! यद्यपि कूपर-एलन कम्पनी इतना माल तैयार नहीं कर सकती थी तथापि सारा माल उससे खरीदा गया। कूपरकम्पनी नियमानुसार टेंडर भाव—भी नहीं देसकी और कम्पनी के भाव से हमारा भाव कम भी था तथापि उसका माल खरीदा गया! रावलपिण्डी, फिरोजपुर, दिल्ली, आगरा और इलाहा-

* Industrial Com. Report, Vol. IV, p. 510-522.

बाद आदि में तम्बू तैयार करने के बहुत संतोषप्रद कारखाने हैं। इनसे माल न खरीद कर ७०-६० रुपये प्रति तम्बू अधिक देकर गोरों के कारखानों से खरीदा जाता है। इस प्रकार देशी उद्योग-धन्धों का नाश किया जाता है और भारतवासियों की औद्योगिक महत्वाकांक्षाओं को पददलित किया जारहा है।' इन उदाहरणों से प्रत्यक्ष है कि यहां जो माल खरीदाजाता है उसका अधिकांश लाभ विदेशियों को मिलता है। जो माल विदेशों से आता है उसका तो सारा लाभ उनका है ही। यदि रेलें देशी वस्तुओं को काम में लें तो देश का अनिर्वचनीय उपकार होसकता है। 'स्वदेशी' के अलभ्य लाभों के विषय में अधिक लिखना अप्रासंगिक होगा अतः आयर्लैण्ड निवासियों की एक उक्ति उद्धृत करना ही पर्याप्त है। उनका कहना है कि 'Go! Buy the products of your own land and keep in Ireland the wealth to build our nation up.' अर्थात् 'स्वदेशी वस्तुओं को काम में लो। जिससे देश की सम्पत्ति का अभिवर्धन हो और राष्ट्र की उन्नति हो।' देश की उन्नति के उद्देश्य से सरकार ने रेलवे आदि सरकारी कामों के लिये देशी वस्तुओं को खरीदने के लिये नियम बना रक्खे हैं। पर इन नियमों का रहस्य बड़ा मनोरञ्जक है।

सन् १८६२ से अब तक समय समय पर भारतीय वस्तुओं को खरीदने के लिये नियम बनते रहे हैं। १८८३ में यह नियम बना कि 'यदि देशी वस्तुओं का मूल्य अधिक भी हो या वे उत्तम भी नहों तबभी उन्हें खरीदना चाहिये' (Resolution No: 185, F. Dept. Dt. 10 Jany 1883)। यह भी निश्चय हुआ कि 'किसी चीज को इंगलैंड से मँगाने के पहले यह अनुसंधान अवश्य कर लेना चाहिये कि वह यहाँ

मिल सकती है अथवा नहीं*।' पर आज तक कभी ऐसा नहीं हुआ। प्रथम तो गोरे शासक कोई देश हितकारी नियम बनाते ही नहीं, यदि कभी किसी कारण से कोई ऐसा नियम बनाते हैं तो उसके अनुसार कोई काम नहीं होता। केवल कहने और लिखने के उद्देश्य से ही ऐसे नियमों की सृष्टि होती है, नकि उन्हें कार्य में परिणत करने को! १८८६ में लार्ड क्रास Cross ने साफ कहदिया था कि '१८८३ के नियम का इस्पात और लोहे से कोई सम्बन्ध नहीं है। इन चीजों को इंगलैंड में ही खरीदना चाहिये।' और वस्तुओं के लिये यह कहा कि 'These rules are permissive, not mandatory in form' अर्थात् देशी वस्तुओं के खरीदने के सम्बन्ध में जो नियम हैं वे देशी वस्तुओं को खरीदने की स्वीकृति देते हैं—खरीदने को बाध्य नहीं करते‡! १६०६ की स्टोर-कमेटी के अनुरोध के कारण १६०६ और १६१३ में १८८३ के नियमों का पुनरुद्धार किया गया। इस बार यह विशेषता थी कि 'भारतीय वस्तुएं तभी खरीदी जाँय जब कि वे विदेशी वस्तुओं के समान उत्तम और सस्ती हों (Govt. Store Purchase Rules Nos: 1 and 2 of 1913)'। अतएव देशी और विदेशी वस्तुओं की मूल्य-तुलना करने के साधनरूप कई एक नियम बनाये गये (Rule 10 of 1913)†। इन नियमों में कूट-कूट कर कूट-नीति भरी हुई है। उत्तमता और मूल्य की

* Indian Army *Regulations*, Vol. V, para 614, (Ed. 1901).

† P. W. D. Standing order No. 85 Dt. 12th July 1904. (P. W. D. Code, Vol. II, 6th Ed.)

‡ Ry. Industries Com. [1923] Report, p. 3.

समानता सम्बन्धी शर्त के कारण देशी वस्तुओं को खरीदने के नियम का कुछ मूल्य नहीं है। क्योंकि यहां के अनुन्नत और नवजात कारखाने समुन्नत विदेशी कारखानों के सदृश सस्ती, सुन्दर और सुदृढ़ वस्तुएं तैयार करनेमें सम्प्रति समर्थ नहीं हैं। यदि सरकार को अभिलाषा यहाँ के उद्योग-धन्धों की अभिवृद्धि की होती तो वस्तुओं की मूल्याधिकता और कुरूपता का आरम्भ में ही विचार न किया गया होता। १६२० की स्टोर-कमेटी का अनुरोध है कि 'कुछ समय तक यहां की महंगी और अनुत्तम वस्तुओं का व्यवहार करना अत्यावश्यक है* । यहां के उद्योगधन्धे नष्टप्राय हो चुके हैं, और जो नवीन उद्योग-धन्धे हैं वे अभी शैशवावस्था में हैं, अतएव यहां की मंहगी और घटिया चीजें कुछ समय तक काम में ली जांय तो क्या हानि है? विशेश कर उस समय जबकि, यद्यपि अमेरिका के उद्योग धन्धे सर्वाङ्ग उन्नत हो चुके हैं तथापि वहां वाले अपने देश की बहुमूल्य वस्तुएं खरीदते हैं! वहां का तैयार लोहा और इस्पात यूरुप में तैयार हुए लोहे और इस्पात से बहुत महँगा है। परन्तु वहाँ की प्रजातंत्र सरकार ने यूरुप के लोहे और इस्पात का आना रोक दिया और वहाँ वाले अपने देश का महँगा ही सहर्ष व्यवहार में लाते हैं‡। यहां, वर्तमान-शासन-प्रणाली के कारण, ऐसा होना तो सर्वथा असम्भव है ही, पर मूल्य समानता के नियम का भी पालन नहीं किया जाता, जैसा निम्न लिखित बातों से प्रत्यक्ष है।

(१) स्टोर-कमेटी का कहना है कि "मूल्य की समानता के नियम बिलकुल अनुचित हैं, उनकी संकीर्णता और जटिलता

* Store Com. Report, Vol. I, para 103.

‡ Marshall; Industry and Trade p. 530.

के कारण उनका कुछ महत्व नहीं है। उनमें प्रधान दोष यह है कि मूल्य की तुलना होना बहुत कठिन है। तुलना के लिये जो साधन अपेक्षित हैं उनका नितान्त अभाव है*।" इसके अतिरिक्त एक बात यह है कि 'अमुक वस्तु यहाँ मिल सकती है अथवा नहीं' यह जानने के लिये भी कोई प्रबन्ध नहीं ‡।' मूल्य तुलना का साधन होने पर भी आवश्यक सामान विदेशों से मंगाया जाता है।

(२) दूसरी बात यह है कि जो माल इंगलैंड में खरीदा जाता है, उसके विक्रेताओं को जो जो सुविधाएं दीजाती हैं वे यहां वालों को नहीं दीजातीं †। उदाहरणार्थ, इंगलैंड के एक-एक कारखाने से एक साथ में बहुत अधिक माल खरीदा जाता है, यहां अल्प परिमाण में लिया जाता है। एक साथ अधिक माल तैयार करने में व्यय कम होता है, अतएव अधिक माल एक साथ सस्ता बेचा जासकता है। थोड़े माल के बेचने वाले की अवस्था इससे बिलकुल विपरीत है। इंगलैंड के माल के सस्ता होने का एक कारण यह है कि माल तैयार करने के लिये उन्हें (इंगलैंड वालों को) यथेष्ट समय दिया जाता है (जिस वस्तु की आवश्यकता होती है वह प्रायः प्रस्तुत नहीं मिलती, इसलिये उसे एक नियमित समय के अन्दर तैयार करदेने की शर्त होती है), किन्तु यहां वालों को बहुत कम समय दिया जाता है। इन दो बातों पर औद्योगिक कमीशन ने हार्दिक दुःख प्रकट किया है§। इंगलैंड के कारखाने वालों को एक

* Store Com. Report, Vol. I, para 97.

‡ Govt. of India, Resolution No. B. 506-11 Dt. 5-12-1919. (Gazettee of India, Dt. 6-12-1919).

† Store Com. Report, Vol. I, para 225, p. 127.

§ Industrial Com. Report, para 192, p. 148-149.

यह भी सुविधा रहती है कि मजदूरी बढ़ जाने पर अथवा किसी उपकरण-पदार्थ (ingredient) के मूल्य में वृद्धि हो जाने से उनसे (वहां के कारखानेवालों से) जिस दर में माल लेना स्वीकृत हुआ है उस दर की वृद्धि करदी जाती है। यह शर्त यहाँ के विक्रेताओं से नहीं की जाती* । विदेशी वस्तुओं के सस्ता होने के सम्बन्ध में स्टोर-कमेटी का यह भी कहना है कि 'भारतीय रेलें देशी माल की अपेक्षा विदेशी माल का कम भाड़ा लेती हैं† ।' इन सुविधाओं के कारण इंगलैंड वालों का माल सस्ता है। इन सुविधाओं के अभाव में यहाँ के माल का वहां की अपेक्षा महँगा होना स्वाभाविक है। अतएव मूल्य-समानता के नियम का क्या महत्व हो सकता है?

(३) भारतीय विक्रेताओं को उपर्युक्त तथा अन्य अनेक सुविधाएँ न होने पर भी, यहाँ की अनेक वस्तुएँ इंगलैंड के समान सस्ती और सुदृढ़ होती हैं। औद्योगिक कमीशन का कहना है कि 'युद्ध समय में यहाँ जो माल खरीद हुआ था, वह विदेशों की तुलना में न महँगा था, और न घटिया ही। खरीदने के समय यह निश्चय ही नहीं किया जाता कि जो वस्तुएँ बाहर से मंगाई जाती हैं वे भारत में मिल सकती हैं अथवा नहीं। जो चीजें विदेशों के समान सस्ती और उत्तम यहाँ मिल सकती हैं वेभी विदेशों से मँगाई जाती हैं‡ ।' बहुत सी देशी वस्तुओं का मूल्य विदेशियों से केवल समान ही नहीं पर कम भी होता है, फिर भी वे विदेशों से मंगाई जाती हैं! १९२१-२२

* Store Com. Report, Vol. I, para 107.

† Ditto, para 104, page 52.

‡ Industrial Com. Report, paras 192–198.

में रेलों ने यहाँ का १४ रुपये प्रति-टन का कोयला न खरीद कर, ५२–५३ रुपये प्रति टन का विदेशी कोयला काम में लिया* ! यद्यपि १९२१ में यहां २० लाख टन कोयला उत्पन्न हुआ था और यहाँ की सारी रेलों के लिये केवल ७ लाख टन ही आवश्यक है, तथापि एक लाख टन कोयला बहुत अधिक मूल्य देकर विदेशों से मंगाया गया† ! स्टोर-कमेटी का कहना है कि 'यहाँ के सरकारी–कर्मचारी यदि यह जानते भी हैं कि अमुक वस्तु यहीं मिल सकती है, फिर भी वे उसे इंगलैंड से मँगाते हैं। इसका दुष्परिणाम यह होता है कि जो देशी चीजें कम मूल्य में और सुविधा से मिल सकती हैं, उन्हें अन्य देशों से मंगाने के कारण केवल देशी उद्योग-धन्धों को ही धक्का नहीं लगता, पर रेलवे को भी अपव्यय के रूप में बहुत हानि होती है‡।' स्टोर-कमेटी यह भी कहती है कि 'भारत-सरकार और भारत-मंत्री के पत्र व्यवहार से यह सुस्पष्ट है कि लंडन में भारत सरकार के लिये रेलवे आदि की आवश्यक वस्तुएं खरीदने का जो विभाग है, वह भारत में सामान खरीदने का सदा विरोध करता है। उसे यह भय है कि यदि भारत में थोड़ा थोड़ा भी माल खरीदा जायगा तो उसकी क्रमजात वृद्धि होकर इङ्गलैंड में माल खरीदना बिलकुल बन्द हो जायगा§।'

जो माल यहां न मिले उसे बाहर से मंगाना उचित है, पर जहां सबसे सस्ता मिले वहीं उसे खरीदना चाहिये। किन्तु यहाँ को रेलों आदि के लिये अन्य देशों की सस्ती वस्तुएं न

* Retrench. Com. Report, page 100, para 14.

† Assembly Debates, Dt. 2–7–1923, p. 4151–52.

‡ Store Com. Report, para 223. § para 37.

खरीद कर इङ्गलैंड की मंहगी ही खरीदी जाती है। भारत निरुपाय है, अतएव सुसमृद्ध इंगलैंड के अनियमित स्वार्थों के लिये भारत का रक्त-शोषण किया जाय अथवा भारत के हित को हत्या की जाय तो क्या आश्चर्य। सर मेयर Sir Wmillam Meyer (जो पहले अर्थ-सचिव थे, फिर भारत सरकार के लिये रेलवे आदि की आवश्यक वस्तुओं को खरीदने के लिये लंडन में हाई कमिश्नर थे) हाई-कमिश्नर के स्थानापन्न होते हुए कहा था* कि "जहाँ सस्ता माल मिले वहीं खरीदना उचित है। पर क्या करें, इंगलैंड वाले इंगलैंड की वस्तुओं को ही खरीदने के लिये बहुत आग्रह करते हैं। अतएव उन्हें संतुष्ट करना ही पड़ता है। यद्यपि भारतीय-करदाताओं का यह कर्तव्य नहीं है कि वे स्वयं हानि सहें और इंगलैंड वालों का पोषण करें, तथापि भारत के हित की उपेक्षा कर इंगलैंड वालों को लाभ पहुँचाया ही जाता है। * * इंगलैंड वालों को जर्मनी, बेलजियम आदि के मूल्य से १० प्रति सैकड़ा अधिक दिया जाता है। जब जर्मनी आदि से प्राप्त दर बहुत कम होती है, तब मैं उसे (दर को) गुप्त रूप से इंगलैंड के कारखाने वालों को बता देता हूँ। ऐसा करने से इंगलैंड वाले कभी कभी अपने मूल्य को कुछ कम कर देते हैं। यदि कम किया हुआ मूल्य जर्मनी आदि से विशेष अधिक नहीं होता है तो मैं उन्हीं से (इंगलैंड वालों से) माल खरीदता हूँ। मैं मानता हूँ कि इस अनीति का फल बहुत बुरा है। अर्थात् सस्ता बेचनेवाले का माल न लेकर उसके प्रतिस्पर्धी का मंहगा लेने से, वह (सस्ता बेचने वाला) यह समझ लेता है कि 'मेरे से जो दर मंगाई गई थी वह मेरे प्रतिस्पर्धी के मूल्य को घटाने के लिये षड्यन्त्र था।

* Acworth Com. Report Vol. II, p. 247–48, 261

यदि ऐसा न होता तो मुझे भी अपनी दर पर पुनः विचार करने का अवसर दिया जाता'। और वह (सस्ता बेचने वाला) भविष्य में दर-भाव भेजना छोड़ देता है। अन्य देशों की अपेक्षा इंगलैंड की वस्तुओं का अधिक मूल्य देने से भारत को प्रति-बार लाख-पचासहजार रुपये की हानि होना साधारण बात है।" इस अन्याय को अंशतः उचित ठहराने के लिये भारत मंत्री की कौंसिल के सर कोलियर Sir George Collier का कहना है कि 'इंगलैंड की अपेक्षा अन्य देशों में कभी कभी ३० से ५० प्रति सैकड़ा तक मूल्य कम होता है। परन्तु अन्य देशों में विज्ञापन देकर भाव मंगाने में विलम्ब हो जाता है, इस लिये अन्य देशों के भाव का ज्ञान किये बिना ही प्रायः इंगलैंड में ही माल खरीद लिया जाता है*।' इसी प्रकार के और भी कई निर्मूल कारण बताये जाते हैं। कुछ भी हो, ४०-५० प्रति सैकड़ा† अधिक मूल्य देकर इंगलैण्ड का माल खरीदकर भारत को असीम हानि पहुँचाना कभी न्यायसंगत नहीं हो सकता।

सन् १९२२ से हाई-कमिश्नर के पद पर सर दलाल थे और अब सर चटरजी A. C. Chatterjee हैं। हाई कमिश्नर के भारतीय होने से ही भारत के हित की रक्षा नहीं होसकती। क्योंकि प्रथम तो कमिश्नर के सारे सहकारी अंग्रेज हैं। दूसरे, कमिश्नर का स्वदेश-हितचिन्तक होना दुष्कर है। जिसके हृदय में भारत का प्रेमांकुर होगा उसे नियुक्त ही कौन करेगा। हाई-कमिश्नर के भारतीय होने से, अथवा [illegible] की आर्थिक शिथिलता के कारण वहाँ इङ्गलैंण्ड की वस्तुओं की बिक्री न होने से और अमेरिका में

* Acwo[illegible] [illegible]t, Vol. II, p. 260-61.
† Assem[illegible] [illegible] 19-9-1921, p. 888.

स्वदेशी उद्योग-धन्धों की उन्नति के लिये इङ्गलैण्ड की वस्तुओं पर संहारक ड्यूटियां होने के कारण अंग्रेजी कारखानों के लिये भारत ही एक मात्र आश्रय रह जाने से, भारत-सरकार के लिये आवश्यक सामान इंगलैण्ड में ही खरीदा जाय इसका एक नवीन युक्ति द्वारा प्रबन्ध किया गया है। अर्थात् गत ३-४ वर्षों में भारत सरकार ने जो ऋण इंगलैण्ड में लिया वह इस शर्त से मिला कि उस धन का सामान इंगलैण्ड में ही खरीदा जाय। इञ्जिनों का मूल्य इंगलैंड की अपेक्षा जर्मनी में २५ प्रति सैकड़ा कम होने के कारण कुछ दिन हुए ५ इञ्जिन जर्मनी में खरीदे गये थे। इससे इंगलैंड के कारखाने वाले विकल हो उठे! उन्होंने इस विषय में बहुत कुछ आन्दोलन किया और पार्लियामेंट में प्रश्न किया कि 'ऐसा क्यों हुआ? भारत को इस लिये ऋण नहीं दिया गया था कि वह इंगलैंड के अतिरिक्त और कहीं भी माल खरीद ले! उसे तो उस ऋण के कारण इंगलैंड की वस्तुएं ही खरीदनी पड़ेंगी। फिर चाहे वे सस्ती हों चाहे मंहगी।' इन लोगों का संतोष करते हुए लार्ड विन्टरटन ने कहा कि 'ऋण का ६० प्रति सैकड़ा इंगलैंड में ही व्यय हुआ है†!' इससे स्पष्ट है कि कमिश्नर को विवश हो इंगलैंड की बहुमूल्य चीजें खरीदनी पड़ती हैं।

प्रतिनिधि-कम्पनी सञ्चालित रेलों के लिये आवश्यक सामान स्वयं कम्पनियां खरीदती हैं। सरकारी कमिश्नर का इसमें कुछ हस्तक्षेप नहीं है। ये कम्पनियां भी अन्य देशों का सस्ता माल न खरीद कर इंगलैंड का महंगा ही खरीदती हैं‡।

† Reuter's Telegram, London 11th Feby 1924.

‡ Acworth Com. Report, Vol. II, paras 7962-63.

स्टोर कमेटी का कहना है कि 'कम्पनियां (प्रतिनिधि और स्वामी कम्पनियां) सरकार की अपेक्षा अधिक अन्याय करती हैं‡'। कम्पनियों के साथ सरकार की जो शर्तें हैं, उनके अनुसार सरकार उन्हें देशी वस्तुएं अथवा जहां सस्ती मिले वहीं खरीदने के लिये बाध्य कर सकती है, पर जब सरकार स्वयं वह काम करती है, तब उसी के लिये कम्पनियों को क्यों रोकने लगी ?

जब रेलवे का यहां आरम्भ हुआ उस समय यहां लोहा बहुत सस्ता था—विलायती लोहे से उसका मूल्य आधा था। १८५५ से १८५८ तक ५००० मील रेलवे के लिये १२॥ लाख टन माल २५१८ जहाजों में आया था ! उस समय यहाँ से बहु कम माल जाता था, इसलिये जहाजों को यहां से खाली ही लौट जाना पड़ता था। अतएव रेलवे के लिये जो सामान इंगलैंड से आता था उसका बहुत अधिक भाड़ा देना पड़ता था†। कहने का मतलब यह है कि यदि उस समय लोहे की वस्तुओं आदि को यहीं तैयार करने का प्रबन्ध किया गया होता तो, रेलवे में जितना व्यय हुआ उससे बहुत कम—आधे से भी कम—व्यय होता*। किन्तु यदि ऐसा होने से इंगलैंड की उन्नति कैसे हो सकती थी ?

हम पहले लिख चुके हैं कि निर्माण में अपव्यय होने के कारण ही यहां की रेलों से बहुत कम आय हो रही है। सर रेंडर (Sir A. Rendor of India Office, London) का

‡ Store Com. Report, Vol. 1, para 52.

† Bell: Ry. Policy, p. 69.

* Store Com. Report, Vol. 1, page 37, para 78.
Ball: Economic Geology of India.

कहना है कि 'रेलवेका समान भारत में ही तैयार होना चाहिये जिस से केवल वहां के—भारत के—उद्योग-धन्धों का अभ्युदय और श्रमजीवियों के प्रति कर्तव्य-पालन ही न होगा परन्तु विदेशी वस्तुओं के लिये अधिक मूल्य देने से रेलवे को जो अत्यधिक हानि हो रही है, वह भी न होगी* ।'

सारांश यह है कि रेलों के लिये आवश्यक वस्तुओं के विदेशों से आने के कारण यहां के उद्योग-धन्धों की उत्पत्ति और वृद्धि नहीं हुई, प्रत्युतः विदेशी वस्तुओं के उपयोग से देश का बहुत कुछ अनिष्ट हुआ है।

---

* Seretary. of State's Despatch, No; 21 F. Stores, Dt. 18–10–1907 (Store Com. Report, Vol. I. p. 37)

तेरहवां प्रकरण।

उद्योग-धन्धों की उत्पत्ति और वृद्धि।

(भाड़े की अधिकता और विषमता)

रेलवे के कारण और भी अनेक मार्गों से देश के उद्योग-धन्धों की प्रत्यक्ष रूप में उन्नति हो सकती है। जर्मनी आदि देशों की रेलें देशी उद्योगधन्धों के लिये आवश्यक कच्चे पदार्थों का कम भाड़ा लेकर उनकी (उद्योगधन्धों की) उन्नति में सहायता पहुँचाती हैं। और देश की बनी हुई वस्तुओं के लिये कम भाड़ा लेकर उन्हें देश और विदेश में, विदेशी वस्तुओं की प्रतिद्वन्दता में, विजयी करती हैं*। सत्य तो यह है कि पाश्चात्य देशों के आधुनिक औद्योगिक अभ्युत्थान का अधिकतर श्रेय रेलवे को ही है। हमारी रेलों का भाड़ा इतना अधिक है कि सस्ती विदेशी वस्तुओं की प्रतिस्पर्धा में देशी उद्योग-धन्धों की उत्पत्ति और वृद्धि नहीं हो सकती। यही नहीं, यहाँ की रेलें तो देशी वस्तुओं की अपेक्षा विदेशी वस्तुओं के लिये कम, और विदेशों को जाने वाले कच्चे माल की अपेक्षा

---

* Kirkaldy: Transport Economics, p. 316.

देशी कारखानों के लिये अपेक्षित कच्चे माल का अधिक भाड़ा लेती हैं! यही कारण है कि रेलों के कारण यहाँ के उद्योग-धन्धों की उन्नति नहीं हुई, प्रत्युत उनका सर्वनाश हुआ, और हो रहा है।

भाड़े की अधिकता।

वैसे तो १० वें और ११ वें प्रकरण में भाड़े की अधिकता आदि के विषय में लिख चुके हैं, परन्तु इस प्रसङ्ग में एक दो बातें और लिखना आवश्यक है। यहाँ तैयार हुआ माल यहाँ भी विदेशी माल की प्रतिस्पर्धा में नहीं ठहर सकता, इसका प्रधान कारण रेल-भाड़े की अधिकता है। यह सुनकर शायद आश्चर्य होगा कि इस्पात और लोहे के लिये इंगलैंड के बन्दरोंसे यहां के बन्दरोंतक ६००० मील का भाड़ा १८-२० रुपये प्रति टन है और एंटवर्प से तो केवल १४-१५ रुपये ही है, पर टाटानगर से बम्बई तक १८-२० रुपये और कराची तक ५० रुपये! बम्बई से जापान तक रुई का भाड़ा ८-९ रुपये प्रति टन, पर लैलपुर से दिल्ली तक ३८७ मील का भाड़ा २८-३० रुपये प्रति टन* ! कुछ भी हो, यह तो निस्सन्देह है कि अन्य देशों की अपेक्षा यहां की रेलों का भाड़ा बहुत अधिक है (देखो १० वां प्रकरण)। यहां के रेल-भाड़े की अधिकता के कारण ही यहाँ की वस्तुएँ महँगी होती हैं। यहाँ से जापान को रुई जाकर, वहां से उसका कपड़ा बन कर आता है; फिर भी वह दिल्ली में बने हुए कपड़े से सस्ता होता है! श्रीयुत मुकर्जी का कहना है कि 'रेल-भाड़े की अधिकता के कारण हमारे घरेलू-उद्योग-धन्धों (Cottage industries) और कल-

---

* Industrial Conferance (1915), President's Address. Monograph, p. 228.

कारखानों की उन्नति नहीं हो सकती। अमेरिका और यूरुप की रेलों का भाड़ा कम होने से वहाँ की अकथनीय औद्योगिक उन्नति हुई है। किन्तु रेलों ने हमारे उद्योग-धन्धों को किञ्चित भी उत्तेजना नहीं दी†।'

रिस्कनोट, थ्रू रेट, ब्लाकरेट आदि असुविधाओं के कारण भी हमारा औद्योगिक मार्ग कण्टकाकीर्ण हो रहा है। बन्दरों को और बन्दरों से डिब्बे चाहे खाली आया जाया करें पर यहां के कारखानों तक कच्चे माल को पहुंचाने और वहाँ के बने हुए माल को लाने के लिये डिब्बों की कमी का प्रश्न सदैव उपस्थित रहता है‡। १९१८ में सरकारी कृषि विभाग के अध्यक्ष के अनुरोध से नागपुर की एम्प्रेस मिल ने पंजाब की अमेरिकन-रुई बहुत खरीदी थी। रेलवे की उपेक्षा दृष्टि के कारण खरीदा हुआ माल ९-१० महीनों पीछे नागपुर पहुँचा! इसलिये अब नागपुर मिल पंजाब में रुई नहीं खरीदती*।'

यहाँ के उद्योग-धन्धों की उन्नति के नामपर यदि रेलें कम भाड़ा लेती हैं, अथवा और कोई सुविधा देती हैं तो वह केवल भारत में जो गोरों के कारखाने हैं उन्हीं के लिये है। विदेशी व्यापारियों की सुविधा के लिये यहाँ की रेलों के प्रबन्धक उनकी (गोरे व्यवसायियों की) चेम्बरों (व्यापार-समितियों) के सदस्य हैं। चेम्बरों के प्रभाव के कारण गोरों के स्थानीय कारखानों के लिये कम भाड़ा लिया जाता है, जैसे कान-

† Mukerjee: Economics p. 313.

‡ Acworth Com. Report Vol. III, para 6013.

* Acworth Com. Report, Vol. IV, p. 229.

पुर की कपड़े की मिलें गोरों के हाथ में हैं, पर दिल्ली की मिल भारतवासियों के हाथ में, इसलिये कानपुर मिलों के लिये रुई का भाड़ा प्रतिमन प्रतिमील कम और दिल्ली मिल के लिये अधिक है* ! फाजिल का से ऊन का भाड़ा गोरों द्वारा संचालित कानपुर और धारीवाल की ऊनी कपड़े की मिलों के लिये कम है† ! किन्तु भारतवासियों द्वारा संचालित कल कारखानों के लिये कम भाड़ा नहीं लिया जाता। औद्योगिक और आर्थिक कमीशनों ने लिखा है कि 'किसी कारखाने के लिये कम और किसी के लिये अधिक भाड़ा लेना सर्वथा अनुचित और देश के लिये अनिष्ट कर है‡।' और देखिये, कलकत्ते की जूट मिलें गोरों के हाथ में हैं अतएव ए० बी० रेलवे हानि सहकर भी जूट का कम भाड़ा लेती है। ई० बी० रेलवे गोरे-चायवालों के लिये बनाई गई है और यह चा के लिये कम भाड़ा लेती है, जिससे इसे सदैव हानि होती है।

यहां की औद्योगिक उन्नति के मार्ग में भाड़े के अतिरिक्त जो अनेक रेलवे जन्य बाधाएँ हैं वे भी यहां के गोरे व्यवसायियों के लिये नहीं! जैसे धरमाबंद की कोयले की खान जब मि० घोषके पास थी तब अविकल उद्योग करने पर भी खान तक रेलवे-साइडिंग नहीं बनाई गई। एक गोरे अफसर ने उन से कहा कि 'यदि तुम मुझे अपनी खान का आधा भाग १२००० रुपये में देदो तो मैं तुम्हारी खान तक रेलवे लासकता हूँ।' मि० घोषने ४१

* Acworth Com. Report Vol. III, paras 4208

† Acworth Com. Report, Vol. III, para 6028;
Indust. Com. Rept., Evidence, Vol. V, p. 184-185.

‡ Industrial Com. Report, para 272;
Fiscal Com. Report, para 128(3).

हजार मेंखना खरीदी थी पर उन्हें उसका आधा भागा १२०००रुपये में देना पड़ा ! इस प्रकार के और भी कई उदाहरण हैं। भारत-वासियों के हाथ में जितनी कोयले की खानें हैं उसके परिमाण में उन्हें डिब्बे नहीं मिलते, परन्तु गोरे-खानवालों को हिसाब से भी अधिक मिलजाते हैं ! डिब्बों की कठिनाई के कारण भारतीय खानों वालों के नाकों दम आगया है ‡।

अनुचित पक्षपात (Undue Preference)

मि. रोबर्टसन का कथन है कि 'रेलों ने भारतीय उद्योग-धन्धों की वृद्धि के लिये बिलकुल चेष्टा नहीं की ¶।' औद्योगिक कमीशन† ने और स्वयं सरकार ने भी प्रसंगवश यह स्वीकार किया है§। एक अर्थशास्त्री का कहना है कि 'भाड़े की शरण में उद्योग धन्धों का संरक्षण स्वाभाविक है। किन्तु इस भाड़े ने भारतीय उद्योग-धन्धों की रक्षा करने के स्थान में उलटा उन्हें विदेशों की घातक प्रतिद्वन्दता का शिकार बना दिया है और देशी और विदेशी व्यापार की विभिन्नता सूचक सीमा को समूलतः नष्ट कर दिया है-(The demarcation that distinguish international from domestic trade is thus almost obliter ated in the case of India.-Chaterjee: Economics, p. 418)। कहने का तात्पर्य यह है कि यहां के उद्योग-धन्धे केवल रेलों की सहायता से ही वञ्चित नहीं रहे, किन्तु रेलों ने उनका सर्वनाश कर दिया। क्योंकि यहां की रेलें विदेशों को जाने और वहां से आने वाले माल के लिये बहुत

‡ Acworth Com. Ropt., Vol. III, paras 4541-52.

¶ Robertson's Report, para 208.

† Industrial Com. Report, para 270.

§ Acworth Com. Report, Vol. III, para 5917.

कम भाड़ा लेती हैं। जो कच्चा माल बाहर जाने के लिये बम्बई आदि बन्दरों को जाता है और जो विदेशी माल इन बन्दरों से देश में पहुँचता है, उसके लिये रेल-किराया बहुत कम है। यहां के कारखानों तक माल लाने और वहां से अन्यत्र पहुँचाने के लिये, और आभ्यन्तरिक आवागमन के लिये बन्दरों की तुलना में बहुत अधिक भाड़ा लिया जाता है! उदाहरणार्थ—

मुलतान से कराची ५७६ मील और दिल्ली ४५४ मील है पर किराया कराची के लिये १ रुपया ६ पाई और दिल्ली के लिये १ रुपया ३आना २पाई प्रति मन है! मुलतान और कराची के मार्ग में हैदराबाद है, पर मुलतान से हैदराबाद का भाड़ा कराची की अपेक्षा अधिक है! डमोह से बम्बई तक (७०० मील) गेहूं का भाड़ा ११ आने ६ पाई है। अगर दिल्ली मिल गेहूँ मँगाये तो दमोह से दिल्ली तक ४४५ मील का भाड़ा ११ आने है! कानपुर से कलकत्ते तक(६३३ मील)चमड़े का भाड़ा५ आना ३ पाई, बम्बई तक (८४० मील) ७ आने, और दिल्ली से कलकत्ते तक (६०३ मील) ७ आना ६ पाई है। परन्तु भूगांव से (Bhungaon E. I. Ry.) कानपुर का (१५६ मील) भाड़ा ५ आना ८ पाई, दिल्ली से कानपुर का (२७१ मील) ६ आना ४ पाई, और जबलपुर से कानपुर का (३४८ मील) ६ आना ८ पाई! चपड़ी का भाड़ा आधी पाई प्रति मन प्रति मील है। इस हिसाब से मिरजापुर से कलकत्ते के १ रुपया ३ आने ७ पाई होते हैं। पर लिया जाता है १३ आना ३ पाई! लाख का भाड़ा कानपुर से कलकत्ते तक १ रुपया २ आना १ पाई होता है, पर लिया जाता है ११ आना ६ पाई! बिनोलों के लिये भड़ोंच से नवसारी (५८ मील) का भाड़ा २ आना ३ पाई है,

पर भड़ोंच से बम्बई (२०५ मील) काभाड़ा १ आना ६ पाई* । ये उदाहरण तो हुए विदेशों कोजाने वाले कच्चे मालके सम्बन्ध में। अब देखिये बन्दरों से आनेवाली विदेशी वस्तुओं के लिये। खांड़ के लिये कानपुर से हर्दे तक (४२३ मील) १२ आने प्रतिमन भाड़ा है, खण्डवे का (४८६ मील) १३ आने और जबलपुरका (५२७मील) १५आने। पर विदेशी खाण्ड़ का भाड़ा बम्बई से जबलपुर तक (८१४ मील) ८ आना १० पाई है† ! बन्दरों से विदेशी दियासलाई का जितना भाड़ा है उससे दूना देशी दियासलाई के कारखानों से लिया जाता है‡ ! यही बात अन्य वस्तुओं की है$ । इतने में ही समझ लीजिये कि विदेशी मदिरा के लिये बन्दरों से जितना भाड़ा है उससे कहीं अधिक भाड़ा गङ्गाजल के लिये है § ! दोनों प्रकार के और भी अगणित उदाहरण दिये जासकते हैं। बड़ी व्यवस्थापक सभा में‡‡ औद्योगिक और रेलवे कमीशनों** आदि के सम्मुख यह सप्रमाण सिद्ध किया गया है कि विदेशों को जाने वाली और वहाँ से आने वाली वस्तुओं के लिये कम और देश के आन्तरिक आवागमन के लिये अधिक भाड़ा लिया जाता है।

---

* Monograph, p. 228, 453–456;
Ghose: Ry. Problems, p. 293;
Acworth Com. Rep., Vol. III, 4537, 5883, 6012;
Industrial Com. Report, Evidence,—
Vol. I, p. 270–71, 215, 294: Vol. IV, p. 293.

† Monograph, 416–17. ‡ p. 487. $ p. 473.

§ Council Proceedings, Dt. 24–3–1915, p. 589.

‡‡ Council Praceedings, Dt. 1–3–1912, p. 339–46.

** Ghose: Ry. Economics, Vol. III, p. 47.

औद्योगिक-कमीशन†, स्टोर-कमेटी‡, आर्थिक-कमीशन*, और रेलवे-कमेटी§, आदि ने स्वीकार किया है कि बन्दरों को जाने वाले कच्चे माल के लिये और बन्दरों से आनेवाले विदेशी सामान के लिये वस्तुतः कम भाड़ा लिया जाता है। इन कमेटियों और कमीशनों ने इस बात पर हार्दिक दुःख प्रकट किया है। सरकारी औद्योगिक-विभाग के डाइरेक्टर ने कहा है कि 'भाड़े की विषमता का एक मात्र उद्देश्य यह है कि कच्चा माल यहाँ से विदेशों को जाय, जिससे उसका यहां उपयोग न होसके**। रेलवे-बोर्ड द्वारा प्रकाशित पुस्तक में†† तथा रेलवे-संचालकों ने भी यह स्वीकार किया है कि 'कच्चे माल के निर्यातन में सहायता दी जाती है‡‡।'

यहां के तैयार माल के लिये केवल देशके आभ्यन्तरिक आवागमन का ही अधिक भाड़ा नहीं लिया जाता पर उसके लिये तो बन्दरों का औरभी अधिक भाड़ा है¶' जिससे आस पास के भी किसी देश में उसकी बिक्री न हो सके। जो कच्चामाल विदेशों को जाने के लिये बन्दरों में पड़ा रहता है, उसका देश में पुनः प्रवेश न हो जाय इसलिये उसका भाड़ा बन्दरों से देश में वापस लाने के लिये बहुत अधिक लिया

† Industial Com. Report, para 271.

‡ Store Com. Rept., Vol. I, para 104.

* Fiscal Com. Rept., para 126–27.

§ Acworth Com. *Rept*, *Vol.* I, paras 149–50.

** Industrial Com. Report, Evidence, Vol. I, p.270.

†† Monograph, p. 148, 409, 454.

‡‡ Acworth Com. Rept., Vol. III, para 5907.

¶ Acworth Com. Rept., Vol. III, para 6028.

जाता है। जैसे 'क' स्टेशन से बम्बई का भाड़ा रुई के लिये एक रुपया है तो उस रुई का भाड़ा बम्बई से 'क' स्टेशन तक २ रुपये हैं! अतएव विदेशों की अपेक्षा देश में भाव तेज होनेपर भी हम लोग बन्दरों से माल वापस मंगाकर लाभ नहीं उठा सकते! हाँ, जो व्यापारी रेलवे की कुटिल नीति से परचित हैं वे बन्दरों के निकटवर्ती किसी स्टेशन को माल भेजकर वहाँसे वांछित स्थान को भेज देते हैं, जिससे विशेष अधिक भाड़ा नहीं देना पड़ता।

भाड़े सम्बन्धी पक्षपात पूर्ण नीति का जहरीला फल यह हुआ है कि कच्चामाल दिनपर दिन अधिकाधिक जारहा है और तैयार माल विदेशोंसे अधिकाधिक आरहा है, जिससे दुर्भिक्षों की वृद्धि हो रही है, कृषि, स्वास्थ्य, सुख-समृद्धि, शान्ति और स्वतंत्रता पर भीषण आघात पहुंचा है, और देश का प्रत्येक अङ्ग जर्जरित हो गया है। इन बातों का विचार आगामी प्रकरणों में किया गया है। यहां केवल उद्योग-धन्धों के सम्बन्ध में विचार करना है। रेल-भाड़े की पक्षपात पूर्ण विषमता को लक्ष्य कर एक भारतीय अर्थशास्त्रज्ञ का कहना है कि 'यहाँ की रेलों ने देश के उद्योग-धन्धो को उत्तेजना देने के स्थान में उनका चिन्तनीय अधःपतन कर दिया है* ।' रेलवे के कारण देशी उद्योग-धन्धे विदेशियों की भयानक प्रतिद्वन्दता के जाल में फस गये हैं†। कुछभी हो, इसमें तो कोई संदेह नहीं कि रेलों की पक्षपात-नीति के कारण यहाँ के परम्परागत उद्योग-धन्धे सर्वथा नष्ट होगये हैं। जो

* Kale: Economics, p. 194.

† Cotton; New India, p. 103.

नवजात उद्योग-धन्धे हैं उनकी बहुत शोचनीय अवस्था हो रही है‡। जिस कच्चे माल की यहाँ के कारीगरों और कारखानों को आवश्यकता है, उसे रेलवे कम भाड़ा लेकर दूसरे देशों को भेज देती है*; जिसका फल यह है कि यहां वालों को विविध वस्तुएं तैयार करने के लिये यथेष्ट सामान नहीं मिलता; जो मिलता है, वह भाड़े की अधिकता के कारण बहुत महंगा। औद्योगिक कमोशन का कहना है कि "रेलें कच्चे माल को विदेश भेजने में और विदेशी वस्तुओं के प्रचार करने में सहायता देती हैं। जैसे चमड़े के लिये जो भाड़ा है उससे आधा बन्दरों के लिये लिया जाता है। इस लिये यहां के चमड़े तैयार करने के व्यवसाय को बहुत भारी धक्का लगा है। पर यहां का कच्चा चमड़ा मिलने से विदेशी व्यापारियों को अकथनीय लाभ हुआ है। इस सम्बन्ध में और भी कई उदाहरण दिये जासकते हैं। और वे सारे सर्वथा सत्य हैं। × × विदेशों को जाने वाले और वहां से आनेवाले माल के लिये कम भाड़ा लेना अनावश्यक है, इस लिये उसकी वृद्धि करना बहुत जरूरी है। + + बन्दरों का कम भाड़ा लेने से बन्दरों पर कारखानों की भरमार होगई है। आर्थिक दृष्टि से यह बहुत हानिकारक है†।"

इन बातों से स्पष्ट है कि विदेशों को जाने वाले और वहाँ से आने वाले माल के लिये जान बूझ कर इसलिये कम भाड़ा लिया जाता है कि देशी

‡ Shah: India Trade., p. 397--98.

* Acworth Com. Rept., Vol. III, para 4484.

† Industial Com. Report, paras 271--275.

वस्तुओं की प्रतिस्पर्धा में विदेशी वस्तुओं का विक्रय हो* । दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं कि कम भाड़े के रूप में विदेशी—विशेषतः अंग्रेज़ी—उद्योग-धन्धों को बाउंटी† (Bounty) या 'सबसीडी' (Subsidy) दी जाती है‡ । यह अन्याय है और है भयंकर अत्याचार । यह सहायता मुक्तद्वार-वाणिज्य-नीति (Free Trade) के सिद्धान्तों के प्रतिकूल है । यद्यपि भारत में विदेशी वस्त्रों पर आयात-कर (Import Duty) उक्तनीति के विरुद्ध नहीं था, क्योंकि वह राजकीय-आय की वृद्धि की आवश्यकता के कारण लगाया गया था, न कि यहां के उद्योग-धन्धों के संरक्षण के उद्देश से, तथापि उक्त नीति की शपथ देकर इंगलैंड के व्यवसायियों के चिल्लाहट करने पर आयात कर लेना छोड़ दिया गया । अत्यावश्यकता के कारण पुनः जब

---

* Acworth Com. Report, Vol. III, para 5370;
Banarjea: Fiscal Policy p. 209–10;
G. V. Joshi's Writings and Speehes p. 688.

† बाउंटी एक प्रकार का दान है । जो राज्य अपने देश के किसी उद्योग-धन्धे की उन्नति चाहता है, वह उस उद्योग-धन्धे के संचालकों को राज्यकोष से दान देकर उस उद्योग-धन्धे की उन्नति करता है । जैसे जर्मनी को बीटखांड़ का (Beet—एक प्रकार का मीठा और रसीला गाजर की शकल का फल) व्यवसाय । बाउंटी मिलने से इस व्यवसाय को बहुत उत्तेजना मिली—यह बहुत सस्ती हो गई जिससे विदेशों में, विशेषकर भारत में, इसका बहुत प्रचार हुआ ।

‡ M. C. Turner, Council Proceedings, 1902;
Acworth: Rys. and Traders, p. 9.

आयात-कर आरम्भ हुआ तब साथ २ यहाँ की मिलों के बने हुए कपड़े और सूत पर भी कर लगाया गया। उक्त नीति के नाम पर यह कर अब तक लग रहा है! इंगलैंड की औद्योगिक उन्नति के एकमात्र उद्देश्य से यहां की रेलें वहां से आने वाले और वहां जाने वाले माल के लिये जो कम भाड़ा लेती हैं, वह किस प्रकार मुक्त-द्वार-वाणिज्य-नीति के अन्तर्गत है यह परमात्मा जाने अथवा भारत को भाग्य-विधाता वर्तमान सरकार।

भारत के हित-चिन्तकों की धारणा है कि संरक्षण—Protection (विदेशी माल पर अत्यधिक कर लगा कर उस की मूल्य-वृद्धि करना)—से हमारे उद्योग-धन्धों को अद्भुत उत्तेजना मिलेगी। किन्तु अनेक कारण ऐसे हैं जिससे संरक्षण सफल नहीं हो सकता। "डम्पिङ्ग"* और विदेशी-पूंजी † के कारण तो संरक्षण का महत्व कम हो ही जाता है पर विदेशी वस्तुओं के लिये रेलों का भाड़ा कम होने से संरक्षण की असफलता प्रत्यक्ष है। रेलों द्वारा यहां के कच्चे माल के विदेशों को जाने में भी उत्तेजना मिलना संरक्षण की सफलता का

---

* अपनी वस्तुओं का विदेशों में प्रचार करने के लिये कुछ समय तक हानि सहकर भी उनको कम मूल्य पर बेचने को डम्पिङ्ग dumping कहते हैं।

† संरक्षण द्वारा निस्सन्देह विदेशी माल का आना रोका जा सकता है। किन्तु इसके द्वारा विदेशी पूंजी का बहिष्कार नहीं हो सकता। अर्थात् यदि विदेशी माल न आने दिया जायगा तो विदेशी व्यापारी यहां आकर कारखाने बना सकते हैं। हां, अन्य देशों में ऐसा नहीं हो सकता (देखो, १६ वां प्रकरण, दूसरा परिच्छेद)

बाधक है। कहने का तात्पर्य यह नहीं कि भारतीय औद्योगिक अभ्युदय के लिये संरक्षण अनावश्यक है। इंगलैंड, जर्मनी‡ जापान और अमेरिका आदि की आधुनिक आश्चर्य-जनक औद्योगिक अभ्युत्थान का आदि कारण संरक्षण ही है। अतएव सुप्रसिद्ध जर्मन-अर्थशास्त्री लिस्ट और मिल आदि अन्य लब्धप्रतिष्ठ अर्थशास्त्रज्ञों के मतानुसार भारत जैसे देश के अपरिपक्व उद्योग-धन्धों की उन्नति के लिये संरक्षण अनिवार्यतः अपेक्षित है*। किन्तु बात यह है कि 'संरक्षण' के द्वारा भारत में

‡ संरक्षण ने जर्मनी में जो विस्मयात्मक काम किया है उसका उल्लेख डावसन W. H. Dowson ने अपने 'The Evolution of Modern Germany' आदि ग्रन्थों में बहुत अच्छी तरह किया है।

* List: Economy, p. 93, 107, 144, 313; Ch. 16, 26–27; Mill: Economy, Bk. V, Ch. X, p. 556–57.

यद्यपि विदेशी वस्तुओं पर कर लगाने से उनका मूल्य अधिक होजाने के कारण उनके उपभोगी Consumers को हानि होती है, क्योंकि उसे मूल्य अधिक देना पड़ता है। किन्तु रहस्य यह है कि Power of producing wealth is infinitely more important than wealth itself. If a sacrifice of value is caused by protective duties it is made good by the gain of a power of production, which secures to the nation industrial independance. Defence is more important than opulance. (F. List) अर्थात् धन की तुलना में धन उत्पन्न करने की शक्ति अधिक मूल्यवान है। संरक्षण के कारण मूल्य अधिक देनेसे हानि होती है तो कोई चिन्ता नहीं। यह हानि धन उत्पन्न करने की शक्ति प्राप्त करने पर–देश

सफलता प्राप्त होने का मार्ग कण्टकाकीर्ण पड़ा हुआ है—रेलवे की पक्षपातपूर्ण नीति के कारण संरक्षण का अभीष्ट फल नहीं हो सकता$ ।(Protection being neutralised owing to infair Railway rates.—Fiscal Com. Report, para 133). यहाँ के उद्योग-धन्धों की उन्नति तो तब ही हो सकती है जब कि कच्चा माल बाहर न भेज कर उसे यहीं तैयार किया जाय, और उस तैयार-माल का लाभ भी यहीं रहे। जब तक रेलवे कच्चे माल को बन्दरों को भेजने में और विदेशी वस्तुओं को बन्दरों से लाने में कम भाड़े के रूप में सहायता और उत्तेजना देती रहेगी तब तक देशी व्यवसाय की उन्नति की आशा करना दुराशा मात्र है। जब तक रेलें विदेशी पूंजी से संचालित कारखानों के लिये कच्चा माल और वहाँ का तैयार माल देशीपूंजी से संचालित कारखानों की अपेक्षा कम भाड़े पर लेजाया-लाया करेगीं तब तक यह सम्भव नहीं कि 'भारतीय औद्योगिक उन्नति का लाभ यहां रह सके।

(क) बन्दरोंसे और बन्दरों तक कम भाड़ा लेनेके समर्थन में कहा जाता है कि 'बन्दरों को और बन्दरों से पूरे भरे हुए डिब्बे

के उद्योग-धन्धों का विकास होने पर—सम्यक प्रकार से पूरी हो जायगी। औद्योगिक अभ्युत्थान के कारण देश को अपनी आवश्यक वस्तुओं के लिये दूसरों पर अवलम्बित नहीं रहना पड़ेगा। यह कैसा अलभ्य लाभ होगा? दूसरे, वस्तुओं की मूल्याधिकता देश में ही कर रूप से रहेगी जिससे देश की बिलकुल हानि नहीं होगी और जो व्यक्तिगत हानि होगी वह भी अल्पकालीन होगी।

$ Raper: Ry. Transportation, p. 10;
Ghose; Ry Problems, p. 131;

आते जाते हैं और आवागमन दूरतक होता है। इस लिये कम भाड़ा लेने से भी रेलवे का अधिक लाभ है*।' भरे हुए और अधभरे डिब्बों के संचालन-व्यय में न्यूनाधिकता होना स्वाभाविक है। अर्थात् पूरेभरे डिब्बों का दूरके लिये, समीप के आवागमन की अपेक्षा, प्रतिमन प्रति मील कम भाड़ा लेना रेलवे के लिये अलाभप्रद नहीं है†। केवल बन्दरों को और बन्दरों से ही तो भरेहुए डिब्बों का आवागमन नहीं होता, तब केवल बन्दरों के लिये ही कम भाड़ा लेना किस प्रकार लाभप्रद और न्यायसंगत है यह समझ में नहीं आता। बरेली और कानपुर से भी देशी खाण्ड के भरे हुए डिब्बे जाते हैं, फिर क्यों नहीं उनके लिये विदेशी खाण्ड के समान भाड़ा लिया जाता?। हां, उक्त स्थानों से अनेक स्टेशनों को अधभरे भी डिब्बे जाते हैं। क्या बन्दरों से सर्वत्र और सर्वदा ही भरे हुए डिब्बे जाते हैं? दूसरी बात यह है कि बन्दरों से जो भाड़ा है, वह प्रति डिब्बे पर नहीं परन्तु प्रतिमन पर है। अर्थात् एक डिब्बे में जितना माल आसकता है, यदि उससे कम माल भेजा जाता है तो पूरे डिब्बे का भाड़ा नहीं लिया जाता। पूरे डिब्बे के लिये प्रतिमन प्रतिमील जितना भाड़ा है उतना ही १० बोरों के लिये है‡। इसलिये पूरे भरे हुए डिब्बों के आवागमन के नाम पर कम भाड़ा लेने वाले तर्क का क्या मूल्य है?

(ख) समीप के आवागमन की अपेक्षा दूर के आवागमन का संचालन-व्यय प्रतिमन प्रतिमील कम होता है। इसी कारण क्रमशः उतरता हुआ भाड़ा लिया जाता है। अर्थात् यदि

* Acworth Com. Report, Vol. I, para 149.

† Monograph, p. 273. ‡ p. 230.

माल एकही रेलवे पर ५०० मील जाता है तो पहली १०० मील का जितना भाड़ा है उससे कम दूसरी १०० मील का है। इसी प्रकार दूसरी से कम तीसरी का, तीसरी से काम चौथी का और चौथी से कम पांचवीं का (देखो, ११वां प्रकरण थ्रू रेट सम्बन्धी बिचार)। यदि बन्दरों से दूर-दूर तक माल जाता है तो उसके लिये उतरता-हुआ-भाड़ा है ही, फिर बन्दरों के लिये इस उतरते-हुए-भाड़े से भी कम भाड़ा लेना किस प्रकार लाभ दायक है और आन्तरिक आवागमन के लिये किस कारण नहीं ? बन्दरों के अलावा और स्थानों से भी दूर दूर तक माल जाता है। जैसे अहमदाबाद की मिलों का कपड़ा पेशावर और ट्रावनकोर तक और संयुक्तप्रान्त से अरहर की दाल मद्रास-प्रान्त तक जाती है। यद्यपि यह आवागमन भी दूरवर्ती है तथापि इसके लिये उतरते-हुए-भाड़े से कम भाड़ा नहीं लिया जाता। दूर के लिये उचित उतरते-हुए-भाड़े से कम भाड़ा लेना नज़दीक के आवागमन की अपेक्षा अधिक लाभप्रद नहीं हो सकता। एक उदाहरण देखिये*। १ पाई (समीप के आवागमन के लिये भाड़ा) प्रति आठ मन प्रतिमील के हिसाब से ५०० मन (एक डिब्बा) का १७५ मील का भाड़ा ५६ रुपये होता है। १७५ मील जाने में २ दिन, आने में दो दिन, और मालके लदने में एक दिन, उतारने में एक दिन। अर्थात् ६ दिन में एक डिब्बे को ५६ रुपये आय हुई। और प्रति वर्ष ३४१६ रुपये। १ पाई (दूर के लिये भाड़ा) प्रति १४ मन प्रतिमील के हिसाब से ५०० मन का भाड़ा ७०० मील के लिये १३० रुपये होते हैं। ७०० मील जाने में ७ दिन, आने में ७ दिन और लदने और उतारने में वही २ दिन। अर्थात् १६ दिन में

* Ghosh: *Ry.* Economics, Vol. I, p. 40–41.

प्रति डिब्बे को १३० रुपये की आय हुई। और प्रति वर्ष २९९० रुपये ! दूर के लिये कम भाड़ा लेने से ४२६ रुपये प्रति डिब्बा प्रतिवर्ष कम आय हुई। ऐसे और भी कई उदाहरण हैं‡।

आन्तरिक आवागमन के समीपस्थ होने का कारण भी रेलवे हो है। रेलें उतरते-हुए-भाड़े से भी कम भाड़ा लेकर कच्चे माल को विदेशों को भेजने में, और विदेशी वस्तुओं को देश के कोने कोने में पहुँचाने में उत्तेजना देती हैं, अतएव यहां के उद्योग-धन्धों का विकास नहीं होता। इस अभाव के कारण ही आन्तरिक आवागमन की सीमा सन्निकट हो गई है। नहीं तो वह बन्दरों की अपेक्षा कहीं अधिक दूर हो। यदि हमारी आवश्यक वस्तुएँ विदेशों से न आयें और उनका भिन्न भिन्न बन्दरों द्वारा उनके (बन्दरों के) समीपवर्ती प्रान्तों में वितरण न हो तो देश के उद्योग-धन्धे प्रफुल्लित हो जायं और आन्तरिक आवागमन की सीमा काश्मीर से कन्याकुमारी तक और सिंध से आसाम तक विस्तृत हो जायगी।

एक सरकारी लेखक का कहना है कि '१९०५ में बन्दरों से खाण्ड का भाड़ा बहुत कम कर देने के कारण ही गत वर्षों में जावा खाण्ड का आयात बहुत बढ़ गया है। जावा में खाण्ड बहुत सस्ती बनती है। युद्ध के पहले वहां ५॥ रुपये प्रति मन का भाव था और कलकत्ते में ११। रुपये। इस कारण जावा वाले बहुत लाभ उठा रहे थे। आश्चर्य तो यह है कि उन्हें इतना लाभ होने पर भी यहां की रेलें कम भाड़ा लेकर उन्हें सर्वथा अनुचित सहायता देती हैं और देशी उद्योग-धन्धों को धक्का लगाने के अतिरिक्त अपनी (रेलवे की) आय में भी

‡ Monograph, p. 275.

क्षति पहुंचा रही हैं ! यदि रेलें जावा खाण्ड़ के लिये अधिक से अधिक भाड़ा भी लें, तो भी रेलों की कोई हानि नहीं। बिहार और संयुक्त प्रांत से देशी खाण्ड़ को कलकत्ते पहुंचाने के लिये कम भाड़ा भी लिया जाय तो रेलवे का लाभ है। कम भाड़े के कारण खाण्ड के कलकत्ते जाने में उत्तेजना मिलेगी और पश्चिम से जो खाली डिब्बे कलकत्ते जाते हैं, वे खाली न आकर देशी खाण्ड़ से भरे हुए कलकत्ते पहुंचेंगे, जिससे रेलवे को अकथनीय लाभ हो सकता है† ।'

इन बातों से स्पष्ट है कि बन्दरों के लिये और बन्दरों से कम भाड़ा लेने के समर्थन में जो कुछ कहा जाता है, वह बिलकुल थोथी बातें हैं। वास्तव में तो देशी उद्योग-धन्धों की वृद्धि न होने देने के लिये तथा ऐसे ही अन्य कारणों से ही बन्दरों के आवागमन के लिये कम भाड़ा है ! अन्य देशों में ऐसा जुल्म नहीं हो सकता। वहाँ की रेलें देशी उद्योग-धन्धों की उन्नति के उद्देश्य से विदेशी माल के लिये बहुत अधिक भाड़ा लेती हैं, और यह सर्वथा उचित समझा जाता है। यूरुप की रेलों के सम्बन्ध में जो सम्मेलन (Convention on the international regime of continental Railways of Europe) हुआ था उसकी रिपोर्ट से प्रत्यक्ष है कि 'देशी उद्योग-धन्धों की उन्नति के लिये यदि वस्तु विशेष का कम भाड़ा और विदेशी वस्तुओं के लिये अधिक भाड़ा लिया जाय तो कुछ अनुचित नहीं है‡ ।' अमेरिका के रेलवे-संचालक कहते हैं कि 'देश के उद्योग-धन्धों आदि के कारण रेलवे का बहुत लाभ

† Monograph, p. 229–231.

‡ Ghose: Ry. Problems, p. iii, iv.

है। अतएव रेलवे के लिये यह परमावश्यक है कि वह देश के औद्योगिक स्थानों को और वहां से माल का जो आवागमन हो उसके लिये कम भाड़ा ले—यह विचार न करे कि 'माल का आवागमन समीपवर्ती है या दूरवर्ती, माल कम आता जाता है अथवा अधिक'। रेलवे के द्वारा देश का शिल्प वाणिज्य किस प्रकार समुन्नत हो सकता है, इस समुन्नति के कारण रेलवे की आय वृद्धि किस तरह हो सकती है, इन बातों का विचार और खोज करने के लिये वहां के रेलवालों ने बहुत अच्छा प्रबन्ध कर रक्खा है*। वहाँ की रेलों के विशेष कर्मचारी उद्योग-धन्धों की उत्पत्ति और वृद्धि के लिये देशवासियों को प्रोत्साहित करते हैं—उन्हें शिल्प-वाणिज्य आदि की उन्नति से होने वाले लाभ समझाते हैं। सारांश यह है कि अमेरिका आदि देशों के रेलवे संचालक देश के उद्योग-धन्धों के अभ्युदय के लिये सदैव सजीव रहते हैं और प्राणपन से प्रयत्न करते हैं। इसके सिवा कृषि सम्बन्धी विविध ज्ञातव्य बातों से और अन्यान्य अनेक अर्थशास्त्रीय समस्याओं से जनता को भली भांति अभिज्ञ करते हैं†। वहाँवालों का यह कार्य केवल देशवात्सल्यता से ही प्रेरित होकर नहीं है, परन्तु इससे उनका—रेलवे वालों का—अपना भी बहुत लाभ है।

यदि वहां की रेलें कम भाड़ा लेकर देशी कला-कौशल, शिल्प-वाणिज्य और उद्योग-धन्धों के अभ्युत्थान में सहायता दें तो देश का पुनरुद्धार होने के अतिरिक्त रेलवे को भी बहुत

---

* Meyer: Ry. Legislation, p. 34.

† Harpers Magazine, Feb. 1901.

लाभ हो सकता है। एक रेलवे-विशारद का कहना है कि रेलवे की आय का मूल-आधार देश के उद्योग-धन्धे ही हैं*। उद्योग-धन्धों की वृद्धि होने से कारखानो के बनाने के लिये आवश्यक सामान लाने में; उनके बन जाने पर कोयला और कच्चा माल, उनकी तैयार चीजें तथा अन्यान्य वस्तुएँ, जैसे आटे की मिलों से भूसा, तेल की मिलों से खली लेजाने में, और मज़दूरों के आवागमन से रेलों को निरन्तर भाड़ा मिलता रहता है। देशी उद्योग-धन्धों की उन्नति से रेलवे को भाड़े के रूप में लाभ होने के अतिरिक्त रेलवे का यह भी एक कैसा लाभ है कि रेलवे के लिये आवश्यक चीजें देश में ही तैयार होने लगती हैं, जिससे न तो विदेशी वस्तुओं का अधिक मूल्य देना पड़ता है और न विदेशों पर अवलम्बित ही रहना पड़ता है। १६२३-२४ के टेरिफ-बोर्ड के सम्मुख साक्षी देते हुए रेलवे-मैनेजरों ने स्वीकार किया है कि भारत में इस्पात के व्यवसाय की उन्नति होने से रेलवे को बहुत लाभ हो सकता है।

भाड़े का नियंत्रण।

इंगलैंड में वस्तुओं का भाड़ा व्यापार-समिति—Board of Trade—की इच्छानुसार लिया जाता है (English Ry. Act. 1888, Sec. 24)। यहां के रेलवे-एक्ट की धारा ४७ के अनुसार जो नियम बने हैं उनमें 'वस्तुओं का वर्गीकरण Classification और भाड़े की दर कौन निश्चित करेगा' इसकी कुछ व्यवस्था नहीं है। सरकार-संचालित रेलों के लिये भाड़े की दर रेलवे बोर्ड निश्चित करता है। प्रतिनिधि कम्पनी-संचालित रेलवे के लिये रेलवे-बोर्ड ने भिन्न भिन्न वर्ग की वस्तुओं के लिये अधिक

* Raper; Ry. Transportation, p. 25.

से अधिक और कम से कम भाड़ा नियुक्त कर दिया है। पृथक् पृथक् वर्ग के लिये जो कम-से-कम और अधिक-से-अधिक भाड़ा है, उन दो भाड़ों के अन्तर्गत न्यूनाधिक भाड़ा लेने का कम्पनियों को अधिकार है। अर्थात् कम्पनियाँ एक ही वस्तु के लिये न्यूनाधिक भाड़ा ले सकती हैं। जैसे खांड़ दूसरे वर्ग में है। इस वर्ग की वस्तुओं के लिये सरकारने अधिक से-अधिक आधा पाई, और कम-से-कम दसांश पाई प्रतिमन प्रतिमील का भाड़ा निश्चित कर दिया है। अतएव कम्पनियाँ देशी खाण्ड के लिये अधिक-से-अधिक (आधा पाई) और विदेशी खाण्ड के लिये कम-से-कम (दसांशपाई) ले सकती हैं!

सरकार की प्रतिनिधि कम्पनियों से जो शर्तें हैं उनके अनुसार सरकार प्रत्येक वर्ग की वस्तुओं के लिये कम-से-कम और अधिक-से-अधिक भाड़ा नियुक्त करने के लिये बाध्य है। इन्हीं शर्तों के आधार पर सरकार का कहना है कि 'देशी और विदेशी वस्तुओं के लिये समान भाड़ा लेने के लिये कम्पनियों को विवश नहीं किया जा सकता।' सरकार की इस दलील की कुछ कीमत नहीं, क्योंकि कई प्रतिनिधि कम्पनियों के साथ सरकार की यह भी शर्त है कि कम्पनियां पक्षपात नहीं कर सकेंगी। कम्पनियों का अमुक कार्य अनुचित पक्षपात है, इसका निर्णय सरकार पर निर्भर है *। प्रतिनिधि कम्पनियों के पक्षपात को रोकने का एक और साधन सरकार के पास है। वह है कम्पनियों के बोर्डों में सरकारी डाइरेक्टर का सर्वोपरि अधिकार Power of Veto। किन्तु सरकार ने इस अधिकार का अद्यापि कभी उपयोग नहीं किया†। सत्य

* Monograph, p. 245–55.

† Acworth Com. Report, Vol. IV, p. I.

तो यह कि जब सरकार-संचालित रेलों पर ही अन्याय हो रहा है—देशी और विदेशी वस्तुओं के लिये पक्षपात किया जाता है—तब यह कोई प्रश्न नहीं कि कम्पनियों के पक्षपात को रोकने का अधिकार सरकार को है अथवा नहीं ?

इंगलैंड आदि देशों में सरकार द्वारा या व्यापार-समिति द्वारा भाड़े का नियंत्रण होता है। इंगलैंड में यह कानून भी है कि 'रेलवे एक ही वस्तु के लिये दूर की अपेक्षा समीप का प्रतिमन प्रतिमील अधिक भाड़ा नहीं ले सकती [English Ry. Act, 1888, Sec. 27 (3)] अमेरिका में भी ऐसा ही कानून है (Interstate Commerce Law, Sections 2-4)। यहां के एक्ट में पाक्षपात रोकने का जो नियम है वह केवल इतना ही है कि 'कोई रेलवे किसी व्यक्ति विशेष के साथ अथवा किसी वस्तु विशेष के लिये पक्षपात नहीं कर सकेगी [रेलवे-एक्ट धारा ४२ (२)]'। यह नियम इंगलैंड के रेलवे एक्ट की २५ वीं धारा का अक्षरशः अवतरण है। वहाँ इस नियम का पालन किया जाता है पर यहाँ नहीं। नियम-भङ्ग करने के अपराध के लिये यहां जो दण्ड-व्यवस्था है वह व्यवहारोपयोगी नहीं, जैसा कि आगे विचार किया है। इंगलैंड आदि को रेलों के लिये दण्ड का डण्डा सदैव तैयार रहता है।

पक्षपात की परिभाषा करते हुए इंगलैंड के रेलवे एक्ट की धारा २७(२) और यहाँ के रेलवे-एक्ट की धारा ४३(२) में लिखा है कि 'यदि सर्व साधारण के हित के लिये अधिकान्तर की अपेक्षा न्यूनान्तर के लिये अधिक भाड़ा लिया जायगा तो वह अनुचित पक्षपात नहीं समझा जायगा'। इंगलैंड के एक्ट की उक्त धारा में यह स्पष्ट लिखा है कि 'विदेशी वस्तुओं के लिये कम भाड़ा नहीं लिया जासकता'। यद्यपि यहां के एक्ट

की उक्त धारा इंगलैंड के एक्ट की धारा का अवतरण है तथापि यहां वाले एक्ट में उक्त अंश (विदेशी वस्तुओं के लिये कम भाड़ा नहीं लेना) जानबूझकर नहीं जोड़ा गया है!

इंगलैंड और अमेरिका में विदेशी वस्तुओं के लिये कम भाड़ा भी लेना कई कारणों से न्ययानुमोदित समझा जाता है:-

(क) इंगलैंड के बिरकनहेड बन्दर से लंडन तक (१६० मील) अमेरिकन मांस के लिये २५ शिलिंग प्रति टन भाड़ा है। इस बन्दर से लंडनगामी जो रेलपथ है, उसी मार्ग में चेशायर आदि हैं। इन स्थानों से लंडन (१५० मील) के लिये मांस का भाड़ा ४० शिलिङ्ग प्रति टन है। अतएव कहा जा सकता है कि अमेरिकन माँस के लिये—विदेशी वस्तुओं के लिये—देशी मांस की अपेक्षा कम भाड़ा लेना प्रत्यक्ष पक्षपात है। वास्तव में बात यह है कि चेशायर से माल लेजाने के लिये केवल रेलवे-साधन है, पर बिरकनहेड से जलमार्ग द्वारा भी माल जा सकता है। बिरकनहेड से लंडन का २५ शिलिङ्ग से अधिक भाड़ा करने से अमेरिकन मांस तो (जल मार्ग का २५ शि० के लगभग भाड़ा होने के कारण) जलमार्ग से लंडन पहुँच ही जायगा। पर हानि होगी रेलवे की अथवा चेशायर के व्यापारियों की! बिरकनहेड से लंडन तक १०० टन मांस लाने में रेलवे को ८५ पौंड लाभ होता है* ! यदि अमेरिकन मांस जल मार्ग से लंडन जायगा तो रेलवे को इस लाभ से हाथ धोना पड़ेगा। और रेलवे इस क्षति को चेशायर आदि के लिये भाड़ा बढ़ा कर पूरा करेगी। इस लिये चेशायर वालों को अपने मांस को लंडन पहुंचाने के

* Acworth: Ry. Economics, p. 55-56.

लिये और भी अधिक भाड़ा देना पड़ेगा। जिसका दुष्परिणाम यह होगा कि चेशायर के मांस का मूल्य बढ़ जायगा और विदेशी मांस की प्रतिस्पर्धा में वह कम बिकने लगेगा। अतएव चेशायर आदि के मांस के व्यवसाय के लिये—देशी व्यापार की उन्नति के लिये—यह अत्यावश्यक है कि बिरकनहेड से २५ शिलिङ्ग के हिसाब से ही भाड़ा लिया जाय। यदि कराची से कलकत्ते का किसी विदेशी वस्तु के लिये जहाज-भाड़ा २ रुपये प्रतिमन है, तो यद्यपि कराची से कलकत्ते तक उस वस्तु का रेलभाड़ा २ रुपये होना बहुत कम है—आन्तरिक आवागमन की अपेक्षा बहुत कम है—तथापि रेल भाड़ा २ रुपये लेना अनुचित पक्षपात नहीं; उसी प्रकार लाभप्रद है जैसे बिरकनहेड से लंडन का। यहाँ तो बन्दरों से देश के भिन्न भिन्न स्थानों कोही माल जाता है। नकि दूसरे बन्दरों को, अतएव इस आवागमन के लिये कम भाड़ा लेना निस्सन्देह अनुचित पक्षपात है।

(ख) इंगलैंड आदि में प्रतिस्पर्धा के कारण रेलवे कम्पनियां एक व्यापारी से दूसरे व्यापारी की अपेक्षा प्रतिमन प्रति-मील कम भाड़ा लेसकती हैं। अर्थात् 'क' रेलवे 'अ' व्यापारी से १०० मील का भाड़ा २५ शिलिङ्ग लेती है, पर उसी 'क' रेलवे द्वारा 'ब' व्यापरी से १०० मील के लिये केवल १५ शिलिङ्ग ही लिया जाना उसी अवस्था में पक्षपात नहीं समझा जायगा, जब कि 'ब' व्यापारी के माल को गन्तव्य स्थान तक पहुँचाने के लिये एक दूसरा प्रतिस्पर्धी 'ख' रेलपथ भी है, और इस 'ख' रेलवे का भाड़ा 'क' से कम है। यदि 'क' रेलवे 'ब' व्यापारी का माल लेजाना चाहेगी तो उसे 'ब' के लिये अपना भाड़ा 'ख' की अपेक्षा कम करना पड़ेगा। यह कम किया हुआ भाड़ा उसके ('क' रेलवे के) मामूली भाड़े से—'अ' व्यापारी से

जो भाड़ा लिया जाता है उससे—अवश्य कम होगा। अतएव माल को 'ख' रेलवे द्वारा जाने से रोकने के लिये यदि 'क' रेलवे 'अ' को अपेक्षा 'ब' से कम भाड़ा लेतो है तो कुछ अनुचित नहीं—पक्षपात नहीं। यहाँ बन्दरों से एक ही स्थान को इंगलैंड आदि के समान दो-दो तीन-तीन रेलमार्ग नहीं हैं। जिन दो चार स्थानों को दो-दो रेलपथ गये हैं, उनमें पारस्परिक स्पर्धा नहीं (देखो, ११ वां प्रकरण), इसलिये यहाँ के बन्दरों से जो कम भाड़ा लिया जाता है उसका कारण प्रतिस्पर्धा नहीं बताया जासकता।

(ग) संचालन-व्यय की न्यूनाधिकता के कारण भी अधिकान्तर की अपेक्षा अल्पान्तर का अधिक भाड़ा लिया जा सकता है*। अर्थात् एक रेलवे का एक व्यापारी से दूसरे व्यापारी की अपेक्षा एक ही प्रकार की वस्तु के लिये (न कि एक ही मार्गसे) कम भाड़ा लेना तबही समुचित हो सकता है जब कि किसी कारण से पहले व्यापारी की अपेक्षा दूसरे व्यापारी के माल को लेजाने में संचालन-व्यय अधिक होता है। किन्तु यहाँ जो बन्दरों के लिये और बन्दरों से कम भाड़ा लिया जाता है उसका कारण संचालन व्यय की न्यूनता नहीं है। यहाँ तो बन्दरगामी रेलपथ के मध्य में जो स्टेशनें हैं उनके लिये भी बन्दरों की अपेक्षा अधिक भाड़ा लिया जाता है। जैसे लाहौर से कलकत्ते का जितना भाड़ा है उससे कहीं अधिक भाड़ा लाहौर से मुगलसराय का है! यदि किसी बन्दरगामी रेलवे का संचालन-व्यय अधिक है, तो भी बन्दरों के लिये तो कम भाड़ा है। जैसे

* Williams; Ry. Economics, p. 212–213;
Acworth; *Ry*. Economics, p. 120-121;
Pigou; Economics. p, 257–59.

अनेक कारणों से ई० बी० का संचालन-व्यय अधिक है, परन्तु बंगाल के देहातों से इस रेलवे द्वारा जो जूट कलकत्ते जाता है, उसके लिये भाड़ा बहुत कम है*। इस रेलवे पर अधिकतर आवागमन जूट का ही होता है, इसलिये जूट के लिये कम भाड़ा लेने से रेलवे को सदैव हानि सहनी पड़ती है। जूट के व्यापारियों को बहुत लाभ होता है—१९२०-२१ में तो कई जूट मिलों को ४००-५०० प्रति सैकड़ा लाभ हुआ था ! जूट के लिये अधिक भाड़ा भी लिया जाय तो भी जूट वालों को कोई विशेष हानि नहीं है। वास्तव में बात यह है कि जूट का प्रायः सारा व्यवसाय गोरों के हाथ में है। बहुत कुछ जूट तो इन्हीं की मिलों के लिये इंगलैंड चलाही जाता है, पर कलकत्ते की जूट मिलें भी गोरों के आधीन हैं। अधिक भाड़ा लेने से उनके अनल्प लाभ में थोड़ी क्षति होना स्वाभाविक है, अतएव रेलवे हानि सहकर भी गोरे व्यापारियों के लाभ के लिये कम भाड़ा लेती है।

ऊपर की बातों से यह तो स्पष्ट है कि जिन जिन कारणों से इंगलैंड आदि में अधिकान्तर की अपेक्षा स्वल्पान्तर के लिये अधिक भाड़ा लेना न्यायसंगत समझा जाता है उन कारणों द्वारा यहां बन्दरों से और बन्दरों के लिये कम भाड़ा नहीं लिया जाता। यदि हम बहस के लिये यह भी मानलें कि इंगलैंड आदि में बन्दरों के लिये कम भाड़ा है तो भी यहां बन्दरों के लिये कम भाड़ा लेना उचित नहीं। एकदेश का जिस बात से लाभ है दूसरे देश का उससे अनिवार्यतः लाभ नहीं होसकता। इंगलैंड से बना हुआ माल जाता है, उसे बन्दरों तक पहुंचाने के

* Monograph, p. 352.

लिये कम भाड़ा लेना आवश्यक है, क्योंकि भाड़ा कम होने से वस्तुएँ सस्ती होंगी जिससे विदेशों में उनकी बिक्री अधिक होगी। जो माल वहाँ (इंगलैंड में) बाहर से आता है वह प्रायः कच्चा होता है। उसे बन्दरों से कारखानों तक पहुंचाने के लिये भी कम भाड़ा लेना बहुत ज़रूरी है, जिससे कारखानों में बनी हुई वस्तुएँ महँगी नहों। यहाँ विदेशों से बनाहुआ माल आता है, जिसके आने से देश के उद्योग-धन्धों आदि का विध्वंस होता है। जो माल यहाँ से जाता है, वह कच्चा होता है, जिस के निर्यातन से देश के उद्योग-धन्धे बुभुक्षित रहते हैं। अथवा जो अन्न जाता है उसके निर्गम के कारण देशवासी भूखों मरते हैं और अन्यान्य अनेक भीषण दुष्परिणाम होते हैं (देखो १४ वां, १५ वां और १६ वां प्रकरण)। निष्कर्ष यह है कि इंगलैंड आदि में अधिकान्तर की अपेक्षा न्यूनान्तर का जो अधिक भाड़ा है, वह देश-हित की दृष्टि से बहुत सोच समझ कर लिया-दिया जाता है। यहाँ बन्दरों के लिये जो कम भाड़ा है, वह अंशतः भी देश-हितकारी नहीं है, प्रत्युतः देश के हित का घातक है और रेलवे एक्ट के अनुसार प्रत्यक्ष पक्षपात है। १८८७ की सरकारी विज्ञप्ति में यह स्वीकार किया गया है कि अधिकान्तर की अपेक्षा न्यूनान्तर के लिये अधिक भाड़ा लेना भारत में निस्सन्देह अनुचित पक्षपात है*।

रेलवे कमीशन।

अब यह प्रश्न होता है कि रेलवे के पक्षपात को कानून द्वारा क्यों नहीं दमन किया जाता? अमुक कार्य

* P.W.D., Ry. Circular No.1446-R.T.of 20-12-18.87

पक्षपात पूर्ण है अथवा नहीं, इसका निर्णय करने के लिये, पक्षपात प्रमाणित होने पर उसको रोकने और उसके लिये रेलवे को दण्ड देने के लिये रेलवे-एक्ट में जो साधन है वह अपर्याप्त और अनुपयुक्त है। रेलवे एक्ट की धारा २८वीं के अनुसार पक्षपात का निर्णय करने के लिये तीन पुरुषों की एक अदालत—कमीशन†—नियुक्त की जाती है। जिस किसी को रेलवे के पक्षपात के कारण हानि पहुँचे, वह कमीशन की नियुक्ति के लिये वाइसराय से प्रार्थना कर सकता है। इस पर यदि वाइसराय को आवश्यकता प्रतीत होगी तो वे कमीशन नियुक्त करेंगे, अन्यथा नहीं (धारा २६, रेलवे एक्ट)। अतएव भारत के हित के लिये कमीशन का नियुक्त होना बहुत कठिन है। यदि कमीशन नियुक्त हो जाय तब भी संतोषजनक फल नहीं हो सकता। कमीशन द्वारा न्याय होना मृगमरीचिका से जल प्राप्त करने के समान है। जिस विषय में इंगलैंड और भारत का हित-विरोध है उस विषय में आज-कल न्याय स्वप्न की सम्पत्ति है*। कमीशन के तीन

---

† हाई कोर्टों को दीवानी मुकद्दमों (Original Civil Suits) के सम्बन्ध में जो अधिकार हैं, वे अधिकार इस कमीशन को हैं। कमीशन के निर्णय की अपील कानूनी त्रुटियों Points of Law के सम्बन्ध में हाईकोर्ट में हो सकती है (रेलवे एक्ट, धारा ३०, ३१)।

* सर नायर का मुकदमा ज्वलन्त और ताजा उदाहरण है। जस्टिस मेक्कार्डी ने अपने रंग-ढंग से सर ओडायर के प्रति जो घृणित पक्षपात प्रदर्शित किया, उससे इंगलैंड के भी अनेक लब्धप्रतिष्ठ लोगों का हृदय कम्पित हो गया और

सदस्यों में एक का भी भारतवासी होना अनिवार्य नहीं। तीन में एक जज होगा। यह गौराङ्ग ही होगा, क्योंकि रेलवे एक्ट की धारा २६ में लिखा है कि उसी जज को नियुक्त किया जाय जिसे गोरों के अपराधों का निर्णय करने का अधिकार है। फौजदारी कानून के अनुसार भारत में गोरों के अपराध का विचार प्रायः गोरे ही कर सकते हैं (धारा ४४४* जाब्ता फौजदारी Criminal Procedure Code)। दूसरा सदस्य रेलवे विशारद होगा। रेलवे-विशारद या तो रेलवे-बोर्ड के सदस्य हैं अथवा रेलों के मैनेजर या एजेंट। ये सब गोरे हैं। अर्थात् दूसरा सदस्य अनिवार्यतः गोरा ही होगा। यदि तीसरा भारतीय हो तो भी कोई संतोष की बात नहीं। जो भारतीय होगा वह या तो सरकारी कर्मचारी होगा अथवा 'जी हजूर' के समुदाय का प्राणी विशेष। कोई प्रजा प्रतिनिधि भी नियुक्त कर दिया गया तो गोरों की पक्ष-प्रबलता—बहुमत—के कारण उसका विरोध अरण्य-रोदन के अतिरिक्त और क्या हो सकता है?

'कमीशन का खर्च कौन दे' इस प्रश्नका निर्णय कमीशन की इच्छा पर निर्भर है। कमीशन के द्वारा प्रार्थी के पक्ष में निर्णय होने की कोई सम्भावना नहीं, जैसा कि कमीशन के संगठन से

उन्हों ने हृदय से दुःख प्रकट किया है। यहां तक कि इंगलैंड के सुविख्यात मि० लैंसवरी ने पार्लियामेंट में यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि मि० मेकार्डी न्यायाधीश के पद के योग्य नहीं हैं।

* Racial Distinctions कमेटी की अनुमति के अनुसार इस नियम को कुछ शिथिल कर दिया गया है। देखो, Racial Distinction Act XII of 1923.

सुस्पष्ट है। अतएव पराजित व्यक्ति को—प्रार्थी को—ही व्यय-भार सहना पड़ेगा। मि० रोबर्टसन का कहना है कि 'कमीशन की नियुक्ति के लिये प्रार्थना करना बहुत व्ययसाध्य है। इसी कारण आज तक कमीशन नियुक्त नहीं हुआ *! इंगलैंड में कमीशन का सारा व्यय वहाँ की सरकार देती है [इंगलैंड के रेलवे एक्ट (१८८८) की धारा २२]। आकवर्थ कमेटी का कहना है कि 'पक्षपात आदि से सर्व साधारण की रक्षा होने का रेलवे एक्ट में जो विधान है वह नाम मात्र का है। पक्षपात को रोकने का जो उपाय उक्त एक्ट में है उसका उपयोग करने के लिये यह आवश्यक है कि प्रत्येक अभियोग के विचार के लिये एक विशेष अदालत नियुक्त की जाय। यहकार्यक्रम इतना जटिल और कष्ट-साध्य है कि आजतक इस प्रकार की कोई अदालत नियुक्त ही नहीं हुई (रिपोर्ट पैरा १४६)। इंगलैण्ड में एक स्थायी कमीशन है और भाड़े के नियन्त्रण के लिये १९१९से एकरेलवे-मंत्री और नियुक्त हुआ है Minister of Transport Act, 1919)। भाड़े के नियंत्रण और भाड़े सम्बन्धी बातों के निर्णय के लिये १९२१ के रेलवे एक्ट के अनुसार एक स्थायी कोर्ट—रेट्स-ट्रिबूनल Rates Tribunal —और स्थापित हो गया है(English Ry. Act.1921, Sec. 20) अमेरिका में भी स्थायी कमीशन है। वहाँ के न्यायालयों में भी रेलवे के पक्षपात का निर्णय हो सकता है (U. S. A.'s Ry. Act Sec. 9 & 12)। फ्रान्स, जर्मनी और इटली आदि में भी देशहित के लिये रेलवे को बाध्य किया जाता है। इन देशों में रेलवे के पक्षपात आदि का निर्णय करने और उसे रोकने की बहुत अच्छी व्यवस्था है†। आकवर्थ कमेटी का अनुरोध है कि

* Robertson's Report, para 61.

† Raper; Ry. Transportation, p. 87, 95, 96, 129, 172.

'भाड़े के नियंत्रण के लिये यहां भी एक स्थायी रेट्स-ट्रिबूनल आवश्यक है।' बड़ी व्यवस्थापक सभा (State council) में १८-२-१९२४ को एक प्रश्न के उत्तर में कहा गया कि 'रेट्स ट्रिबूनल की स्थापना के सम्बन्ध में विचार हो रहा है। कमेटियों की देशहितकारी सिफारिशें प्रायः विचाराधीन ही रहती हैं—कभी कार्य में परिणत नहीं की जातीं!

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि प्रथम तो इङ्गलैंड आदि के समान यहाँ कोई ऐसा प्रबल विधान नहीं जिससे रेलवे का भाड़ा देशहित की दृष्टि से नियंत्रित किया जासके। दूसरी बात यह है कि यद्यपि सरकार ऐसा कर भी सकती है तथापि वह इस विषय में कुछ हस्तक्षेप नहीं करती! अतएव रेलें निर्भय हो पक्षपात कर रही हैं। Armgaard Karl Graves ने अपनी The Red Secrets of the Hohenzollerns* नामक पुस्तक में लिखा है कि 'जर्मनी की सरकारी-रेलों का संचालन देश हित की दृष्टि से होता है, नकि देश को लूटने के लिये'। बेलिजयम आदि में भी जहाँ सरकारी-रेलवे है वहां रेलवे का उपयोग देश के वाणिज्य-व्यवसाय और उद्योग धन्धों आदि की उन्नति के लिये होता ही है, पर इंगलैंड-अमेरिका आदि देशों में जहां रेलें कम्पनियों की सम्पत्ति है वहाँ भी कम्पनियां सर्व साधारण का हितचिन्तन करती हैं। भारत में यद्यपि प्रायः सारी रेलें सरकारी अथवा सर्व साधारण को सम्पत्ति है, तथापि अंग्रेज-सरकार British Government की भयंकर अर्थ-नीति के कारण यहां की रेलों से देश का कुछ भी भला नहीं होता; उलटा भाड़े की पक्षपात पूर्ण विषमता के कारण भारत गारत होगया—भारत का अनल्प अहित हुआ और हो रहा है।

* Ghose; Ry. Problems, p. X.

चौदहवां प्रकरण।

व्यापारोन्नति।

अन्य देशों में रेलवे के कारण देशी और उसके अङ्गभूत विदेशी व्यापार (बाह्य-व्यापार—विदेशों के साथ व्यापार) की बहुत उन्नति हुई है। यहां देशी व्यापार की समुन्नति का तो कोई प्रश्न नहीं—जिस देश में उद्योग-धन्धों को स्थान नहीं, वहां देशी व्यापार उद्भव ही कैसे हो सकता है। जो देशी व्यापार दीख रहा है, वह वास्तव में विदेशी व्यापार का ही एक अङ्ग है। जो व्यापारिक उन्नति दीख रही है वह वास्तव में विदेशी व्यापार के ही कारण है। रेलों ने कम भाड़ा लेकर इस व्यापार की वृद्धि में जो अनिर्वचनीय सहायता दी है, वह विगत प्रकरण से स्पष्ट है। यहां की रेलों के गुणगान-गायकों का यह कहना अक्षरशः सत्य है कि 'रेलों के कारण भारत में विदेशी व्यापार की आशातीत उन्नति हुई है।' इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि सन् १८४८ में १२-१३ करोड़ का माल यहां से गया था, पर रेलों के निर्माण होने के कारण १८५६ में २४-२५ करोड़ गया। १८४८ में १० करोड़ का माल आया था पर १८५६ में २५ करोड़ का आया। १८६० में १००० मील, १८७० में ५,०००, १८८० में ९०००, १८९० में

१६५००, १६०० में २४५००, १६१० में ३२०००, १६१५ में ३५०००, १६२० में ३६००० मील (युद्ध के कारण अधिक वृद्धि नहीं हो सकी) रेलवे थी और अब (१६२४ में) ३८००० मील है। इसी क्रम से १८६५ से १८७० तक प्रतिवर्ष ८७॥ करोड़ रुपये, १८७५ से १८८० तक प्रति वर्ष १०० करोड़, १८८५ से १८६० तक प्रति वर्ष १५० करोड़, १८६५ से १६०० तक प्रति वर्ष १८० करोड़, १६०० से १६०५ तक प्रतिवर्ष २१० करोड़, १६०५ से १६१० तक प्रतिवर्ष २८५ करोड़, १६१० से १६१४ तक प्रति वर्ष ३७५ करोड़, १६१३-१४ में (युद्ध के पूर्व) ४४० करोड़, १६१६-२० (युद्ध के पश्चात्) ५५७ करोड़, १६२०-२१ में ६१५ करोड़, १६२२-२३ में ५६३ करोड़ रुपये का माल (सोना चांदी के अतिरिक्त) आया गया (Trade Review 1922–23, p. 39)। इन अङ्कों से प्रत्यक्ष है कि रेलवे के विस्तार के साथ-साथ विदेशी व्यापार की भी वृद्धि हुई है।

यह कहना कि 'यह रेलवे-जन्य व्यापारोन्नति भारत की सुख-समृद्धि की सूचक है अथवा भारत के लिये हित कारक है सर्वथा निराधार है। इस व्यापार का जन्म १६ वीं शताब्दी के आरम्भ में हुआ था, पर इसका विकास शताब्दी के मध्य से, अर्थात् रेलवे के निर्माण-समय से ही समझना चाहिये। हां, इस व्यापार के पहले भी भारत का विदेशों से व्यापारिक सम्बन्ध था। सुविख्यात डा० बूलर Buhler ने ऋगवेद के मंत्रों से प्रमाणित किया है कि वैदिक काल में भी आर्यजाति विदेशियों से व्यापार कर अतुल धन उपार्जन करती थी। डा० ग्रिफथने भी वेदों के आधार पर इस बात का समर्थन किया है (देखो, डाक्टर साहब द्वारा सम्पादित वेदों के संस्करण में आपका उपोद्घात)। पुराण और काव्य ग्रन्थों में भी स्थान

स्थान पर विदेशी-व्यापार का उल्लेख है। श्री० मुकर्जी ने अनेक अलभ्य प्रमाणों और अकाट्य युक्तियों द्वारा इस बात का प्रतिपादन किया है कि 'तीन सहस्र वर्ष तक भारत का सामुद्रिक व्यापार उच्चकोटि को पहुंचा हुआ था'* । 'एतद्देशीय और तत्कालीन विदेशी साहित्य से पता लगता है कि भारत वासी पहले भी बाह्य व्यापार करते थे† । रोम और ग्रीस के साहित्य के एक एक पृष्ठ का अध्ययन करके एक अंग्रेज लेखक ने सिद्ध किया है कि 'रोम और ग्रीस के साथ भारत का बहुत व्यापार होता था'‡ । बेबीलोन वाले पांच सहस्र वर्ष पहले भारत से व्यापार करते थे$ । मिश्र में ४००० वर्ष पुरानी मिमई (मसाला लगाकर सुखाई हुई लाश) भारतीय मलमल में लिपटी हुई मिली है¶। बाइबिल में भी इस सम्बन्ध में अनेकस्थलों में उल्लेख है** । बहुत कुछ छान बीन करके यूरोपियन विद्वान इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि पहले भी भारतवासी विदेशियों के साथ व्यापार करते थे†† । मुसलमानों के राज-

* Mookerji: Indian Shipping, Introduction, p. 4.

† G. Banerji: India as known to ancient world, p. 72.

‡ H. G. Rawlinson: Intercourse between India and the western world, Preface.

$ J. Kennedy: Commerce of Babylon with India—(Journal, Royal Asiatic Society, 1897, p. 241, 288).

¶ Lassen: Indische Alterthurushunde, p. 596.

** Gen. XXXVII, 25; 1 Kings IX, 26–28; 1 Kings, X; II, Ezekiel XVIII, 15–24. (Shah: Indian Trade).

†† Imp. Gazetteer, Vol. III, p. 195;
Storia do mogor, Vol. II, p. 418;
Asiatic Researches, Vol. II, ch. IV, p. 3;

त्वकाल में भी भारत विदेशियों के साथ व्यापार करता था* ।

किन्तु पहले का व्यापार आजकल के व्यापार से समूलतः भिन्न था—उस व्यापार का रूप अब बिलकुल बदल गया है, (The character of that trade is wholly altered–Shah: Indian Trade, p. 126) । उससे भारत को असीम लाभ होता था । वर्तमान विदेशी-व्यापार से लाभ होना तो दूर रहा, उलटा इससे भारत का सर्वनाश हो गया है, और प्रति दिन होता जा रहा है। यह सत्य है कि पहले जितना विदेशी व्यापार था उससे कई गुणा अधिक अब हो रहा है । विदेशी व्यापार से लाभ होना उसकी न्यूनाधिकता पर निर्भर नहीं है, परन्तु व्यापार की अवस्था और उसके रूप-रंग से देश के हानि लाभ का सम्बन्ध है। विदेशी व्यापार तभी लाभप्रद समझा जा सकता है जबकि उससे देश के उद्योग धन्धों की उन्नति हो और देशवासियों को कार्यक्षेत्र

पहले पृष्ठ से—

Chamber's Encyclopaedia, Vol. V, p. 557,
W. Robertson: An Historical Disquisition;
W. H. Schoff: The Periplus of the Erythraean Sea
Mac Crindle's Ancient India.
Mannings: Ancient India, Vol. II, p. 347–366;
Encyclopaedia Britannica, Vol. XI, p. 446, 459-60;
Heeren: Historical Researches, Vol. II, p. 265,296;
Max Duncker: History of Antiquity,Vol.IV,p.156;

* Murray: Travels of Marcopolo (1308), p. 296;
Elliot: History of India, Vol. III, p. 28–35;
Milburn: Oriental Commerce Vol. I;
Moreland: India at the death of Akber, chap. VI.

मिले*।' अथवा यों समझिये कि देश की बनी हुई चीजों के निर्यातन से और देश में जो माल उत्पन्न न हो और जो वस्तु न बन सकें उनके आवागमन से विदेशी-व्यापार लाभ-प्रद हो सकता है†।' एक अर्थशास्त्री का कहना है कि "देशी व्यापार का लाभ देश में रहता है, विदेशी व्यापार का लाभ थोड़ा बहुत विदेशियों के पल्ले भी पड़ जाता है। विदेशी व्यापार से देश का बहुत कुछ अनिष्ट भी हो सकता है। विदेशी वस्तुओं के साथ साथ विदेशी रीति-रिवाज का भी प्रचार होता है। इस की अधिक वृद्धि होने से देश परतंत्रता के पाश में पड़जाता है। यदि स्वतंत्र भी रह सके तो भी उसके स्वावलम्बन का तो अन्त ही हो जाता है‡।" यह उक्ति भारत के सम्बन्ध में अक्षरशः चरितार्थ होती है। वर्तमान विदेशी-व्यापार से भारत को व्यापारिक लाभ तो होता ही नहीं, जैसा कि आगे विचार किया जायगा, पर उक्त लेखक के कथनानुसार इस व्यापार की कल्पनातीत वृद्धि हो जाने से यहाँ विदेशी रीति-रिवाजों का साम्राज्य छागया है। और भारत को अपनी स्वतंत्रता से हाथ धोना पड़ा है (देखो, १६ वां प्रकरण)। सारांश यह है कि इस रेलवे-जन्य विदेशी व्यापार के कारण भारत का अकथनीय अनिष्ट हुआ है। अन्य अनेक दुष्परिणामों का उल्लेख दूसरे दूसरे प्रसंगों में आगामी प्रकरणों में किया गया है, यहाँ तो हमें व्यापारिक दृष्टि से ही इस सम्बन्ध में विचार करना

* L. S Amery: Fundamental Fallacies of Free-Trade, p. 98.

† H. Hirst: Business Aspects of Tariff Reform, p. 8; Grunzel: Protectionism, p. 131.

‡ Devas: Economy, p. 285-286, 289.

है। सब से पहले यह जानना आवश्यक है कि इस व्यापार से हमें व्यापारिक-लाभ (Trade Profit) होता है अथवा नहीं। दूसरी बात यह विचारणीय है कि जिन जिन वस्तुओं का आवागमन होता है उससे देश का क्या हानि लाभ है?

(१) व्यापारिक लाभ।

"यहां रेलों की और तज्जन्य व्यापार की एक विचित्र स्थिति है। अन्य देशों की व्यापार-वृद्धि के साथ यहाँ के व्यापार की तुलना करना सरासर भूल है। भाड़े सम्बन्धी कठिनाइयों के अतिरिक्त (जिन के कारण यहां के उद्योग-धन्धों की उन्नति नहीं हो सकती) बाह्य व्यापार के सम्बन्ध में भी एक बात ध्यान देने योग्य है। जिन्हें इस व्यापार की वृद्धि संतोष-जनक प्रतीत होती है, उन्होंने क्या कभी यह भी विचार किया कि यह व्यापार किस के हाथ में है? जो माल यहाँ से जाता है उसके रेलों के डिब्बों में लदने के समय से, जहाँ उसका उपयोग और उपभोग होता है वहाँ तक विदेशियों के हाथ में है। जो माल बाहर से आता है वह कारखानों से (जहां विदेशों में वह तैयार होता है) हमारे घरों के दरवाजों तक विदेशियों के ही हाथ में है। हम तो केवल अपने गावों और कसबों में ही क्रय-विक्रय करते हैं। यही कारण है कि क्रमागत वृद्धि को प्राप्त रेलवे और तज्जन्य विदेशी व्यापार द्वारा लाभ नहीं होता। जिन देशों में इनके (रेलवे और बाह्य-व्यापार) कारण असीम लाभ हो रहा है उनके साथ भारत की तुलना कैसे हो सकती है?*" विदेशी व्यापार से व्यापारिक-लाभ होना तभी समझा जा सकता है जब कि जितना माल भेजा जाय उससे अधिक माल या सोना चाँदी बाहर से

* Kale; Economics, p. 185, 194.

आये। जो व्यापारी १०० रुपये का माल भेजता है उसे यदि १०० रुपये से अधिक मिले तभी उस व्यापार से लाभ समझा जासकता है। यहां से जितना माल जाता है वह विदेशी व्यापारियों द्वारा भेजा जाता है। देहातों का बाजार भी उनके ही हाथ में है*। ये गोरे-व्यवसायी कृषकों से माल सीधा ख़रीद लेते हैं†। सारांश यह कि जो माल जाता है उसका सारा लाभ विदेशियों को ही मिलता है। और देशों में यह बात नहीं है। जैसे जर्मनी से जो माल अन्य देशों को जाता है वह जर्मनी वाले स्वयँ भेजते हैं, नकि विदेशीयों द्वारा‡।

विदेशों से जो माल यहाँ आता है वह भी गोरे व्यापारियों द्वारा मँगाया जाता है। और इससे जो लाभ होता है वह भी विदेशियों के जेब में रहता है। आयात और निर्यात माल का बीमा भी गोरी कम्पनियों के हाथ बेचा जाता है। माल का आवागमन भो विदेशी जहाजों द्वारा होता है। इस लिये जहाज भाड़े का लाभ भी वे लोग ही हड़प जाते हैं। सन् १८०० तक भारतीय जहाजों द्वारा व्यापार होता था $। किन्तु यहाँ के जहाजों के धन्धे को जिस प्रकार नष्ट किया गया, यह दूसरे प्रकरण में लिख चुके हैं। अब भी गोरी-कम्पनियों ने षडयँत्र —Shipping Ring. शिपिंगरिङ्ग—रच रक्खा है। जब कोई देशी कम्पनी खड़ेहोने की चेष्टा करती है, तब कम्पनियाँ अपना भाड़ा कम करदेती हैं। इस प्रतिद्वन्दता के संघर्षण में नव

* Macdonald: India, p. 106.

† The Oxford Survey of British Empire, Asia, p. 172.

‡ A. J. Wolfe: The Theory and Practice of International commerce, p. 328–9.

$ Mookerji: Indian Shipping;
Moreland: India at the Death of Akber, p. 170.

प्रसूत भारतीय कम्पनियों का शीघ्रही विनाश हो जाता है। नई कम्पनी के नष्ट होने पर गोरी-कम्पनियाँ अपना भाड़ा पुनः बढ़ा देती हैं। गोरी-कम्पनियाँ अपने व्यापारियों को वर्ष में दोबार भाड़े का कुछ अंश—लगभग १० प्रति सैकड़ा—लौटा देती हैं। इसे डिफर्ड-रिबेट-सिस्टम कहते हैं। यदि कोई व्यापारी नई कम्पनी को माल देता है तो ये पुरानी कम्पनियाँ उस व्यापारी को १० प्रति सैकड़ा (जो पहिले भेजे हुए माल के हिसाब में बाकी रहता है) नहीं देतीं। अतएव व्यापारियों को विवश हो पुरानी कम्पनियों के जहाजों से ही माल भेजना पड़ता है। इस अन्याय को रोकने के लिये Mercantile Marine कमेटी (१९२३-२४) को बहुत कहा सुनी हुई है। देखें क्या होता है। इंगलैंड में तो यह कानून है कि वहां के जहाजों के विदेशी मालिक नहीं हो सकते (Merchant Shipping Act of 1894, Sec. 13)।

सारांश यह कि जिस १०० रुपये के माल को विदेशों में बेचने से जो १० रुपये का लाभ हमें हो सकता है वह हमें नहीं मिलता। और जो वस्तु हम विदेशों में १०० रुपये में खरीद सकते हैं उस का मूल्य हमें ११० रुपये देने पड़ते हैं। क्योंकि वह वस्तु गोरे-व्यवसायी मँगाते हैं और वे उसे हमें ११० रुपये में बेचते हैं। अर्थात् विदेशों को जाने वाली और वहाँ से आने वाली वस्तुओं के क्रय-विक्रय से जो १० प्रति सैकड़ा (वास्तव में १० प्रति सैकड़ा से अधिक लाभ होता है। इसका एक तो प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि जो माल यहाँ से जाता है उसका बीमा माल के मूल्य से २०-२१ प्रति सैकड़ा अधिक कराया जाता है) लाभ हो सकता है, वह हमें नहीं मिलता। १९२२-२३ में ५६२ करोड़ के माल का आयात और निर्यात हुआ। इस ५६२ करोड़ के व्यापार पर १० प्रति

सैकड़ा से ५६ करोड़ रुपये लाभ के होते हैं। इस के अतिरिक्त जहाज भाड़ा और बीमा के लाभ के १०-१५ करोड़ रुपये से कम नहीं होते। यह सारा ७०-७५ करोड़ का वार्षिक लाभ हमें नहीं मिलता, विदेशियों को मिलता है!

केवल व्यापारिक लाभ से ही हम वञ्चित नहीं रहते, किन्तु जो माल यहाँ से जाता है, उसके एक अंश का मूल्य भी हमें नहीं मिलता! इंगलैंड के प्रधान-मंत्री मि० मेकडोनल्ड ने लिखा है कि भारत से जो वस्तुएँ आती हैं, उनके बदले उतने मूल्य की दूसरी चीजें नहीं भेजी जातीं*।' १९०९-१० से १९१८-१९ तक (इसके पहले प्रति वर्ष २५ करोड़ का माल बिना मूल्य जाता था) प्रति वर्ष ३५ करोड़† का और १९१९-२० में ५० करोड़ का माल यहाँ से बिना मूल्य गया‡। अर्थात् १९१९-२० में ३५० करोड़ का माल (सोना-चांदी सहित) गया और ३०० करोड़ का (सोना-चांदी सहित) आया। यह जो ५० करोड़ का अधिक माल गया इसके बदले हमें कुछ नहीं मिला। अनेक प्रतिष्ठित अंगरेजों ने स्वीकार किया है कि

* Macdonald: India, p. 150.

† Trade Review (1922--23), p. 39.

‡ एक्सचेंज की अस्थिरता के कारण १९२०--२१ में ८८ करोड़ का और १९२१-२२ में ४७ करोड़ रुपये का अधिक माल आया था। किन्तु पहले ऐसा कभी नहीं हुआ। उक्त २ वर्षों में जितना माल अधिक आया उसका मूल्य भारत को देना ही पड़ेगा। किन्तु आयात की अपेक्षा निर्यात अधिक होने से (जैसा सदैव होता है) उसका मूल्य हमें नहीं मिलता। १९२२-२३ में माल फिर अधिक गया है।

'माल का इस प्रकार बिना मूल्य जाना निस्सन्देह देश के धन का दोहन और शोषण है* ।' यह वार्षिक दोहन १८०५ से १८३५ तक ६ करोड़ पाउंड† और १८३५ से १८६६ तक ४४॥ करोड़ पाउंड‡ बताया जाता है। ये लगभग ८ अरब रुपये होते हैं! इस में १८६६ से १९२० तक के ६०० करोड़$ और जोड़ने से १९२० तक कुल १४ अरब होते हैं! ब्याज की रकम जोड़ने से तो लगभग १०० अरब होते हैं!

प्रति वर्ष कितना माल बिना मूल्य जाता है इसका ठीक ठीक हिसाब नहीं हो सकता। जो अङ्क ऊपर लिखे हैं (जैसे १९१९-२० में ५० करोड़ के माल का बिना मूल्य जाना) वे आयात और निर्यात सम्बन्धी वार्षिक सरकारी-रिपोर्टों (Trade Review) के आधार पर हैं। इन रिपोर्टों के अनुसार जितना माल बिना मूल्य जाता है, वास्तव में उससे बहुत अधिक है! रिपोर्ट में यहाँ जो माल आता है उसका मूल्य जहाज-भाड़ा, बीमा, दलाली, इंगलैंड वालों का और यहां की गोरी कम्पनियों का लाभ आदि के साथ लिखा होता है। जो माल यहाँ से जाता है उसके मूल्य में जहाज-भाड़ा आदि

* Sir T Morison: Economic Transition of India p.203; Lord Salisbury (Digby, p. 197); Lilly: India, p. 189; Col. Sykes, Director of E. I. Co. (Parliamentory 1st Report, 1853).

A. J. Wilson: An Empire in the Pawn, p. 61, 65.

† Mont. Martin: Eastern India, Vol. II, p. 12.

‡ Digby, p. 222--23.

$ Trade Review, 1922--23, p. 39.

शामिल नहीं किया जाता *। अर्थशास्त्रियों का कहना है कि 'या तो आयात और निर्यात दोनों के मूल्य में जहाज-भाड़ा आदि शामिल होना चाहिये, या दोनों में ही न होना चाहिये। केवल आयात के मूल्य में ही भाड़ा आदि जोड़ कर उसकी कृत्रिम मूल्य वृद्धि करना—उसका मूल्य अधिक दिखाने की प्रथा—सर्वथा अनुचित है §'। अतएव आयात माल का मूल्य भी जहाज-भाड़ा आदि के बिना होना आवश्यक है। यदि आयात के मूल्य से जहाज भाड़ा निकाल दिया जाय तो उसका मूल्य रिपोर्टों में लिखे हुए मूल्य से बहुत कम होगा। दूसरी बात यह है कि भारतसरकार जो ऋण इंगलैंड में लेती है, वह भी आयात के मूल्य में मिला हुआ है। जैसे, यदि १९१९–२० में सरकार ने इंगलैंड में १० करोड़ रुपये ऋण के न लिये होते तो १० करोड़ का माल या सोना चांदी और भी कम आया होता। अतएव ऋण के धन को भी आयात के सरकारी-अङ्क से निकाल देना जरूरी है‡। रिपोर्टों में लिखे हुए मूल से जहाज भाड़ा आदि घटाने से उक्त वार्षिक हानि से कहीं अधिक हानि होती है। जैसे १९१९–२० में जो ५० करोड़ की हानि ऊपर लिख आये हैं उसके स्थान में कम से कम ७५ करोड़ की हानि समझनी चाहिये। इन ७५ करोड़ में व्यापारिक-लाभ के ७५ करोड़ (जैसा पहले हिसाब लगा चुके हैं) जोड़ने से वार्षिक हानि का कुल योग १५०

* Hyndman: The Bankruptcy of India, p. 57;
Wilson: An Empire in the Pawn, p. 54.
Oxford Survey of British Empire, p. 462.

§ Devas: Economy, Bk. II, ch, V, p. 296.

‡ K. T. Shah; Sixty years of Indian Finance, p. 361.

करोड़ होता है। १६२० तक जो १४ अरब की हानि ऊपर लिख आये हैं उसमें व्यापारिक लाभ, ऋण की रकम और जहाज-भाड़ा आदि जोड़ने से कम से कम ५० अरब की हानि का भयंकर दृश्य दीखने लगेगा। इस रकम के ब्याज का हिसाब तो वस्तुतः कल्पनातीत है।

उपर्युक्त १५० करोड़ की वार्षिक हानि में ७५ करोड़ तो व्यापारिक-लाभ की हानि के हैं, और शेष जो ७५ करोड़ का माल बिना मूल्य जाता है उसके सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि "जिसे 'माल का बिना मूल्य जाना' कहते हैं वह तो वास्तव में ऋण के ब्याज (जो लगभग ३०-३५ करोड़ रुपये प्रति वर्ष है) और इसी तरह के और कामों के लिये इंगलैंड भेजना पड़ता है।" यह दलील युक्ति-युक्त नहीं। इंगलैंड के प्रधान मंत्री मि० मेकडोनल्ड का कहना है कि "इंगलैंड में ऋण लेने का कारण लोग यह बताते हैं कि 'भारत में धनाभाव के कारण ऋण नहीं मिलता, अतएव ऋण का ब्याज चुकाने के लिये वहां से माल भेजना पड़ता है'। परन्तु हमें यह न भूलना चाहिये कि दोहन का दुर्वृत्त प्रभाव ही—बीजांकुर न्याय के अनुसार—दोहन का कारण हो गया है' (This vicious spiral effect becoming cause), अर्थात् भारत में धन की कमी का कारण भी तो धन का दोहन है—माल का बिना मूल्य जाना है। हमारे अपने हित की दृष्टि से भी यह स्मरण रखना चाहिये कि यद्यपि इस दोहन से हमें व्यक्तिगत लाभ हो सकता है तथापि हमारे देश (इंगलैंड) पर इसका बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है! भारत का अहित तो अर्थशास्त्री मिल John Stuart Mill के शब्दों में स्पष्ट है 'जो देश विदेशियों को अविच्छिन्न रूप से धन देता रहता है—बिना मूल्य विदेशियों

को माल भेजता रहता है—उसे केवल साम्पत्तिक हानि ही नहीं होती परन्तु उसका और भी बहुत अनिष्ट होता है†।" मंत्री महोदय अन्यत्र लिखते हैं कि 'भारत से जो धन का दोहन हो रहा है उसकी प्रतिदिन वृद्धि हो रही है और इसके कारण भारत की अवशिष्ट धनराशि क्षीण हो रही है*।' सारांश यह है कि यद्यपि यहां की व्यापार-तुल Balance of Trade सदैव हमारे पक्ष में रही है—आयात की अपेक्षा निर्यात अधिक होता है—तथापि अन्य देशों में व्यापार-तुला के सपक्ष होने से जिस प्रकार देश को लाभ होता है उस प्रकार हमारे देश के सम्पत्तिशाली होने के स्थान में वह दिन २ देश को दीन दुर्बल बना रही है। ऐसी बीभत्स दशा संसार के किसी भी व्यापारोन्नत देश में नहीं है।

(२) माल के आवागमन से हानि—लाभ।

रेलवे जन्य विदेशी व्यापार से जो दूसरी महा भयङ्कर हानि हमें हो रही है वह है यहां से कच्चे माल का जाना और बने हुए माल का आना। पहले यह दुर्व्यवस्था नहीं थी। तब तो यहां से बना हुआ माल जाता था। आजकल जो माल आता है उसमें १३०–१४० करोड़ रुपये के वस्त्र और लोहे-इस्पात का सामान होता है। पहले ये वस्तुएँ यहां से जाती थीं। वैसे तो ढाके के वस्त्रों का विदेशों को जाना विश्वश्रुत है ही, पर यूरुप की प्राचीन सभ्यता के केन्द्र-स्थान यूनान और रोम को भी ढाके की मलमल बहुत जाती थी। यूनान वाले इसे 'गंगेटिका' कहते थे। एक फ्रेंच यात्री ने लिखा

† Macdonald; Govt. of India, p. 152–53.

* Macdonald; India, p. 149.

है कि १६ वीं शताब्दी में चीन से उत्तमाशा-अन्तरीप (Cape of Good Hope) तक प्रत्येक नर नारी हिन्दुस्तानी वस्त्र पहिनते थे† ।' लोहा और इस्पात और इनका बना हुआ माल विदेशों को बहुत जाता था‡ । रेशमी-वस्त्र, अस्त्र शस्त्र, सुगन्धित वस्तुएँ रंग और अनेक तरह की बनी हुई चीजें यहाँ से जाती थीं¶ । विख्यात प्लीनी महाशय ने लिखा है कि 'भारत के बने हुए माल के खरीदने में रोम वालों का बहुत धन व्यय होता था* ।' इंगलैंड के लाभ के लिये अथवा इंगलैंड के स्वार्थी लोगों की प्रेरणा से ईस्ट-इन्डिया-कम्पनी ने और उसके पीछे इंगलैंड की सरकार (British Government) ने भारत के उद्योग-धन्धों को नष्ट करने और यहां से कच्चामाल भेजने के लिये यथासाध्य प्रयत्न किया$। जिस प्रकार यहाँ के उद्योग-धन्धों का सर्वनाश किया गया, वह कारुणिक कहानी दूसरे प्रकरण में लिख चुके हैं। अब भी

† Voyage of Francois Pyrard, Hakluyt Society—Translation, Vol. II, (Moreland; India at the death of Akber, p. 179).

‡ Mannings: Ancient India, Vol. II, p. 364; Journal of Royal Asiatic Society, 1897, p. 4; Ball; Economic Geology of India, p 338; B. N. Seal; Positive Sciences of the Hindus.

¶ Rhys Davids : Buddhist India, p. 98; Prof. Dey; History of Commerce; Cambridge History of India, Vol. I. p. 477-78; Periplus of the Erythraean Sea.

* Pliny: Natural History, p. X[illegible]

$ Fisc[illegible] Report, p. 180

सरकार की वही पुरानी नीति है। १९२२ में जो आर्थिक-कमीशन Fiscal Com. नियुक्त हुआ था उसे साफ कहा गया था कि ड्यूटी (Tariff) सम्बन्धी प्रश्न केवल भारत की हित-दृष्टि से ही विचारणीय नहीं है, किन्तु गोरों के हित का भी समानरूप से ध्यान रखना होगा To examine with reference to all the interests concerned.—Fiscal Com. Report, p.XV. निष्कर्ष यह है कि सरकार की नीति अथवा उपेक्षा वृत्ति के कारण गोरे व्यवसायियों ने यहाँ के उद्योग-धन्धों को नष्ट कर यहाँ से कच्चे माल को भेजने और इंगलैंड आदि से बना हुआ माल मँगाने के लिये जो अविकल उद्योग किया उसका प्रत्यक्ष परिणाम हमारे सम्मुख आज यह है कि जिस देश से नानाप्रकार की वस्तुएँ अत्यधिक परिमाण में जाती थीं, वहाँ से आज केवल कच्चा माल ही जा रहा है, और प्रति वर्ष अरबों रुपये का तैयार माल विदेशों से आरहा है! इस दुर्व्यवस्था में रेलों का जो सर्वोपरि स्थान है, वह विगत प्रकरण में लिख चुके हैं। आजकल जो माल आता-जाता है उसका विवरण इस प्रकार है:—

१९२२ में सूत और कपड़ा ७१ करोड़ का (१९२०-२१ में १०२ करोड़ का), ऊनी और रेशमी सामान ५ करोड़ का (१९२० में १३ करोड़ का), लोहे और इस्पात का सामान २० करोड़ का (१९२० में ३३ करोड़ का), मशीनें और तत्सम्बन्धी सामान २५ करोड़ का (१९२१ में ३६ करोड़ का), अन्य धातुओं का सामान ७ करोड़ का (१९२० में ९ करोड़ का), रेलवे सम्बन्धी सामान (इसमें अधिकतर लोहे और इस्पात की वस्तुएँ होती हैं) ११ करोड़ का (१९२१ में १९ करोड़ का), खांड़ १६ करोड़ की (१९२१ में २८ करोड़ की), सब तरह के तेल ७

करोड़ के (१९२० में ६ करोड़ के), औजार आदि ५ करोड़ के (१९२० में ६ करोड़ के), मदिरा, मोटरें आदि, बाजे और बिजली तथा फोटो का सामान, रंग, बिस्कुट आदि, कागज और गत्ते, कोयला, काँच का सामान, सिगरेट, ये प्रत्येक ३-३ करोड़ के (१९२० में क्रमशः ५,१५,६,४,४,७,६,४,४, करोड़ की), रसायनिक पदार्थ, औषधियाँ, नमक, रबड़, सीमेंट, दियासलाई, फल, मसाले, हीरेमोती, ये प्रत्येक २-२ करोड़ के साबुन, रोगन, सिले हुए कपड़े, पेंसिल आदि, चमड़े की चीजें, ये प्रत्येक १-१ करोड़ के, सरकारी सामान १४ करोड़ का, और अन्य चीजें १५ करोड़ की। कुल २४६ करोड़ का माल आया। और रुई ७१ करोड़ की, कपड़ा और सूत १३ करोड़ का, जूट (कच्चा) २३ करोड़ का, बोरे और हेशियन ४० करोड़ का, चावल ३४ करोड़ के, गेहूं और दाल आदि ६ करोड़ की, तेलहन २८ करोड़ का, चा २२ करोड़ की, लाख १० करोड़ की, चमड़ा ११ करोड़ का, ऊन ६ करोड़ का, तेल, खाद, कच्ची धातुएँ, अफीम ये प्रत्येक ३-३ करोड़ के, काफी, तम्बाकू, मसाले, भुस्सा आदि, रंग तैयार करने का सामान, लकड़ी रबड़, सन, मोड़ल, रेशम, ये प्रत्येक १-१ करोड़ के, और सामान ११ करोड़ का, आया हुआ माल वापस गया १६ करोड़ का, कुल ३१६ करोड़ का माल गया। इस सम्बन्ध में देखो, Trade Review 1922-23.

सरकारी रिपोर्टों में उपर्युक्त आयात और निर्यात माल पांच भागों में विभक्त है:——

	वर्ग	आयात करोड़ रु०	निर्यात करोड़ रु०
१	खाद्य पदार्थ	३१	७०
२	कच्चामाल	१८	१६०
३	बना हुआ माल	१८३	७०
४	सरकारी सामान	१४	×
५	आये हुए माल का पुनर्निगम	×	१६
	योग	२४६	३१६

यह वर्गीकरण ठीक नहीं है। आयात में जो माल खाद्य पदार्थ लिखा गया है वह वास्तव में बना हुआ सामान है। जैसे खांड (१६ करोड़), बिस्कुट आदि (३ करोड़), मदिरा (३ करोड़), सिगरेट आदि (३ करोड़), और चा आदि २ करोड़)। अतएव यह २६-२७ करोड़ का सामान बने हुए माल में शामिल होना चाहिये। आयात में जो माल कच्चा माना गया है, उसमें भी अधिकतर तैयार माल है। जैसे ७ करोड़ का तेल और इसी प्रकार का २-३ करोड़ का सामान। ये ८-९ करोड़ भी बने हुए माल के साथ रहने चाहिये। जो १४ करोड़ का सरकारी सामान है वह भी बना हुआ माल है, अतएव इसे भी बने हुए माल के साथ जोड़ना चाहिये। इस प्रकार २४६ करोड़ के आयात में २३२ करोड़ का बना हुआ माल है, न कि १८३ करोड़ का। निर्यात में जो माल खाद्य पदार्थ लिखा है वह सारा कच्चा माल है। जैसे,

अन्न (४३ करोड़), चा* (२२ करोड़), मसाले और तम्बाकू (२ करोड़), २-३ करोड़ का और इसी प्रकार का सामान। ये ७० करोड़ रुपये कच्चे माल के मूल्य में मिलाने पर २३० करोड़ का कच्चा माल होता है, नकि १६० करोड़ का। कुल ३१६ करोड़ के निर्यात माल में १६ करोड़ का तो विदेशों से आया हुआ माल है। शेष ३०० करोड़ के निर्यात माल में २३० करोड़ का कच्चा माल है, जैसा ऊपर लिख चुके हैं। ७० करोड़ का जो बना हुआ माल है उस में ४० करोड़ के तो केवल बोरे हैं (जो अमेरिका, आस्ट्रेलिया आदि में कहीं नहीं होते, इस लिये इन देशों को ये भारत से ही मँगाने पड़ते हैं), शेष ३० करोड़ की बनी हुई चीज़ों में अधिकतर पूरी बनी हुई वस्तुएं नहीं होतीं। यदि ७० करोड़ की भी बनी हुई वस्तुएं मान लें तब भी निर्यात माल में ७५-८० प्रति सैकड़ा कच्चा माल होता है, और आयात माल में ६५ प्रति सैकड़ा बना हुआ। अब यह विचारणीय है कि कच्चे माल के निर्यातन से और बने हुए माल के आयातन से देश को क्या हानि हो रही है?

(क) कच्चे माल के निर्यातन से हानि।

रेलवे की कृपा के कारण आज जो अरबों रुपये का कच्चा माल जा रहा है उस के फल स्वरूप यहाँ के उद्योग-धन्धे नष्ट हो गये हैं और यहाँ वालों का एक मात्र आधार कृषि रह गया है। यह देश के लिये अत्यन्त घातक है। लिस्ट आदि

---

* यहाँ से जो चा जाती है वह अपरिष्कृत होती है, विदेशों से जो यहाँ आती है, वह तैयार—परिष्कृत—होती है।

लब्धप्रतिष्ठ अर्थशास्त्रियों का मत है कि 'जो देश केवल कृषि में संलग्न रहता है उसका जीवन अङ्ग-भङ्ग व्यक्ति के समान दूसरों पर आश्रित रहता है। उस देश के निवासी मानसिक-विकास, सुख-समृद्धि और स्वतंत्रता से वञ्चित रहते हैं। जिस देश में वाणिज्य-व्यवसाय और उद्योग-धन्धों को स्थान है वह दूसरों पर अवलम्बित नहीं रहता और उसका समुत्थान सन्निकट रहता है।' कृषकों को प्रकृति की कृपा पर निर्भर रहना पड़ता है। जिस वर्ष वर्षा नहीं होती उसी वर्ष उनकी हृदय-विदारक दुर्दशा होजाती है। पर उद्योग-धन्धों में तत्पर जन प्रकृति के कृपा-कटाक्ष की प्रतीक्षा नहीं करते। अतिवृष्टि और अनावृष्टि उन की आजीविका में बाधक नहीं हो सकती।

कहा जाता है कि भारत में जो अपेक्षातिरिक्त—आवश्यकता से अधिक—कृषि द्रव्य होता है।उसके निर्गम से हानि क्या? लाभ ही है। सुविख्यात अर्थशास्त्री मिल (J. S. Mill) का कहना है कि 'To export plainly implies an inherent necessity to produce—Mill: Economy, Bk. III, Ch. XVII, p. 4. अर्थात् निर्यात करना ही अधिक (अपनी आवश्यकता से अधिक) उत्पत्ति की अन्तरजात—आनुषंगिक—आवश्यकता की परिस्फुट उपलक्षणा है'। सुप्रसिद्ध आदमस्मिथ का भी यही मत है कि 'यदि माल का निर्गम न होतो अपेक्षातिरिक्त उत्पत्ति भी न हो (Adam Smith: Wealth of Nations, Bk. II, Ch V, p. 333; Every Man's Library Edition)। येतो हुई अर्थशास्त्र की सैद्धान्तिक बातें।दूसरी बात यह कि जो अन्न विदेशों को जाता है वह हमारी अपनी आवश्यकता से अधिक नहीं है। मुलहाल साहब का (Mulhall

Dictionary of Statistics यह पुस्तक बहुत प्रमाणिक समझी जाती है) कहना है कि 'प्रत्येक जन के आजीवन के लिये दो एकड़ उत्पादक भूमि आवश्यक है।' भारत में केवल १६४० लाख एकड़ भूमि में खेती होती है*। अर्थात् दो जन के भाग में एक एकड़ भूमि आती है। इस हिसाब से आवश्यकता से अधिक तो कहाँ, पर कम ही उत्पत्ति होती है। यदि मुलहाल के हिसाब का अनुकरण न भी किया जाय तो भी जो १६४० लाख एकड़ भूमि में अन्न उपजता है, उसमें प्रति एकड़ प्रतिवर्ष लगभग ८०० पाउंड† (१० मन) होता है। यह प्रतिजन के भाग में प्रतिदिन एक पाउंड के लगभग आता है। इतनी उत्पत्ति आवश्यकता से अधिक नहीं कही जासकती। प्रख्यात सर हंटर का कहना है कि 'The grain exports of India represent many hungry stomachs in India.—W Hunter: England's Work in India, p. 75–76. अर्थात् अन्न के निर्यातन से अगणित भारतवासी भूखों मरते हैं।' अन्न के बाहर जाने से देश के स्वास्थ्य और सुस्थता पर भी आघात पहुँच रहा है (देखो, १६ वाँ प्रकरण)।

रुई, जूट, तिलहन आदि अखाद्य या व्यापारिक कृषिजात द्रव्यों Commercial Products की भी अनावश्यक उत्पत्ति नहीं होती। रेलवे ने जिस द्रुत गति से इनके अधिकाधिक निर्यात करने में उत्तेजना दी उसी प्रकार इनको दिन पर दिन उत्पत्ति बढ़ती गई है और अन्न के खेतोंमें इनकी खेती होरही है। लार्ड मोर्ले नेकहा था कि 'रुई को अधिक उत्पन्न करने से खाद्य पदार्थों की उत्पत्ति स्वतः ही कम हो जायगी‡।' इन अखाद्य पदार्थों की उत्पत्ति की वृद्धि के

* Mukerji: Indian Agriculture, p. 603. * p. 603—4.
† Banerjee: Economics, p. 74.

कारण वास्तव में खाद्य पदार्थों की उत्पत्ति कम होगई है, और साथ साथ भूमि की उत्पादक-शक्ति का भी बहुत कुछ ह्रास हुआ है (देखो, १५ वां प्रकरण)। जिस भूमि में इन चीजों की खेती होती है उसमें अन्न नहीं हो सकता। जैसे, जिस भूमि में जूट बोया गया है वह अब चावलों के लिये उपयुक्त नहीं रही।

रुई आदि कच्चे माल के प्रचुर परिमाण में विदेश को जाने से यहाँ के कारखानों को माल नहीं मिलता जिससे देश के उद्योग-धन्धों का अभ्युदय नहीं होता। कच्चे माल को विदेश भेजकर उसके वहाँ से तैयार होकर आने के स्थान में यदि उसे यहीं तैयार किया जाय तो देश की उन्नति बहुत शीघ्र हो सकती है। जूट, जो सारे संसार के व्यापार का आभरण समझा जाता है, केवल भारत में ही होता है। कई देशों ने इसके समान दूसरा पदार्थ उत्पन्न करने का भरसक प्रयत्न भी किया, किन्तु उनकी सारी प्रक्रियाएँ निष्फल रहीं। कहने का मतलब यह है कि जूट पर भारत का एकाधिकार होने पर भी, उसके अधिकांश का कच्चे रूप में ही इंगलैंड को चले जाने से, उसके तैयार करने के अतुल लाभ से भारतवासियों का वञ्चित रहना कितने असह्य दुःख की बात है। भूतपूर्व भारत मंत्री मि० मांटेगू और वाइसराय लार्ड चेम्सफोर्ड का कहना है कि 'भारत में विदेशी व्यापार की उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है, पर इस उन्नति का प्रधान चिह्न अल्प मूल्य के कच्चे माल को विदेशों को भेज कर बहु मूल्य विदेशी बने हुए माल को मँगाना है। इस व्यापार से इंगलैंड आदि समुन्नत देशों को लाभ हो रहा है। अतएव भारतवासियों का यह कहना उचित ही है कि जो हमारे कच्चे माल का लाभ विदेशी उठा रहे हैं, वह हमें क्यों

महो*?' कच्चे माल को विदेशों को भेजने से बने हुए माल के आने में उत्तेजना मिलती है। और विदेशी बने हुए बहुमूल्य माल के बदले हमें अपना अल्पमूल्य का कच्चा माल अधिक देना पड़ता है, जिससे अधिकाधिक भूमि तथा भूमि को अधिकाधिक जोतना पड़ता है, जिसका बहुत भयंकर परिणाम होता है (देखो १५ वां प्रकरण)। कच्चे माल के अधिक परिमाण में चले जाने के कारण, यहां मूल्य-वृद्धि हो गई है, जिसके कारण देश विकल हो रहा है (देखो, १६ वां प्रकरण)।

(ख) बने हुए माल के आने से हानि।

जितनी हानि कच्चे माल के निर्यातन से नहीं हुई, उससे कहीं अधिक बने हुए माल के आने से हुई है। एक ओर तो रेलों ने विदेशी वस्तुओं के प्रचार में सहायता दी, दूसरी ओर यहाँ के उद्योग-धन्धों का जड़ उखड़ तो गई। जो ढाके की मलमल सारे संसार को आलोकित करती थी वह आज कहाँ है? 'रेलों ने विदेशी लोहे और इस्पात के प्रचार द्वारा यहाँ के इस व्यवसाय का भी सर्वनाश किया और विदेशी रंग के कारण हमारा रंग सम्बन्धी हुनर तो नष्ट हुआ ही, पर इसका देशी वस्त्रों के व्यवसाय पर भी बहुत बुरा असर पड़ा। रेलों द्वारा सहायता प्राप्त विदेशी रसायनिक द्रव्यों ने यहाँ के अनेक प्रकार के रसायनिक पदार्थों के तैयार करने की कारीगरी को शेष कर दिया‡!' अन्य उद्योग-धन्धों आदि का भी यही हाल हुआ है। उद्योग-धन्धों के नष्ट होने से उनमें

* Constitutional Reforms Report, p. 210, para 332.

‡ Imp. Gazetteer, Vol. III, p. 128, 145, 181; Constitutional Reforms, Report, para 339.

संलग्न जनता बेकार होगई*। बेकार लोगों को आजीविका का और कोई साधन न मिलने से, अन्त में वे कृषि पर टूट पड़े, जो एक मात्र साधन दीख पड़ता था। इस जीवन-संघर्षण के कारण कृषि पर बहुत प्रबल आघात पहुँचा (देखो, १५ वां प्रकरण)। जो स्त्रीजन अपने घरों में कातने आदि का काम करती थीं, वे उद्योग-धन्धों के नाश होने से निरुद्योगी हो गईं, जिससे स्त्रीजाति की धनोत्पादकता के नष्ट होने से देश को असीम हानि होरही है, और बहुत-सी स्त्रियां लज्जा और सतीत्व को तिलाञ्जलि देकर असह्य यातना सह कर सड़कों पर मजदूरी करती फिरती हैं! सबसे बड़ा अनर्थ यह हुआ कि अब हमें मामूली वस्तुओं के लिये भी विदेशियों पर आश्रित रहना पड़ता है! कितने दुःख की बात है कि यदि सुई विदेशों से न आयें तो हमारे वस्त्र न सिलें और दियासलाई न आये तो हम अंधकारमें ही पड़े रहें। अन्न, जल और निवासस्थान के समान ही वस्त्रों की आवश्यकता है। वस्त्र आदि जीवन की अपरिहार्य आवश्यकताओं के लिये भी विदेशों पर अवलम्बित रहना कितना भयङ्कर है, यह पाठक ही विचारें॥ नमक विदेशों से आवे तब भारतवासियों का जीवन-निर्वाह हो, रेलों का इससे अधिक दुष्परिणाम और क्या हो सकता है।

विदेशी वस्तुओं के आने के कारण देश का कला-कौशल, शिल्प-चातुरी, उद्योग-धन्धे और वाणिज्य-व्यवसाय आदि तो रसातल को पहुँच ही गये, पर उनके (विदेशी-वस्तुओं के) प्रचार ने देश पर और भी कई मार्गों से प्रहार किया है। जैसे, मदिरा,

* Cotton: New India, p. 107–109.

सिगरेट और विदेशी औषधियों का प्रचार देश के स्वास्थ्य के लिये असंदिग्ध रूप से घातक है (देखो, १६ वां प्रकरण, पहिला परिच्छेद)। विदेशी वस्तुओं के कारण ग्रामीण-जीवन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा है (देखो, १६ वां प्रकरण छठा परिच्छेद); और पश्चिमीय सभ्यता और रीति-रिवाज ने हमारे देश में अड्डा कर लिया है! सारांश यह है कि बनी हुई वस्तुओं के आने से देश का थोड़ा अहित नहीं हुआ। यदि बनी हुई वस्तुएँ विदेशों से न आयें तो जो अनेक हानियाँ हो रही हैं उससे तो भारत बचे ही, पर यहाँ का माल यहीं तैयार होने से देश को अनिर्वचनीय लाभ हो सकता है* ।

रेलवे के कारण जो अधिकाधिक आयात हो रहा है, उसे लक्ष्य कर कहा जाता है कि यह रहन-सहन की उन्नतावस्था (High Standard of Living) द्योतक है। यह उन्नतावस्था क सभ्यता और सुख-समृद्धि का चिह्न है। आयात की वृद्धि हमारी आवश्यकताओं की वृद्धि के कारण नहीं, परन्तु उसका मूल कारण यह है कि यहाँ के उद्योग-धन्धों के नष्ट हो जाने से आवश्यक माल विदेशों से आरहा है। जिस गति से उद्योग धन्धों की जड़ उखड़ती गई उसी प्रकार विदेशी वस्तुओं का आगमन बढ़ता गया । विविध प्रकार की नई नई वस्तुओं के आने से किसी अंश में हमारी आवश्यकतायें अवश्य बढ़ गई हैं। किन्तु यह सुख-समृद्धि का लक्षण नहीं है। पाश्चात्य जड़वादियों ने आवश्यकताओं का अधिकाधिक बढ़ना और रहन-सहन को उत्तमोत्तम बनाना ही मानव-जीवन का चरम लक्ष्य आरोपित कर रक्खा है। वहाँ के अर्थशास्त्रियों का भी

* Grunzel; Protectionism, p. 133.

यही मौलिक सिद्धान्त है। पर उनका कहना है कि इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये व्यक्तिगत किम्वा सार्वजनिक आय की वृद्धि अपेक्षित है। जब यहाँ आयवृद्धि ही नहीं हुई तब देशी सस्ती और चिरस्थायी वस्तुओं के बदले विदेशी बहुमूल्य और अचिरस्थायी चीजों का उपयोग उन्नति का द्योतक नहीं हो सकता। देशी वस्त्रों के स्थान में मैनचेष्टर के महीन वस्त्र, हुक्का और चिलम के स्थान में सिगरेट और सिगार, यहाँ की जल-वायु के अनुकूल ताजे और पौष्टिक खाद्य पदार्थों के स्थान में विस्कुट, चा और मदिरा आदि, यहाँ के आरोग्यप्रद और 'अमूल्य' व्यायाम के स्थान में बहु व्ययसाध्य टेनिस, बिलार्ड आदि का व्यवहार किसी प्रकार भी हितकारक नहीं समझा जा सकता।

रेलवे प्रसूत विदेशी-व्यापार की--आयात और निर्यात माल की—उपर्युक्त बीभत्स दुरवस्था और दुष्परिणामों को देख कर क्या हम कह सकते हैं कि यह व्यापार देश के लिये हितकर है? अथवा अर्थशास्त्र के सच्चे और स्वाभाविक सिद्धान्तों के अनुकूल है? अन्न और अन्य कच्चे माल का बेरोक-टोक जाना; बनी हुई चीजों का बिना किसी विघ्न-बाधा के प्रचुर परिमाण में आना, क्या प्राकृतिक नियमों का पालन करना है? यहाँ के विदेशी व्यापार को अन्य देशों के समान समुन्नति और सुख-समृद्धि का सूचक (abarometre of progress and prosperity) नहीं समझा जा सकता* । प्रत्युतः यह देश के लिये अत्यन्त हानिकारक है†। इस व्यापार की जो आशातीत अभिवृद्धि हुई है वह देश के उद्योग

* J. W. Root: Trade Relations of the Empire, Ch. V.

† Chamberlain: Economics. p. 242.

Be : Fiscal *Policy*, p. 202.

धन्धों और वाणिज्य-व्यवसाय का मूलोच्छेद करके ही हुई है। अतएव रेलवे जनित यह व्यापार देश के आर्थिक दौर्बल्य का चिन्ह है। कहा जाता है कि "भारत से कच्चे माल का जाना और विदेशों से बने हुए माल का आना अनिवार्य है, क्योंकि भारत सदैव से ही कृषि प्रधान रहा है। और वहां के अधिवासी औद्योगिक कौशल से अपरिचित हैं। अपेक्षित प्राकृतिक साधन और सुविधाओं के अभाव में यहां उद्योग-धन्धों की स्थापना की भी कोई सम्भवना नहीं है।" सर पेट्रिक Sir Patrick Playfair ने लंडन की व्यापार समिति में ऐसी ही कपोल-कल्पित बातें कही थीं। और भी बहुत से लोग ऐसी थोथी बातें कहने में कभी नहीं हिचकते! अतएव रेलवे जन्य विदेशी व्यापार की भयंकरता का पूर्ण तया प्रतिपादन करने लिये उपर्युक्त आक्षेपों पर संक्षेप में विचार करना अत्यावश्यक है।

(१) भारत का औद्योगिक ज्ञान।

यह कहना सत्य है कि भारत में कृषि-कार्य के लिये कई अलभ्य सुविधाएं हैं। इससे यह सिद्ध नहीं होता कि भारत वस्तु-निर्माण के लिये अनुपयुक्त है। भारत जैसे विस्तृत देश में कृषि और वस्तु-निर्माण में पारस्परिक विरोध नहीं हो सकता, प्रत्युतः दोनों का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। कृषि के लिये जो नैसर्गिक सुविधाएँ हैं, वे ही वस्तुओं के तैयार करने लिये बहुत अच्छे साधन हैं। अमेरिका आदि में कृषि-द्रव्यों की प्रचुरता होने से वस्तु-निर्माण कार्य बहुत सहज और लाभदायक होगया है। देश के उद्योग-धन्धों के लिये विदेशों से सामान न आये, स्वदेश में ही उसकी उत्पत्ति हो यह सोना और सुगन्ध के समान है। यह आक्षेप कि भारतवासी औद्योगिक कला से अनभिज्ञ हैं, सर्वथा निर्मूल है। ३ सहस्र वर्ष पूर्व भी भारतवासी वस्तु-निर्माण में दक्ष

थे* । एक प्रतिष्ठित अंग्रेज ने लिखा है कि 'जब इंगलैंड-निवासी असभ्य और जंगली थे तब ढाके की मलमल और काशमीरके सुन्दर दुशाले, दिल्ली के रेशमी और जरी के वस्त्र, परिष्कृत धातुएं, बहुश्रम-साध्य खुदाई का काम, अति सुन्दर छींट आदि रंगीन वस्त्र, कामदार मखमलें, अत्युत्तम गलीचे, उच्चकोटि का इस्पात और सर्वाङ्ग सुन्दर जहाज, इत्यादि शताब्दियों तक सभ्य संसार को मुग्ध करती रही हैं। जब लंडन का इतिहास में कोई स्थान नहीं था तब भारत समस्त संसार में सर्वोपरि सम्पत्ति सम्पन्न था—आदर्श व्यापार-केन्द्र था†' । इंगलैंड में तो १८ वी शताब्दी के उत्तरार्ध में ही कल कारखानों का आविष्कार हुआ है‡ । इसके पहले वहां वाले यह नहीं जानते थे कि रुई और ऊख की खेती होती है। रुई से कपड़ा और ऊख से खांड तैयार होती है !

'सामाजिक व्यावसायिक और औद्योगिक जीवन में वस्त्रों का आज जो असाधारण महत्व है, उसे देख कर इस सत्यता पर विश्वास होना कठिन है कि आज से दो सौ वर्ष पहले भी रुई की उत्पत्ति और तज्जन्य वस्त्रों के व्यवसाय से पाश्चात्य सभ्यताभिमानी प्रदेश सर्वथा अपरिचित थे§' ! भारत में तो यह व्यवसाय आदिकालसे विद्यमान है** ।

* H. H. Wilson: The Rigveda, Translation p. 41. Weber: History of Indian Literature, p. 275; Chamber's Encyclopaedia, Vol. V, p. 536, 543; Dr. Forbes Watson: Textile Manufactures.

† Montgomery Martin: Eastern Empire, Vol. I: Select Com. (1840) Report (Rai: Englands's Debt)

‡ Adams: Civilization and Decay, p. 259.

§ Watts: Commercial Products of India p. 470.

** Baines: History of Cotton Manufactures p. 2.

—यहीं सबसे पहले वस्त्र बनना आरम्भ हुआ था*। यहाँ कोई ऐसा गांव नहीं था जहाँ नर नारी और बच्चे वस्त्र बुनने में प्रवीण न हों†। इतना अधिक कपड़ा तैयार होता था कि उससे केवल हमारी आवश्यकता ही पूरी न होती थी, पर विदेशों को भी बहुत जाता था‡। यहाँ के वस्त्र इतने सुन्दर और सुखद होते थे कि विदेशी व्यापारी अनेक कष्ट सह कर भी उन्हें प्राप्त करने का प्रयत्न करते थे§। शताब्दियों तक यहाँ की मलमल सारे संसार में विख्यात थी¶। ढाके की मलमल इतनी महीन होती थी कि उसका स्पर्शज्ञान होना भी बहुत कठिन था। उन वस्त्रों के पहिनने पर ऐसा दीखता था कि तन पर वस्त्र ही नहीं है। सूत इतना महीन होता था कि वह अच्छी तरह दृष्टिगोचर भी नहीं हो सकता था**। २० गज़ लम्बा मलमल का थान एक मामूली अंगूठी में आरपार हो सकता था§§। यदि वह मलमल घास पर बिछादी जाय तो यह पता नहीं लग सकता कि कुछ बिछा हुआ है‡‡। मलमलों की बारीकी के सम्बन्ध में इतना लिखना ही पर्याप्त है

---

* Baines: History of Cotton Manufactures, p. 2.

† Orme: Historical Fragments, p. 413.

‡ Moreland: India at the death of Akber, p. 179.

§ Murry: History of India p. 27.

¶ James Taylor: Cotton Manufacture of Dacca.

** Tavernier's Travels, Vol. I, p. 811; Vol. II, p. 4–6.

§§ Renaudot: Ancient Accounts of India and China by Mohomadan Travellers in the 9th Century.

‡‡ Taylor: Cotton Manufacture, Ch. V, p. 44–45.

कि उनके विषय में विदेशियों को यह भ्रम होता था कि ढाके में मनुष्य काम करते हैं अथवा देवता* ! बहुत से लोग तो यह समझते थे कि मलमल घुनाक्षर के समान कीड़े-मकोड़ों की कारीगरी है, नकि मनुष्य की कृति†! उन्नति के शिखरस्थ आधुनिक यूरुप के विस्मयात्मक विविध आविष्कारों और अद्भुत वैज्ञानिक यंत्रों द्वारा भी ढाके के हाथ के कते सूत और हाथ के बने वस्त्रों के समान नहीं बनाया जा सकता§ !' अब भी ढाके में जो वस्त्र बनते हैं उनके सदृश भी विज्ञान की वर्तमान कल्पनातीत उन्नति के युग में भी अन्यत्र प्रस्तुत नहीं हो सकते‡!

'इंगलैंड में लोहे ढालने का काम बहुत थोड़े समय से प्रचलित है। लोहे को शुद्ध करना, गलाना, ढालना, और इस्पात तैयार करना, आदि प्रक्रियाओं से भारतवासी अत्यन्त प्राचीन काल से अभिज्ञ रहे हैं¶।' 'यहाँ का तैयार लोहा देश की आवश्यकता को पूरी करने के अतिरिक्त विदेशों को भी बहुत जाता था। १५०० वर्ष की पुरानी कुतुबमीनार से यहाँ की लोहे की कारीगरी का भली भाँति ज्ञान हो सकता है। मि० बालने स्वीकार किया है कि अधिक समय नहीं हुआ जब कि ऐसे लोह-स्तम्भ का बनना संसार के और किसी देश में सम्भव नहीं था। अब भी बहुत कम कारखाने हैं, जहाँ ऐसा

* Murry: History of India.

† Baines: History of Cotton Manufactures p. 56.

§ Encyclopaedia Britannica, (weaving);
Mill: History of India, Vol. II, Bk. II, Ch. viii p. 16

‡ Baker: Calico Printing in India, Introduction.

¶ Mill: History of India, Vol. II, Bk. II, Ch. viii.

विशाल स्तम्भ बन सकता है (Ball: Economic Geology of India)। आसाम में बहुत बड़ी बड़ी तोपें तैयार होती थीं*।' बहुत बढ़िया इस्पात बनाने की जो क्रियाएँ यूरुप वाले काम में लेते हैं, उन्हें भारतवासी पहले ही जानते थे। ताम्बे और पीतल की भी बहुत अच्छी चीजें तैयार होती थीं। सारांश यह है कि धातु-संशोधन आदि प्रक्रियाओं के सम्बन्ध में भारत का संसार में बहुत उच्च स्थान और सम्मान था†। विख्यात डा० फर्गूसन आदि ने भी भारत के धातु-सम्बन्धी ज्ञान की मुक्तकण्ठ से प्रसंशा की है। खांड़†† रंग‡ रसायनिक चीजों** कांच आदि के तैयार करने तथा जहाज बनाने की कला¶ में भारतवासी अच्छी तरह दक्ष थे और उन्हें तैयार करते और बनाते थे।

औद्योगिक उन्नति के प्रस्तुत साधन।

उपर्युक्त विवरण से भारत की वस्तु-निर्माण-निपुणता प्रत्यक्ष है। दूसरी बात उद्योग धन्धों के लिये अपेक्षित प्राकृतिक साधनों के सम्बन्ध में है। भारत में उद्योग-धन्धों के लिये आवश्यक यथेष्ट सामान है। वस्त्रों के लिये पर्याप्त रुई रेशम और ऊन है। यह कहना कि 'यहाँ की रुई घटिया है' ठीक नहीं। जिस मिश्र—ईजिप्ट—में आज सबसे बढ़िया रुई होती

* Ranade: Economics, p. 153.

† Imp. Gazetteer, Vol. III, p. 128. †† p. 41, 288.

‡ Elphinston: History of India, p. 243

** P. C. *Ray*: Hindu Chemistry, Vol. II, p. 1[illegible] 228.

¶ Duncker: Bombay City Gazetteer, Vol. II, Ch. IV, p. 8

है, वहाँ जब रुई उत्पन्न ही नहीं होती थी तब भी प्रख्यात ढाके की मलमलें यहीं की रुई से तैयार होती थीं*। एक अनुभवी लेखक का कहना है कि 'भारतीय रुई के विकार का कारण मशीनों द्वारा जीन (Gin) होना है। मशीनों में जीन होने से रुई का तार Staple नष्ट हो जाता है†। 'यहाँ प्रचुर परिमाण में अपरिष्कृत-लोहा (Iron ore) भू-गर्भ में पड़ा हुआ है। कच्चा लोहा (*P*ig iron) भी यहाँ अन्य देशों से सस्ता मिलता है। अन्यान्य जो जो चीजें और प्राकृतिक साधन और सुविधाएँ इस्पात को तैयार करने के लिये आवश्यक हैं वे सब यहाँ मौजूद हैं (देखो, *T*ariff *B*oard, [1924], Report)'। किन्तु कच्चा लोहा और अन्यान्य अपरिष्कृत धातुएँ (ore) जैसे मैंगनीज (manganese,—इस्पात तैयार करने के लिये आवश्यक), और टुंगस्टन (tungston—लोहे को पक्का और कठोर बनाने के लिये आवश्यक), आदि विदेशों को चली जाती हैं और वहाँ से इस्पात आदि तैयार होकर आता है! यहाँ खाँड के तैयार होने का भी बहुत अच्छा साधन है। भारत में जितना अधिक ऊख उत्पन्न होता है, उतना संसार में और कहीं नहीं होता। जो १५-२० करोड़ की खाँड प्रति वर्ष विदेशोंसे आती है उससे कहीं अधिक अब भी यहाँ तैयार होती है। यदि विदेशी खांड के प्रचार में रेलें सहायता न दें तो आवश्यकता से अधिक खांड यहां तैयार हो सकती है। तेलहन से यथेष्ट तेल, साबुन, मोमबत्ती, मशीनों का तेल, रोगन आदि अनेक चीजें तैयार हो सकती हैं। जो तिलहन माल यहां से विदेशों को जाता है उससे यही माल तैयार होकर आता है। बिनोलों के

* Yates: Taxtile Antiquaries, p. 334–54.

† Imp. Gazetter, *V*ol. III, p. 44.

तेल के व्यवसाय ने तो अमेरिका के उद्योग-धन्धों को आशातीत सहायता पहुंचाई है। भारत जैसे उष्ण प्रधान देशों में शीत देश की अपेक्षा शीघ्र, अच्छा और अधिक तेल निकल सकता है। यहां तेल के व्यवसाय की उन्नति का बहुत विस्तृत क्षेत्र पड़ा है। और जो जो कच्चामाल यहां से विदेशों को जाता है उससे नानाप्रकार की चीजें यहीं तैयार होसकती हैं। जैसे हर्डे, नील और हलदी आदि से बहुत बढ़िया रंग; लाख से रंग, वारनिश, पालिश और लीथो की रोशनाई, आदि; चमड़े से बूट आदि; तम्बाकू से सिगरेट आदि; हड्डियों और तिलहन की खली से अत्युत्तम खाद; चावलों से मदिरा, अन्यान्य स्पिरिटें, साधारण और रसायनिक-स्टार्च (Chemical synthetic starch) आदि; कुचले आदि औषधियों से विदेशी औषधों के सदृश अनेक औषधियां, जैसे Extract of Nux *Vomica*, और Belladona आदि; डामर [Coal Tar] से इंडी गोटीन[indigotine], सेकरिन [खांड का सत—Saccharine,] और टोनो [tonone—इत्र बनाने के लिये बहुत उत्तम वस्तु), आदि ; निकिल, शोरा आदि से बारूद; मेग्निसाइट् से उच्च कोटि का सीमेंट; गेहूं† से बिस्कुट आदि; भोडल से बिजली का सामान (इसके अतिरिक्त भोडल स्टीम इंजिनों तथा जहाजों के बनाने में भी काम में आती है), और विस्फोटक द्रव्य; इत्यादि इत्यादि।

कागज के लिये विदेशों से जो गुद्दा sulphide spruce आता है उसका मूल्य लगभग ३ रुपये प्रति मन है। यहां सवाई घास का गुद्दा २॥ रुपये मन में और बांसों का गुद्दा, जो अधिक उपयोगी है, दो रुपये मन में यथेष्ट मिल

† यहां का गेहूं आस्ट्रेलिया और रशिया से बहुत अच्छा है—Voelcker: Indian Agriculture, Ch. *XIV*.

सकता है† । कांच जिस मिट्टी से बनता है वह यहाँ बहुत है । मन्गेनीज धातु की कोई कमी नहीं । इससे कांच की हरियाली साफ हो सकती है और इसका अधिक प्रयोग करने से कांच का रंग लाल अथवा बैंगनी बन सकता है । नमक तैयार करने के लिये विस्तृत समुद्र तट है । कोयला और लोहा आधुनिक सभ्यता के आधारभूत स्तम्भ हैं । वैज्ञानिक क्रियाओं द्वारा वस्तुनिर्माण के लिये ये अनिवार्यतः अपेक्षित हैं । यहां इनकी कमी नहीं । 'दो अरब मन लोहा इस समय है, ७ अरब से अधिक और मिलने की सम्भावना है । २२१२ अरब मन कोयला मौजूद है¶ ।' कोयले का स्वदेश में ही मिलना बहुत महत्वपूर्ण समझा जाता है‡ । यदि भारत का अन्य देशों से सम्बन्ध न रहे तोभी एक उन्नतिशाली देशके लिये जिन धातुओं और अन्य खनिज द्रव्यों की आवश्यकता है उनके लिये भारत को दूसरे देशों पर आश्रित रहने की कोई आवश्यकता नहीं $ ।

अब यह तो स्पष्ट होगया कि उद्योग-धन्धों की उन्नति के लिये भारत में सारे साधन है, किन्तु जब तक यहां की रेलें कच्चे माल के जाने और तैयार माल के आने में सहायता देती रहेंगी तब तक यहां के वाणिज्य-व्यवसाय के समुन्नत होने की क्या सम्भावना है ? यह कहना कि 'यहां के उद्योग-धन्धे विविध नवाविष्कारों के संघर्षण में स्वतः नष्ट होगये'

---

† J. C. Coyajee: Indian Fiscal Problems, p. 97–98.

¶ 'Capital', Date 14–5–1922,

‡ L. C. G. Money: Things that Matter, p. 287,

$ Industrial Com. Report, paras 55–56;

— Ball: Economic Geology, p. XV;

Montford Report, para 338,

निस्सार है, (देखो दूसरा प्रकरण)। न यह कहना ही युक्तियुक्त है कि 'मुक्त द्वार-वाणिज्य-नीति के कारण उनका विनाश हो गया, और यह नीति ही उनकी उन्नति में बाधक है।' इसमें सन्देह नहीं कि इस घातक नीति ने बहुत अनिष्ट किया है, परन्तु यदि यहां रेलों का विस्तार न हुआ होता तो इस भयंकर नीति के कारण वर्तमान दुर्दशा न हुई होती। बिना रेलवे के विदेशी माल सहज ही गांव २ और कौने कौने में नहीं पहुँच सकता था, और न वह गांवों और कसबों में इतना सस्ता ही मिल सकता था। उक्त नीति के कारण केवल बन्दरों पर ही वह सस्ता पहुंच सकता था। रेलों ने तो कम भाड़ा लेकर विदेशी वस्तुओं के प्रचार में अकथनीय सहायता देकर यहां के वाणिज्य-व्यवसाय को नष्ट करदिया। भारत जैसे विशाल देश में वाह्य-व्यापार की अपेक्षा आन्तरिक व्यापार का अधिक होना परमावश्यक है। अमेरिका का देशी-व्यापार विदेशी व्यापार की अपेक्षा बहुत अधिक है*—कम से कम दस गुना अधिक तो अवश्य है‡। यहां देशी व्यापार की अपेक्षा विदेशी व्यापार कम से कम पांच गुना अधिक है§ !

रेलोद्भव विदेशी व्यापार के कारण विनिमय से भी बहुत हानि हो रही है। विनिमय की अनिश्चित स्थिति अर्थात् उसके उत्थान और पतन की हानि से यहां के वाह्य-व्यापार में संलग्न गोरे व्यापारियों की रक्षा करना अपना कर्तव्य समझ कर भारत-सरकार विनिमय का स्वयं नियंत्रण करती है। अर्थात् कौंसिल

* Dr. Anderson: The *Value* of Money, 267–68.

‡ Prof. Fisher: *Purchasing Power* of Money, Ch. XII

§ Shah: Indian Trade, p. 122.

बिल (भारत मन्त्री द्वारा भारत सरकार पर लिखी हुई हुँडियां) और रिवर्स-कौंसिल (भारत सरकार द्वारा भारत-मंत्री पर लिखी हुई हुंडियां) बेच कर विदेशी-व्यापार का भुगतान करती है। अन्य देशों में यह दुर्व्यवस्था नहीं है। वहां सरकारी सहायता अथवा सरकारी मध्यस्थता बिना ही बाह्य-व्यापार का लेन-देन होता है*। विदेशी व्यापार की सुरक्षा और सुसंचालन के कारण विनिमय से भारत को जो हानि होती है उसका एक उदाहरण देखिये। युद्ध-काल में यहां से बहुत माल गया था। इसका बहुत सा मूल्य इङ्गलैण्ड से आना बाकी था। इस रकम से भारत को वञ्चित रखने के उद्देश से सरकार ने विनियम की दर बढ़ादी। जो प्रति रुपये १६ पैंस की दर थी वह १९१८ में १८ पैंस, १९१९ में २८ पैंस और १९२० में ३५ पैंस करदी गई! इसका फल यह हुआ कि भारत को २ रुपये के बदले १ रुपया मिला और वह भी नकद नहीं, माल के रूप में! माल के रूप में यों कि विनिमय के अधःपतन के कारण कुछ समय के लिये विदेशी वस्तुओं का मूल्य कम हो गया (विदेशों में तो भाव वही था पर पहले १ शिलिङ्ग ४ पैंस कीवस्तु का १ रुपया देना पड़ता था; पर विनिमय की न्यूनता के कारण २ शिलिङ्ग ११ पैंस को वस्तु का १ रुपया ही देना पड़ा), जिससे वे प्रचुर परिमाणमें आपहुँची। विदेशी व्यापार और गोरे व्यपारियों के लिये संसृष्ट विनिमय की इस अभूतपूर्व, किन्तु सर्वथा कृत्रिम, दर के कारण भारत-सरकार को, अथवा यों कहिये कि उसके —भारत-सरकार के—पालक और मूल-पोषक भारत वासियों को, ४०-५०करोड़ की हानि हुई। यह हानि इसलिये हुई कि

* Exchange Com. Report, p. 48,

विनिमय की इतनी भयंकर अवस्था के (जिस एक रुपया के १६ पैंस दिये जाते थे उसके ३२ और ३६ पैंस देने के) कारण अपरिमित रिवर्स-कौंसिल के भुगतान में भारत के स्वर्ण-कोष का (रुपयों के ढालने से जो लाभ होता है वह एक भिन्न कोष में जमाकर दिया जाता है। इसे स्वर्ण-कोष Gold Reserve Fund कहते हैं) अधिकांश—४०-५० करोड़ रुपये—शेष होगये ! विदेशी व्यापार की संरक्षा के लिये विनिमय को नियंत्रण करने के प्रयोजन से इस स्वर्ण कोष को इंगलैंड में रख छोड़ा है। यद्यपि भारत-सरकार ५-६ प्रति सैकड़ा के व्याज पर इंगलैंड में ऋण लेती है पर इस कोष के धन को केवल २ प्रति सैकड़ा पर इंगलैंड में दे रक्खा है ! इस कोष के धन का ऋण के स्थान में सदुपयोग करने से यहां के विदेशी-व्यापार के लिये विनिमय का नियंत्रण कैसे हो सकता है ?

पंद्रहवां प्रकरण।

कृषि-कृषकों का उत्कर्ष और दुर्भिक्ष-दमन।

कृषि।

यहाँ की रेलों के गुण-गायकों का कहना है कि रेलवे के कारण कृषि की आशातीत उन्नति हुई है। इस कथन के समर्थन में कृषिजात द्रव्यों की उत्पत्ति की उत्तरोत्तर वृद्धि की ओर संकेत किया जाता है। निस्सन्देह इस वर्धमान उत्पत्ति का मूल कारण रेलें हैं। यदि रेलों द्वारा यहाँ के कृषि-द्रव्य का अधिकाधिक मात्रा में निर्यात न हो तो उपज भी कदापि अधिक न हो। अधिक उपज का अर्थ यह नहीं है कि कृषि की उन्नति हो रही है। भूमि की उत्पादक शक्ति की वृद्धि होने से ही कृषि का विकास समझा जाता है। प्रश्न यह है कि क्या अधिक उत्पत्ति उत्पादक शक्ति की वृद्धि के कारण है? उद्योग धन्धों के रेलवेजन्य ह्रास के कारण औद्योगिक कार्य में प्रवृत्त जनता को जीवन-निर्वाह का कोई मार्ग नहीं मिला इसलिये वह कृषि-क्षेत्र में, जो आजीविका का एक मात्र साधन दीख रहा था, प्रवृत्त होगई। जीविका के अन्य अवलम्बन के अभाव के कारण आज ८० प्रति सैकड़ा भारतवासी कृषक हैं। और दिन पर दिन इनकी संख्या बढ़ रही है। गत-

शताब्दी के पहिले अमेरिका में ९०प्रति सैकड़ा, जर्मनी में १८८५ तक ४२प्रति सैकड़ा और इंगलैंड में १८४० तक ३० प्रति सैकड़ा निवासी कृषक थे। इस शताब्दी के आरम्भ में अमेरिका में ३०, जर्मनी में २५ और इंगलैंड में ८प्रति सैकड़ा ही रह गये हैं। किन्तु यहां पहले की अपेक्षा कई गुने अधिक हैं! एक ओर तो कृषकों की संख्या बढ़ रही है। दूसरी ओर कृषि-द्रव्यों के अधिकाधिक निर्यातन में रेल सहायता दे रही है। इसलिये माल की उत्पत्ति की वृद्धि हो रही है। इस वृद्धि के लिये अधिकाधिक भूमि जोती जाती है—पहले जिस भूमि में खेती नहीं होती थी उसमें अब होने लगी है। और भूमि को अधिकाधिक जोता जाता है—प्रत्येक खेत को प्रति वर्ष (दो खेतों में से एक को एक वर्ष और दूसरे को दूसरे वर्ष न जोत कर दोनों को एक साथ प्रति वर्ष जोता जाता है) और वर्ष में भी दो-दो बार! श्रीयुत बोस का कहना है कि 'रेलों ने विदेशी वस्तुओं का देश के कोने कोने में प्रचार करके यहाँ के उद्योग-धन्धों का सर्वनाश कर दिया, जिससे लोगों को आजीविका का और कोई उपाय न रहा और वे विवश हो भूमि को अधिकाधिक जोतने लगे* ।

अधिकाधिक भूमि जोतने का दुष्परिणाम यह हुआ है कि कृषि उपयुक्त प्रायः सारी भूमि में खेती होने लगी है‡। सारी कृषि-भूमि को एक साथ काम में लेना बहुत बुरा है। इसीलिये अमेरिका में बहुतसी भूमि बिना जुती पड़ी है।

* *P.* N. Bose: A. History of Hindu Civilization during British Rule, *Vol.* I, p. LXXXI.

‡ Sir M. *Visvesvarya*; Reconstructing India, p. 19,

भूमि को अधिकाधिक जोतने का दुष्परिणाम यह हुआ है कि भूमि की उत्पादक शक्ति का ह्रास क्रमागत-ह्रास-नियम [Law of Diminishing Returns] के अनुसार हो रहा है। प्राकृतिक नियम है कि भूमि को अधिक जोतने से उसकी उर्वराशक्ति नष्ट हो जाती है। जो उत्पत्ति की वृद्धि दीख रही है वह प्रति एकड़ के हिसाब से पहले से अधिक नहीं है। पहले प्रति एकड़ जितना माल उत्पन्न होता था उतना अब नहीं होता। ३००-४०० वर्ष पहले, या यों कहिये कि अकबर के समय में (देखो, आइन-अकबरी), यहाँ की भूमि में जितनी उत्पादक शक्ति थी उतनी आज कहाँ है* ? अन्य देशों की तुलना में तो आज हमारे यहाँ की उत्पत्ति प्रति एकड़ बहुत कम है। जावा में प्रति एकड़ ४० टन ऊख होता है, यहाँ केवल १० टन ! मिश्र में ४५० पाउंड और अमेरिका में २०० पाउंड जीन हुई रुई प्रति एकड़ उपजती है, यहाँ केवल ९८ पाउंड ! स्पेन और जापान में प्रति एकड़ जितना चावल होता है उससे आधा भी यहाँ नहीं होता ! गेहूँ जितना यहाँ उत्पन्न होता है उससे दूना बेलजियम और डेनमार्क आदि में होता है‡। खेतों की संख्या बढ़ रही है, जिससे उत्पत्ति अधिक हो रही है। इसलिये उत्पादक शक्ति का ह्रास अव्यक्त और अदृष्ट है—उसका भीषण दृश्य लोगों को नहीं दीखता। कृषि-उपयुक्त जो भूमि बिना जुती बची हुई है, वह भी जब जुतने लगेगी, और भूमि को इसी प्रकार प्रति वर्ष और

* Assembly Debates, Dt. 26-1-1922, p. 1984-88,

‡ Industrial Com. Report, para 85, p. 58;
Indian Sugar Com. Report, (1921), p. 5. & App. II.
Hunter: England's work in India, p. 88. 75-76;
Sir G. Watt: Commercial Products of India, p. 940.

वर्ष में भी दो दो बार जोता जायगा, तब क्रमागत-ह्रास नियम बहुत शीघ्र असर करने लगेगा—उत्पादक शक्ति का क्षय जो आज नहीं दीखता वह प्रत्यक्ष हो जायगा।

आर्थिक कमीशन का कहना है कि यहाँ कि भूमि से जितनी उत्पत्ति हो सकती है उतनी आजकल नहीं होती (रिपोर्ट, पेरा २८)। इसका कारण भूमि का अधिकाधिक जोतना तो है ही, पर भूमि की उत्पादकता के संरक्षण और संवर्धन के मूल साधन खाद, जल और पशुओं का अभाव भी है। यह अभाव भी रेलवे की कृपा का फल है—

१—खाद। भूमि में उत्पादक शक्ति का भण्डार है। जो कृषिद्रव्य भूमि से उत्पन्न होता है, वह इस भंडार का ही एक अंश है। खाद से भूमि का पोषण होता रहे तो भूमि के कोष का ह्रास न हो। उपयुक्त और यथेष्ट खाद के अभाव में कोष-क्षीणता अनिवार्य है। कितना ही महान संचय क्यों न हो, पर संचित वस्तु का यदि निरन्तर व्यय ही किया जाय तो वह एक दिन अवश्य रिक्त हो जायगा। इसीलिये भूमि की उत्पादकता को सुरक्षित रखने के लिये खाद का उपयोग अत्यावश्यक है। जो भूमि निर्जीव पड़ी हुई है वह उत्तम और पर्याप्त खाद के कारण उत्पादक हो सकती है, क्योंकि उत्पादकता अन्योन्यान्वित—अन्याश्रित—है। भारतवर्ष ऊख का आदि जन्म दाता है (C. W. F. Cotton: Hand Book of Commercial information for India, p. 37)। पर जैसा पीछे कह चुके हैं, यहाँ उसकी अन्य देशों से प्रति एकड़ कम उत्पत्ति होती है। यदि उत्तम और यथेष्ट खाद का उपयोग किया जाय तो जितनी एकड़ भूमि में

अब ऊख उत्पन्न होता है, उतनी ही भूमि में हमारी सारी आवश्यकता के लिये खांड़ तैयार हो सकती है (Review of Agricultural operations in India, (1921–22), p. 11)। परन्तु यहाँ खाद् का अकथनीय अभाव है। इस अभाव के अनेक कारण हैं—

(क) रेलवे जन्य आवश्यकता के कारण रुई, जूट आदि की अधिक उत्पत्ति के लिये अधिक भूमि में इनकी खेती हो रही है। जैसे, १८९२ में ९० लाख एकड़ भूमि में रुई हुई थी, पर अब १५०—१६० लाख एकड़ में उपजती है। अन्न आदि के उपयोग से मल-मूत्र के रूप में और तिलहन की उत्पत्ति के कारण खली के रूप में भूमि का खाद् रूप से पोषण होता है, पर जूट, रुई, आदि से नहीं होता। यदि रेलें इनके निर्यातन में सहायता न दें तो इनकी न तो अधिक उत्पत्ति हो और न भूमि ही बुभुक्षित रहकर क्षीणता को प्राप्त हो। (ख) कृषि द्रव्यों का कच्चा ही विदेशों को जाना, भूमि की उत्पादक शक्ति को विदेशों को भेजना है$। तिलहन का विदेशों को जाना तो कृषि के लिये अत्यन्त घातक है। तिलहन की खली में बहुत उत्तम कृषि-पोषक खाद् है‡। रेलें केवल अन्न और तिलहन को ही प्रचुर परिमाण में विदेशों को नहीं भेज देतीं, परन्तु भूमि की प्राणपोषक खली, अस्थियां (हड्डियां) और शोरा आदि को भी भेज देती हैं! यह लिखने की आवश्यकता नहीं कि रेलें कम भाड़ा लेकर किस प्रकार कच्चे माल और खाद् को विदेशों को भेजने में समर्थ होती हैं और अधिक भाड़ा लेकर यहां के

$ Mill: Economy, Bk. *V*, Ch. *X*, p, I,

‡ Imp. Gazetteer. *Vol.* III, p, 178;

Mukerji: Indian Agriculture, p. 209–217,

कृषकों को उनके उपयोग से वञ्चित रखती हैं*। संसार के सुसम्पन्न देशों के सुसमृद्ध किसान जितना मूल्य दे सकते हैं, उतना मूल्य भी हमारे दीन किसान देने में समर्थ नहीं, इस पर भी रेलों के कारण उनके लिये मूल्य की और भी वृद्धि हो जाने से वे बिचारे विदेशी सम्पत्तिशाली कृषकों की प्रतिद्वन्द्वता में खाद खरीद ही किस तरह सकते हैं ? (ग) कोयला और जलाने की लकड़ी का भाड़ा इतना अधिक है कि गरीब लोग उनका उपयोग करने में असमर्थ हैं। उन्हें गोबर आदि जला कर ही अपना काम चलाना पड़ता है (Lupton: Happy India)। गोबर आदि खाद के लिये बहुत उपयोगी हैं। गोबर में पोधों के लिये उपयोगी आक्सिजन, कार्बन, हाईड्रोजन, मगनेशियम, गन्धक और फास्फोरस आदि कई चीजें विद्यमान हैं। हमारे यहाँ के किसानों को रेलवे के अनुग्रह से गोबर जैसी सुलभ और साधारण वस्तु भी नसीब नहीं होती।

२—जल। कृषि का केवल वर्षा पर अवलम्बित रहना उचित नहीं समझा जाता (न कृषि देवमातृका)। अथवा यों समझिये कि अवर्षण और वर्षा की कमी के प्रतिकार के लिये नहरों की आवश्यकता है। भारत जैसे देश में, जहाँ वर्षा अपर्याप्त और अनिश्चित है, वहां नहरों की बहुत आवश्यकता है। लोगों का कहना है कि भारतीय नहरों से जो लाभ होता है उसके समान संसार में कोई सोने की खान नहीं†। इंगलैंड के कल-कारखानों की उन्नति के लिये यहां जो रेलों की वृद्धि

* Monograph, p. 399; Imp. Gazetteer Vol, III, p.22,

† Sir Arthur Cotton: Irrigation work in India, p. I; Sir J. Strachey: India, p, 222,

हो रही है उसके कारण नहरें आदि सिंचाई के मार्गों में महती बाधा उपस्थित हो गई है*। रेलों की धुन में केवल नहरों को बनाने की ही सुध न रही किन्तु पहले की नहरों और जलाशयों के पुनरुद्धार को भी उपेक्षा की गई है†। यद्यपि रेलों में जितना धन लगा हुआ है उससे लाभ नहीं होता और नहरों में जो धन विनियोग हुआ है उससे १०–१२ प्रति सैकड़ा लाभ होरहा है तथा और भी अधिक लाभ होने की आशा है‡, तथापि रेलों की आंखमूंद कर वृद्धि की जा रही है—नहरों की ओर बिलकुल ध्यान ही नहीं है!

एक ओर तो रेलवे-कार्य में बहुत अधिक भूमि (रेलवे सड़क के दोनों ओर की भी बहुत सी भूमि रेलवे के आधीन है) आगई; दूसरे, रेलवे के कारण बहुत अधिक भूमि में खेती होने लगी है। जिसका दुष्परिणाम एक यह हुआ कि बहुत से जंगल—वृक्ष—नष्ट-भ्रष्ट होगये हैं। यह कृषि के लिये अत्यन्त घातक है। इंगलैंड की भूमि जलार्द्र है, वहां जल से बचने का प्रयत्न करना पड़ता है। यहां भूमि शुष्क है, इसलिये यहाँ भूमि में आर्द्रता रखना आवश्यक है§। परन्तु वृक्ष विहीन भूमि में आर्द्रता रखना बहुत दुस्तर है। वृक्ष वर्षा का जल संचित कर लेते हैं और इस जल को शनैः शनैः थोड़ा थोड़ा देकर भूमि का सिंचन करते हैं। अपने फूल पत्तों द्वारा वाष्पोत्सर्ग (Transpiration) कर वायु को तरी पहुंचाते हैं। प्रत्येक साधारण वृक्ष से प्रति दिन

* Rai: England's Debt to India, p. 268,

† Digby, p. 163.

‡ The *Punjab* in *Peace* and War, p. 275.

§ *Voelcker*: Indian Agriculture, ch. v.

४० गैलन (५ मन) जल वाष्पोत्सर्ग द्वारा निकलता है। वायु-मण्डल के जलार्द्र होने से वर्षा-वर्षण में सहायता मिलती है। नाइल के डेलटा में वृक्षों के लगाने से ६ दिन के स्थान में ४० दिन प्रति वर्ष वर्षा होने लगी है। वृक्षों के द्वारा वायु मण्डल की उष्णता आदि न्यून होने से ताप-परिमाण temperature सम रहता है। जहाँ वायु की प्रचण्डता हानिकारक है वहाँ वृक्ष उसका प्रतिरोध कर कृषि की रक्षा करते हैं। ये अपना आहार मूलों द्वारा भूमि के अतलतल से लेकर पत्तों में संचित करते हैं। अतएव जब पतझड़ होता है, तब पत्ते मिट्टी में मिल कर खाद रूप में भूमिका अकथनीय उपकार करते हैं। वृक्षों की जड़ें ग्रीष्म में ठण्डी और शीत में उष्ण रहती हैं, इस लिये हीन से हीन भूमि भी इनकी सहायता से अत्युत्तम होजाती है। संक्षेप में यह कहा जासकता है कि वृक्षों द्वारा भूमिका प्राकृतिक सिंचन, खाद रूप में पोषण और ऋतु-विकार से संरक्षण होता है। यही कारण था कि पहले यहाँ अवर्षण और ऋतु विपर्यय बाधा नहीं पहुँचाते थे। जिन स्थानों में वृक्षों को नष्ट कर दिया गया वहाँ वर्षा का जल आस-पास की भूमि के लिये लाभोत्पादक नहीं होता पर उसका तुरंत बाढ़ के रूप में परिणत होने का भय रहता है। जल के बह कर चले जाने से वायु की आर्द्रता का संहार होता है, जिससे उत्पत्ति-क्रम (Vegitation) का सर्वथा परिवर्तन होजाता है। वृक्षों के काटने से यहाँ की बहुतसी उत्पादक भूमि बंजर हो गई है! वृक्ष-विहीन भूमिपर अति वृष्टि का तो बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है। यूरुप में अतिवृष्टि के कुपरिणामों को रोकने के लिये बहुत धन व्यय कर वृक्ष लगाये जाते हैं। भारत जैसे देशों में जहाँ बहुधा बहुत प्रचण्ड वृष्टि होती है वहाँ वृक्ष-विहीनता के कारण कृषि पर बहुत भयं-

का असर पड़ना स्वाभाविक है। निष्कर्ष यह है कि वृक्षों को नष्ट-भ्रष्ट करने से नित्य और नियमित जल-सिंचन से वञ्चित रहने के अतिरिक्त आकस्मिक बाढ़ों द्वारा बहुत क्षति पहुँचती है*।

३—पशु। बहुतसी गोचरभूमि रेलवे सड़क के काम में आगई है। इसके अतिरिक्त यूरुप की अपेक्षा भारत में रेलवे-सड़क के दोनों ओर बहुत अधिक भूमि रेलवे के आधीन है। यह भूमि निकम्मी पड़ी हुई है। सरकार इस भूमि का उपयोग पशुओं के लिये नहीं करना चाहती†। और कृषि द्रव्यों को रेलवे जन्य अधिकाधिक माँग के कारण बहुत से चरागाहों में खेती होने लगी जिससे चर-भूमि की बहुत कमी हो गई है। अन्य देशों में प्रत्येक पशु के लिये १०-१२ एकड़ गोचरभूमि है, परन्तु भारत में केवल एक एकड़! इस कमी के कारण पशुओं (बैल गाय आदि) को चारा नहीं मिलता‡। चारे के लिये रेलभाड़ा बहुत अधिक होने के कारण भी पशुओं को आवश्यकतानुसार चारा नहीं मिलता। खाण्ड, जूट, तिलहन आदि का जो भाड़ा रेल लेती हैं उससे उन्हें प्रति टन ८॥ रुपये का लाभ होता है, और अन्न से ७॥ रुपये का, चारे से (घास, खली और भुस्सा आदि से) ७ रुपये का, नमक और फल से

* वृक्षों के लाभों के सम्बन्ध में देखो :—

Wm. Schlich; Manual of Forestry, Vol. *I*, p. 10-22; D. Howitz's *Report* on Re-Afforestation—

(Parliamentary Return No. 39 of 1884);

Forestry Com.—Parliamentary Paper 287 of 1885.

† Assembly Debates, Dt. 2–7–1923, p. 4846.

‡ Hunter; England's Work in India, p. 65–66.

६॥ रुपये का*। अन्न आदि के समान चारे का भाड़ा लेना रेलवे के लिये कहाँ तक न्यायसंगत है, यह पाठक ही विचारें।

तिलहन की खली पशुओं के लिये अत्यन्त पौष्टिक पदार्थ है। रेलें केवल तिलहन को ही विदेशों को भेज कर इसकी खली से हमें वञ्चित नहीं रखतीं, किन्तु खली को भी विदेशों को भेज देती हैं। चारा और खली की कमी के कारण पशुओं का ह्रास होने के अतिरिक्त वे अत्यन्त निर्बल हो रहे हैं। निर्बलता का दिग्दर्शन करना है तो पंजाब के झेलम-जिले में आइये। वहाँ आप निर्बल बैलों के साथ गधी जुती हुई देखेंगे! निर्बलता के कारण अनेक रोगोंने उनमें अड्डा कर लिया है†। पहले के बैलों की बलिष्ठता के सम्बन्ध में अनेक विदेशी यात्रियों ने बहुत कुछ लिखा है। उनका कहना है कि 'मध्यकालीन भारत में भी बैल बहुत बलिष्ठ थे। वे घोड़ों के समान कूदते, उछलते, दौड़ते और चलते थे‡'। बहुत से स्थानों में रेलवे-सड़क के दोनों ओर पशुओं के रोकने के लिये तार Fencing wires न होने से अगणित पशु प्रति वर्ष कट मरते हैं। गोरे-फौजियों के लिये लाखों गौओं का जो वध होता है उसके अतिरिक्त रेलें प्रचुर परिमाण में माँस और चमड़ा विदेशों को भेजने में उत्तेजना देती हैं जिससे प्रति वर्ष लाखों पशुओं का संहार होता है। एक ओर तो पशुओंके लिये चारे आदि का अभाव और दूसरे उनका संहार। इसका भीषण दुष्परिणाम हमारे

* Ghose; Ry. *Problems*, p. 140.

† *Voelcker*; Indian Agriculture, p. 4.

‡ *Pietro della valle*, Italian Traveller, Vol. I, p.21; Ball; Travels of Tavernier, Vol. I, p. 43-44; J. Sarkar; India of Aurangzeb, p. 66.

सम्मुख उपस्थित है। इनकी (बैल आदि की) दिन पर दिन कमी हो रही है। रोहतक और हिसार प्रान्त गाय और बैलों की खान समझी जाती है। वहां भी १०० एकड़ भूमि के लिये २ बैल हैं। बैलों का भीषण ह्रास देखना है तो आप बंगाल जाइये। वहाँ आपको अस्थिचर्मावशिष्ट गायों द्वारा खेती होती हुई नजर आयगी। यहाँ इंगलैंड की तरह घोड़ों और मशीनों से खेती नहीं होती। हमारी कृषि का जीवन तो बैल आदि पशुओं पर ही निर्भर है। इनकी कमी और दुर्बलता, अन्य अनेक दुष्परिणामों के अतिरिक्त, कृषि के लिये असंदिग्ध रूप से घातक है।

यह कहना युक्तियुक्त नहीं कि 'यहाँ के किसान कृषि विज्ञान से अपरिचित हैं। और वे नवाविष्कृत कलों का उपयोग नहीं करते*। अतएव भूमि की उत्पादकता का ह्रास और कृषि का अपकर्ष हो रहा है।' यूरुप और अमेरिका के वैज्ञानिकों ने स्वीकार किया है कि भारतीय कृषक यूरोपीय कृषकों की अपेक्षा अधिक चतुर हैं‡।' हमारे यहाँ के हल आदि बहुत सुगम और आवश्यकता के लिये पूर्णतया पर्याप्त हैं। सरकार के कृषि-विभाग के मि० मकेना का कहना है कि यहाँ के किसानों के लिये इंगलैंड जैसे हल आदि का उपयोग करना उचित और आवश्यक नहीं†। इन बातों से सिद्ध होता है कि खाद, जल और

* Industrial Com. Report, Chapter V.

‡ T.W. Holderness; Peoples & problems of India, p.84; Sir J.Strachey; India, its administration etc., p.394; Cotton; New India, p. 85; Voelcker; Indian Agriculture, Ch. II; Loveday; Indian Famines, p. 7,

† James Mackenna; Agriculture in India, p. 29.

पशुओं का अभाव और भूमि का अधिक जोतना ही वास्तव में कृषि की अवनति का कारण है। रेलवे सड़क के लिये बनाये हुए बांधों Embankments के बीच-बीच में जल-निर्गम-मार्ग बहुत कम हैं—बहुत दूर दूर पर हैं। अतएव वर्षा का जल बहुधा बाढ़-रूप में परिणत होकर खेतों को नष्ट कर देता है (देखो,पाँचवाँ प्रकरण)।

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि रेलों ने कृषि को बहुत भारी धक्का लगाया है। प्रो० मुकर्जी का कहना है कि 'रेलों का विदेशियों द्वारा नियंत्रण होने के कारण वे (रेलें) हमारी कृषिजात-सम्पत्ति से हमें वञ्चित कर देती हैं। वे ऐसे व्यापार में सहायता देती हैं जिससे हमारा कृषि-व्यवसाय विदेशियों के हाथ में आ गया है। यदि विदेशी व्यापारी हमारी कृषि का इसी प्रकार रक्तशोषण करते रहे तो निस्सन्देह एक दिन सारा देश इस व्यवसाय में भी उनके आश्रित हो जायगा। यह ध्यान देने की बात है कि उक्त रक्त-शोषण क्रिया में रेलें योग दान दे रही हैं', Mukerjee: Economics, p. 312–13।

जब कृषि की ही चिन्तनीय दुर्दशा है तब कृषकों की क्या उन्नति हो सकती है? जो लोग कृषकों की उन्नति की बातें करते हैं, उनका कहना है कि 'रेलों के कारण कृषिजात द्रव्यों की बहुत अधिक मूल्य-वृद्धि होगई है। इस लिये किसानों को आशातीत लाभ हो रहा है। इतना अधिक लाभ उन्हें पहले कभी नहीं हुआ †।' इसमें संदेह नहीं कि मूल्यवृद्धि का प्रधान कारण रेलवे है (देखो, १६ वाँ प्रकरण)। किन्तु प्रश्न तो यह है कि इस मूल्यवृद्धि से हमारे किसानों को वास्तव में लाभ हुआ है

† Imp. Gazetteer, Vol. III, p. 386.

अथवा नहीं? जो मूल्यवृद्धि हुई है उसका अधिकांश लाभ गोरे व्यापारी और बहुत कुछ लाभ मध्यवर्ती व्यापारी हजम कर जाते हैं। किसानों को लाभ कहां? इंगलैंड के प्रधान-मंत्री मि० मेक्डोनल्ड ने अपनी पुस्तक "The Awakening of India" में लिखा है कि 'भारतीय कृषक अपने अत्यन्त परिश्रम से उत्पन्न किये हुए माल को बेचकर बहुत थोड़ा धन प्राप्त करते हैं'। एक अंग्रेज लेखक का कहना है कि 'कृषिद्रव्यों को बेचने से जो धन भारत के किसानों को मिलता है, वह विदेशी वस्तुओं के खरीदने में व्यय हो जाता है। जिसका फल यह होता है कि फसल के कुछ ही सप्ताह बाद वे भूख से मरने लगते हैं*।' इन बातों से स्पष्ट है कि मूल्य-वृद्धि के कारण किसानों को कुछ लाभ नहीं है।

रेलों के कारण उद्योग-धन्धों के नष्ट होने से किसानों की संख्या बढ़रही है। किसानों की अधिकता के कारण प्रत्येक जन के भाग में बहुत कम भूमि आने से और रेलों के कारण भूमि की उत्पादक शक्ति के ह्रास के कारण किसनों की आय पहले से बहुत कम होगई है। पहले किसान लोग खेती के अतिरिक्त समय में वस्त्र बुनने आदि का काम करते थे। रेलवे की कृपा से यहाँ के उद्योग-धन्धों का सर्वनाश होजाने के कारण उन्हें एक मात्र कृषिपर ही अवलम्बित रहना पड़ता है। कहने का तात्पर्य यह है कि किसानों को जो आमदनी अन्यान्य व्यावसायों से होती थी वह अब नहीं होती। अर्थात् उनकी आय चारों तरफ से कम हो रही है और मूल्य वृद्धि के कारण उनका व्यय बढ़ रहा है। इसका दुष्परिणाम हमारे सामाने है। कृषक ऋण के

* Loveday: Indian Famines, p. 107.

भार से प्रति दिन अधिकाधिक दब रहे हैं*। वे अत्यन्त दीन हीन हैं†। इस समय उनके समान दीन संसार में और कोई नहीं है‡। इस दीनता के कारण आधे—लगभग १०-१२ करोड़—किसान यह नहीं जानते कि पेट भर अन्न खाना किसे कहते हैं§। यहाँ के किसानों की करुणामयी दशा के काँपते हुए चित्र का अवलोकन कीजिये—

बरसा रहा है रवि अनल, भूतल तवा सा जल रहा,
है चल रहा सनसन पवन, तन से पसीना ढल रहा।
देखो, कृषक शोणित सुखा कर, हल तथापि चला रहे,
किस लोभ से इस आंच में, वे निज शरीर जलारहे?
घन घोर वर्षा हो रही है, गगन गर्जन कर रहा,
घर से निकलने को कड़क कर वज्र वर्जन कर रहा!
तो भी कृषक मैदान में करते निरन्तर काम हैं,
किस लोभ से वे आज भी लेते नहीं विश्राम हैं?
बाहर निकलना मौत है, आधी अन्धेरी रात है,
आः शीत कैसा पड़ रहा है, थर थराता गात है।
तो भी कृषक ईंधन जला कर खेत पर हैं जागते,
वह लाभ कैसा है न जिसका लोभ अब भी त्यागते?
यह अन्न तो लेंगे विदेशी, लाभ क्या उनको कहो?
मिलता उन्हें जो अर्ध भोजन विघ्न उसमें भी न हो!

* Lord Hamilton, Commons Debates, Dt. 3-2-1902.

† Digby, p.278; Loveday; Indian Famines, p. 5; J. Caird; India, the land & the people, p. 212-213.

‡ Hyndman; Asia, p. 221.

§ C. A. Elliott. (Governor of Bengal)-Digby, p. 509.

पानी बना कर रक्त का कृषि कृषक करते हैं यहाँ,
फिर भी अभागे भूख से दिन रात मरते हैं यहाँ।'
(भारत-भारती)

रेलवे-सड़क को भूमि के सदैव के लिये नष्ट होजाने और उसके दोनों ओर की बहुत सी भूमि के निकम्मे होजाने* के अतिरिक्त रेलवे-सड़क के दोनों ओर के खेतों का पारस्परिक सम्बन्ध टूट जाने से कृषकों को बहुत असुविधा हो रही है। दूसरी बात यह है कि जो भूमि रेलवे के काम में है उसका अधिकांश किसानों से कानून की (लैंड एक्यूजीशन एक्ट--Land Acquisition Act) शक्ति द्वारा छीना हुआ है। यद्यपि छीनी हुई भूमि का कुछ मूल्य दिया जाता है जो वास्तविक मूल्य से बहुत कम होता है, तथापि किसानों को उनकी भूमि से वञ्चित करना उन पर कुठाराघात करना है। यदि देश-हित के लिये भूमि की आवश्यकता हो तो उस अवस्था में भूमिका छीनना उचित हो सकता है। उक्त एक्ट की धारा ४०(१)बी का भी यही तात्पर्य है। यहाँ के लैंड-एक्यूजीशन एक्ट के समान इंगलैंड में लैंड-क्लाजेज एक्ट—Land Clauses Act—है। इस एक्ट की व्याख्या करते हुए Encyclopaedia of the Laws of England, Vol 8, p. 5–6 में लिखा है कि 'रेलवे को भी देश हितकारी समझना चाहिये, और इसलिये रेलवे के लिये भूमि को छीनना न्याय संगत है। यहाँ रेलें देश हित के लिये नहीं बनाई गई अतएव लैंड-एक्यूजीशन एक्ट की उक्त धारा ४०(१)बी के अनुसार भूमि नहीं छीनी जा सकती। इसीलिये इस एक्ट की धारा ४३ में स्पष्ट लिखा है कि 'रेलों के लिये जो भूमि ली जायगी उसके सम्बन्ध में धारा [४०(१)बी] का विचार न किया जायगा'। अर्थात् रेलवे के लिये जो भूमि छीनी जायगी उसके

* Acworth: Ry, Economics, p, 12,

सम्बन्ध में देश के हिताहित का कोई प्रश्न न होगा। इंगलैंड में रेलवे के लिये भूमि प्राप्त करने के पूर्व रेलवे-संचालकों को यह प्रमाणित करना पड़ता है कि उनको रेलवे से निस्सन्देह देश का उपकार होगा*।

सारांश यह है कि रेलों के कारण कृषि और कृषकों की अवस्था उन्नत नहीं हुई, प्रत्युतः अवनत हो हुई है। कृषकोंसे भूमि की उपज का जो ५०-७५ प्रति सैकड़ा माल गुजारी का लिया जाता है उसके कारण, भूमि पर किसानों का स्वामित्व न रहना और समय समय पर लगान-वृद्धि होना, इत्यादि कारणों से वे नैराशमय दरिद्रता में नाशमान हो रहे हैं सही परन्तु रेलों ने उनका जितना अहित किया उतना और किसी कारण से नहीं हुआ। जब तक रेलें उनकी उन्नति में बाधक रहेंगी तब तक उनके अभ्युत्थान को आशा वृथा है और उनकी आर्थिक अवस्था सुधरने के लिये जो जो कानून (Co-operative Society Act; Agricultural Loans Act; Improvement Loans Act; etc. etc) बने हैं उनसे कुछ लाभ नहीं हो सकता।

दुर्भिक्ष।

यहाँ की रेलों के यशोगान में कहा जाता है कि दुर्भिक्ष दमन करने में रेलों ने आश्चर्यजनक काम किया है। इस बहाने से दुर्भिक्ष-निवारक-कोष के करोड़ों रुपये रेलों की श्रीवृद्धि में स्वाहा कर दिये गये। वास्तव में रेलों ने दुर्भिक्ष-दमन नहीं किया पर उनके कारण दुर्भिक्षों की दिन-पर-दिन वृद्धि हो रही है:—

* Macgeorge: Ways and Works, p. 244.

(१) अंग्रेजी शासन के पहले—
१००० से १७५० तक (७५० वर्षों में) १८ दुर्भिक्ष।

(२) अंग्रेजों के शासन-काल में—
(क) रेलों के निर्माण के पूर्व—
१७५० से १८५० तक (१०० वर्षों में) ११ दुर्भिक्ष !
(ख) रेलों के निर्माण के पश्चात्—
१८५० से १९०० तक (५० वर्षों में) २४ दुर्भिक्ष !

पहले प्रत्येक दुर्भिक्ष में एक लक्ष से अधिक जन कभी कालग्रसित नहीं हुए। किन्तु इन २४ दुर्भिक्षों में ३१० लाख काल के ग्रास हो गये। केवल १८९१ से १९०० तक के दुर्भिक्षों में दो करोड़ जन कालाग्नि में स्वाहा हो गये !

सन् १९०१ से १९२० तक प्रायः प्रत्येक वर्ष एक न एक स्थान में दुर्भिक्ष पड़ा है।

रेलों के निर्माण के पश्चात् जो दुर्भिक्ष पड़े हैं वे पहले के दुर्भिक्षों से कहीं अधिक भयंकर और घातक हैं*।

इन अङ्कों से ज्ञात होता है कि रेलों के कारण दुर्भिक्षों की कमी नहीं हुई प्रत्युतः उनकी भयंकर वृद्धि हुई है। अंग्रेजी शासन के पृष्ठ-पोषकों का कहना है कि इस वृद्धि का कारण रेलें नहीं, किन्तु जन-संख्या की वृद्धि और वर्षा की कमी है। जन संख्या की इतनी वृद्धि नहीं हुई कि जिससे लोग भूखों मरें—जितने जन हैं उनके लिये यथेष्ट अन्न उत्पन्न होता है

* दुर्भिक्ष सम्बन्धी अङ्कों के सम्बन्ध में देखो—
Digby, p. 123–135; Loveday: Ind. Famines, App A, Rai: England's Debt to India, p. 267–68; Census Report, 1921, Vol. I, part I, p. 11,

(देखो, १४ वां प्रकरण)। दूसरे इंगलैंड आदि की जन-वृद्धि की तुलना में तो यहां कुछ भी वृद्धि नहीं हुई*—

प्रति सैकड़ा जन-वृद्धि।

नाम देश	१८९१ से १९०१ तक	१९०१ से १९११ तक	१९११ से १९२१ तक
इंगलैण्ड ...	१२	११	अङ्क प्राप्त नहीं
अमेरिका ...	२०	२१	"
भारत	१	६	१

इसके अतिरिक्त इंगलैंड में प्रति स्कायर मील ६४९ जन हैं। बेलजियम में ६५४, जर्मनी में ३३२, पर यहां केवल १७७†। यद्यपि यहां की अपेक्षा इंगलैंड आदि में जन-संख्या की अधिक वृद्धि हुई है और वहां प्रति-मील अधिक जन हैं, तथापि वहां दुर्भिक्ष का संताप स्वप्न में भी नहीं होता। इससे सिद्ध होता है कि यहां जन-संख्या को जो थोड़ी बहुत वृद्धि हुई है वह दुर्भिक्षों का कारण नहीं हो सकता।

यहाँ के दुर्भिक्षों का कारण अवर्षण भी नहीं। सारे देश में कभी एक साथ वर्षा का अभाव नहीं होता। किसी प्रान्त में वर्षा कम होती है तो दूसरे प्रान्तों में पर्याप्त। इसके अतिरिक्त नदी-नहरों से बहुत सिंचन-कार्य होता है। सरांश यह है कि जलका अभाव होने पर भी आवश्यकतानुसार अन्न उत्पन्न होता है। अन्न की इतनी कम उत्पत्ति नहीं है

* जन संख्या सम्बन्धी अङ्कों के लिये देखो—
Hazells "Annual" 1917 (England's Debt, p. 273); Census 1921 Rept., Vol. I, part I, p. 7. †. p. 5.

कि जनता भूख से मरे*। इंगलैंड के प्रधान-मंत्री मि० मेक्डोनल्ड ने लिखा है कि 'वर्षा का अत्यधिक अभाव होने पर भी भारत में यथेष्ट अन्न उपजता है। सन् १९०० का गुजरात का अकाल बहुत भयंकर था, पर सरकारी हिसाब से भी उस समय पर्याप्त अन्न था। इसलिये दुकालों का कारण अन्न की कमी बताना बिलकुल निर्मूल है†।' १८८० और १८९८ के दुर्भिक्ष-कमीशनों ‡ और अन्यान्य प्रतिष्ठित अंग्रेजों ने स्वीकार किया है कि अवर्षण या अन्न की उत्पत्ति की कमी यहाँ के दुर्भिक्षोंका कारण नहीं है¶। अब यह विचारणीय है कि रेलों ने किस तरह दुर्भिक्षों को उत्तेजना दी है।

सुविख्यात यात्री मैगस्थनीज का कहना है कि 'भारत में कभी दुर्भिक्ष नहीं पड़ा, और न कभी अन्न की ही कमी हुई$।' एक अंग्रेज लेखक के कथनानुसार 'अंग्रेजों के आने के पहले अनावृष्टि आदि के कारण यदि दुर्भिक्ष पड़ भी जाता था तोभी जनता भूख से नहीं मरती थी। क्योंकि प्रत्येक गांव में दुकाल के प्रत्याहार के लिये बहुत अन्न संचित रहता था। हमारे (अंग्रेजों के) आने पर पहले तो इस संचय का शनैः शनैः ह्रास होता रहा और अब इस संचय का नाम

* W. M. Hutchinson: Indian *Poverty & Indian*— Famines, (Asiatic Quarterly Review, 1903, p.52.); The New England Magazine (Boston), Sept.1900.

† Macdonald: India, p. 163.

‡ Famine Com. (1880) Rep., p. 59; (1898) *Rep.*, p.358,

¶ Lord Hamilton, Commons Debates, 3-2-1902,

$ J. W. MacCrindle: Ancient India, p. 32.

तक नहीं है† ।' यह संचय कहाँ और कैसे विलुप्त हो गया ? अब यह क्यों नहीं रहता ? इस सम्बन्ध में औरों का मत उद्धृत न कर इंगलैंड के प्रधान-मंत्री मि० मेक्डोनल्ड के ही शब्द पर्याप्त हैं । आपका कहना है कि 'भारत में रेलों के कारण दुर्भिक्षों की भीषणता बढ़गई है । रेलों के कारण भारत का अन्न विदेशों को चला जाता है ! जिसने भारत नहीं देखा उसके लिये यह समझना बहुत कठिन है कि कृषि-द्रव्यों को विदेशों को भेजने के लिये वहाँ कैसा भयंकर प्रबन्ध [colossal nature of export organisation] है ! वहाँ की प्रत्येक मण्डी में (जहाँ कृषिद्रव्यों का विक्रय होता है) गोरे व्यापारियों की एजेंसियाँ हैं । ये एजेंसियाँ प्रायः फसल के तैयार होने के पहले ही किसानों से माल खरीद लेती हैं । एक भी विदेशी व्यापारी-कम्पनी उष्ण प्रधान देश की ग्रीष्म में मध्यान्ह के सूर्य्य के समान भारतीय जीवन-स्रोत का जल-रक्त शोषण कर उसे (भारत को) दुःख-दारिद्र्य के रूप में शुष्क बना सकती है* !' यही महाशय आगे लिखते हैं कि 'पहले कृषकों के पास संचित अन्न रहता था, अब बिलकुल नहीं है । रेलों के पहले यदि दुर्भिक्ष पड़ता था तो वह प्रान्त विशेष में परिमित रहता था । रेलों के कारण अब वह चारों तरफ फैलजाता है और सारा देश उसका शिकार बन जाता है ।' और भी कई गोरे-लेखकों ने इस बात को स्वीकार किया है‡ ।

† Robert Night; *India before our time and since.*—Digby, p. 510; Loveday: *Indian Famines*, p. 107.

* Macdonald: *India.*

‡ Sir Compbell; "*The British Empire*," p. 79; B. Fuller: *The Empire of India*, p. 67; Loveday: *Indian Famines*, p. 107.

रेलों की कृपा से अन्न के खेतों में जूट, रुई आदि की खेती होने लगी है और भूमि की उत्पादक शक्ति का ह्रास हो रहा है। इसलिये अन्न की अधिक उत्पत्ति नहीं होती। जो अन्न उत्पन्न होता है वह प्रतिजन के भाग में आधा सेर प्रति दिन आता है; जैसा पहले लिख चुके हैं। इतनी उत्पत्ति आवश्यकता से अधिक नहीं। इस परिमित उत्पत्ति का अल्पांश भी विदेशों को जाने से यहाँ वालों का बुभुक्षित रहना स्वाभाविक है। रेलों के कारण बहुत अन्न यहाँ से चला जाताहै, इसलिये अधिकांश भारतवासियों को पेट भर अन्न नहीं मिलता। जिस वर्ष थोड़ी बहुत फसल कम होती है उसी वर्ष दुर्दमनीय दुर्भिक्ष आ पड़ता है। यदि अन्न के निर्यातन में रेलें सहायता न दें तो हमें दुर्भिक्षों की असह्य यातना स्वप्न में भी न देखनी पड़े।

दूसरी बात यह है कि यद्यपि बहुधा देश में अन्न रहता भी है अथवा दुर्भिक्ष-पीड़ित प्रान्त में यथेष्ट अन्न पहुँच भी जाता है तथापि दुर्भिक्ष की भीषणता कम नहीं होती! इसका कारण ढूंढने के लिये आपको हमारे 'कल्प-वृक्ष' रेलपथ के अतिरिक्त और कहीं जाने का कष्ट न उठाना पड़ेगा। श्रीमती रेलों ने यहाँ के उद्योग-धन्धों को नष्ट कर देश को कृषि-क्षेत्र बनादिया है। सर हारसप्लङ्कट [Sir Horace Plunkett] के शब्दों में 'जिस देश के उद्योग-धन्धे नष्ट हो जाते हैं—जो देश केवल कृषि पर आश्रित रहता है—उस देश के साम्पत्तिक अङ्ग-प्रत्यङ्ग शिथिल हो जाते हैं, जिसका फल दुर्भिक्षों की वृद्धि होता है*।' १८८० के दुर्भिक्ष-कमीशन का कहना है कि 'एकमात्र कृषि पर अवलम्बित रहना ही भारतीय दुर्भिक्षों

* Recess Com. Report,—Indust. Com. Rept., p. 306.

का मूलकारण है।' उद्योग धन्धों में निरत जन धन हीन नहीं होते अतः मंहगी के समय वे भूखों नहीं मरते। यहाँ के उद्योग-धन्धों का तो ह्रास हुआही पर वार्षिक दोहन के कारण देशवासी अत्यन्त दरिद्री हो गये हैं। इस अकथनीय धन-ह्रास के कारण जनता में यह शक्ति नहीं रही कि वह सुसम्पन्न विदेशियों की प्रतिद्वन्दता में अधिक मूल्य देकर अन्न के निर्यातन को रोक सके। इन बातों पर विचार करने पर यह निस्सन्देह कहा जासकता है कि रेलवे-जन्य दारुण दरिद्रता ही भारतीय दुर्भिक्षों का आदि कारण है। इस सत्य को अनेक अकाट्य युक्तियों द्वारा गण्य मान्य देशी और विदेशी महानुभावों ने प्रमाणित किया है*। इस विवेचना से सिद्ध होता है कि रेलों के कारण दुर्भिक्षों का दमन नहीं हुआ किन्तु उनकी उत्तरोत्तर वृद्धि हुई और हो रही है। और अब भारत वर्ष दुर्भिक्षों का घर हो गया है†। इसी कारण १८९७ और १९०० ई० के दुर्भिक्ष कमीशनों ने अपनी अपनी रिपोर्टों में रेलवे के और विस्तार का विरोध किया था‡।

* *R*. C. Dutt; Famines in *I*ndia, p. 17;
Digby, p. 118–137;
Macdonald; India, p. 163;
New England Magazine, Sep., 1900;

† Dr. *C*. V. Drysdale [President of New Generation League, London]; "Empire & *B*irth-Rate," p. 11.

‡ Famine *C*om. Report, [1898] p. 330; [1901] p. 79.

सोलहवां प्रकरण।

अन्यान्य लाभ।

—•◦◦◦—

१—स्वास्थ्य रक्षा।

इमर्सन ने [Emerson] कहा है कि स्वास्थ्य ही सर्वोपरि सम्पत्ति है। रसकिन Ruskin कहता है कि The wealth of a nation is the health of its people. अर्थात् देशवासियों की आरोग्यता ही देश का धन है—["The true veins of wealth are purple—and not in Rock but in Flesh"—Ruskin; "Unto This Last, p. 64–65.] । कवि कालिदास कहते हैं 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' । धर्म अर्थ काम और मोक्ष का आदि कारण आरोग्यता ही है—धर्मार्थ काममोक्षाणामारोग्यं मूलकारणम् ।।अतएव यह विचारणीय है कि रेलों ने इस सम्बन्ध में क्या किया ? वैसे तो सब जगह ही रेलों के कारण जनता की दृष्टि, घ्राण और श्रोत्र इन्द्रियों पर आघात पहुँचा, और व्यक्तिगत स्वस्थता पर भी साधारणतः बुरा प्रभाव पड़ा है* । किन्तु यहां की रेलों ने देश के

---

* Williams: Ry. Economics, p 171,

स्वास्थ्य पर भीषण आघात किया है। स्वास्थ्य-रक्षा के लिये वर्षा के जल का स्वच्छन्दता से निकल बहना बहुत आवश्यक है। रेलवे-बांधों embankment के कारण वर्षा के जल के स्वच्छन्द-प्रवाह में बाधा उपस्थित हो गई है। बाँधों में जल-निर्गम-मार्ग (Openings) हैं सही पर वे जहाँ तहाँ हैं अतः जल-प्रवाह स्वतंत्रता से प्रवाहित नहीं हो सकता। इसका दुष्परिणाम केवल बाढ़ों के रूप में ही नहीं है किन्तु जल के रुकने से भूमि दलदल होजाती है, जिससे स्वास्थ्य पर बड़ा भयंकर प्रभाव पड़ता है। बांधों के कारण ऊपर के जलका प्रवाह तो अवरोधित होता ही है, पर इसके अतिरिक्त रेलवे ट्रेनों का बहुत भार पड़ने से भूमि के नीचे का भाग इतना दब जाता है कि जो वर्षा का जल भूमि में चला जाता है उसके, और जो नदियों का जल भूमि के नीचे प्रवाहित होता रहता है उसके भी, निर्गम में बाधा पड़ जाने से भूमि में जलाद्रता बढ़ जती है। बाँधों के बनाने के लिये रेलवे-सड़क के दोनों तरफ की मिट्टी खोदने से उसके दोनों ओर खड्डे हो रहे हैं। इन खड्डों में वर्षा का जल भर जाता है। यह जल प्रवाह-हीन होने के कारण वैसे ही हानिकारक है, पर इसमें (खड्डों के जलमें) घास फूस पड़ जाने से यह और भी अधिक घातक होजाता है। मलेरिया का एकमात्र कारण मच्छर हैं। और इनकी उत्पत्ति दलदल और निष्प्रवाह जलाशयों में ही होती है। मलेरिया-कमीशन के सम्मुख राजा दिगम्बरमिश्र ने प्रमाणित कर दिया था कि ई० बी० आदि रेलों द्वारा बंगाल के ग्रामों के जल-निर्गम-मार्गों के अवरोधित होने के कारण ही बंगाल में मलेरिया का अधिक प्रकोप है*।

* रेलों के कारण जल-निर्गम में बाधा होने से जो स्वास्थ्य—

रेलों ने कम भाड़ा लेकर मदिरा और सिगरेट आदि के प्रचार में जो सहायता दी है, उसके कारण भारत का कुछ कम अनिष्ट नहीं हुआ है। अमेरिका के प्रसिद्ध पुसीफुट महाशय कुछ वर्ष पहले जब यहाँ आये थे तब उन्होंने कहा था कि 'भारत में मदिरा-प्रचार यूरुप वालों ने किया है। मदिरापान में वे अपनी स्वतंत्रता प्रदर्शित करते हैं। दुःख तो यह है कि इस भ्रान्तिमूलक स्वतंत्रता का भारत में भी प्रचार करने से वे न रुके। अमेरिका कई देशों का ऋणी था, पर जबसे मदिरा-निषेद-कानून (Prohibition Act) बना है तब से अमेरिका केवल ऋण से ही उऋण नहीं हुआ, पर दूसरे देश उसके ऋणी हो गये हैं!' रेलों के कारण विदेशी औषधियों का भी दिन पर दिन अधिकाधिक प्रचार बढ़ रहा है। इससे केवल यहाँ की सर्वोत्कृष्ट* आयुर्वेदिक चिकित्सा

(पीछे के पृष्ठ से)

सम्बन्धी दुष्परिणाम हो रहे हैं उनके लिये देखो—

Bengal Census (1911) Report;

Drainage Com. Report (1906-7);

Dr. *Bently* (Sanitary commissioner of *Bengal*): 'The Influence of Ry. Embankment upon malaria';

Col. W. M. Clemensha [Sanitary Commissoner]: Influence of Ry. construction on malraia [1916]

(Tone: Survival of Hindu civilisation)

Manson Bahr: Tropical Diseases;

* हमारे यहाँ की अद्वितीय चिकित्सा प्रणाली की अनेक लब्धप्रतिष्ठ विदेशी विद्वानों ने भूरि भूरि प्रसंशा की है। उन्होंने उसकी उत्कृष्टता के प्रतिपादन में कई ग्रन्थरत्न लिखे हैं। हमारी चिकित्सा के सम्बन्ध में विदेशी डाक्टर इतिहासज्ञ

पर ही कुठाराघात नहीं हुआ किन्तु विदेशी दवाओं के उपयोग से हमारे स्वास्थ्य पर भी बहुत बुरा असर पड़ा है। शीत देश के लिये उपयुक्त औषधियां उष्ण-प्रधान देश में लाभदायक नहीं हो सकतीं। जैसे कुनेन से देशवासियों का बहुत अधिक अहित हुआ है। आज यहां प्रमेह की जो अधिकता है उसका मूलकारण निस्सन्देह कुनेन ही है। दूसरे, ये दवाएं सर्वत्र ही असफल और घातक सिद्ध हुई हैं। प्रसिद्ध डाक्टर गुड का कहना है कि–The effects of our medicines on the human system are in the highest degree uncertain, except, indeed, that they have destroyed more lives than war, pestilence and famine combined. अर्थात् मनुष्य शरीर पर हमारी औषधियों का प्रभाव सर्वथा अनिश्चित है। युद्ध, दुर्भिक्ष, महामारी आदि की सम्मिलित शक्ति ने जितना जन-संहार नहीं किया उससे कहीं अधिक हमारी औषधियों ने किया है*।' इन्हीं शब्दों में अन्य अनेक पाश्चात्य डाक्टरों ने कहा है†।

---

* आदि क्या कहते हैं, यह जानना हो तो राय साहब लक्ष्मी-नारायणलाल लिखित 'Glories of Indian Medicines' नामक छोटी-सी पुस्तक पढ़िये।

* Dr. J. M. Good M. D., F. R. S., The Study of Medicine.

† Dr. Richard C. Cabot of Harvard University; Dr. Billings of American Medical Association, Lecture, 1903; (Bose: Survival of Hindu Civilisation

यूरुपवालों के हिसाब से प्रत्येक व्यक्ति के लिये प्रति दिन लगभग ३ पौंड (१॥ सेर) भोजन आवश्यक है*। यहां की जल वायु के अनुकूल यदि प्रत्येक पुरुष के लिये कम से कम २ पौंड, प्रत्येक स्त्री के लिये १॥। पौंड और बच्चों के (१५ वर्ष से कम अवस्था के) लिये १ पौंड भी प्रति दिन पर्याप्त समझा जाय तो भी प्रति वर्ष ८१० लाख टन† (लगभग २। अरब मन) भोजन-सामग्री आवश्यक है। यहां बहुत कम आमिष-भोजी हैं। जो आमिष-भोजी हैं उनका विचार करने पर कम से कम ५५०-६०० लाख टन अन्नकी अनिवार्य आवश्यकता है। श्रीयुत मुकर्जी के हिसाब से १६४० लाख एकड़ भूमि में अन्न की खेती होती है और प्रत्येक एकड़ में ८४० पौंड अन्न होता है। अर्थात् ६१५ लाख टन अन्न उत्पन्न होता है (Mukerji: Indian Agriculture p. 603) | परन्तु Agricultural Statistics of India, 1921-22, Vol. 1. के अनुसार १९२२ में २१५५ लाख एकड़ में अन्न की खेती हुई लिखी है। इसलिये हाल में ही प्रकाशित एक प्रमाणिक पुस्तक [Shah and Khambata: Wealth and Taxable Capacity of India] के आधारपर ७६० लाख टन अन्न की वार्षिक उत्पत्ति समझनी चाहिये। इस उत्पत्ति से ७६ लाख टन (१० प्रति सैकड़ा से) कूड़े कर्कट का, १२० लाख टन पशुओं के लिये और २० लाख टन बीजों के लिये काटने पर ५४२ लाख टन

* F. W. Pavy: Food and Dietetics [2ed Ed.] p. 452; Sir Henry Thompson: Food and Feeding;

Dowd & Jameson: Food & its preparation, p. 140-41 McFadden; Eating for Health & Strenth, p. 100-1.

[Shah: Wealth of India, p. 240-242.]

† Shah: Wealth of India, p. 251-52,

अन्न हमारे लिये बचता है। इतना अन्न हमारी उक्त आवश्यकता से कुछ न कुछ कम ही है। इस परिमित अन्न में से रेलों की कृपा से ५०–६० लाख टन अन्न के विदेशों को चले जाने के कारण देशवासियों के बुभुक्षित रहने के अतिरिक्त और क्या हो सकता है?

रेलों के अनुग्रह से गाय आदि पशुओं का जो संहार हो रहा है उसके सम्बन्ध में पहले लिख चुके हैं। इस ह्रास के कारण दूध का जो अभाव है, वह अस्वस्थता का एक प्रधान कारण है। विज्ञान कहता है कि मनुष्य-जीवन के लिये दूध बहुत गुणकारी है—शारीरिक और मानसिक शक्ति का अद्वितीय साधन है। रेलों द्वारा अन्न के विदेशों को चले जाने से अथवा रेलवे जन्य मूल्य-वृद्धि के कारण यथेष्ट अन्न और पौष्टिक पदार्थों के न मिलने के अतिरिक्त नमक आदि भी पर्याप्त परिमाण में नहीं मिलते! इंगलैंड में प्रतिजन प्रतिवर्ष ७५ पौंड नमक, ९० पौंड खांड और ६८ पौंड वस्त्रों का उपयोग होता है।' यहाँ क्रमशः केवल १३, २५ और २॥ पौंड ही! अन्न के समान ही वस्त्र और स्थान भी स्वास्थ्य-रक्षा के लिये आवश्यक हैं। रेलवे-जन्य धन ह्रास के कारण यहाँ वालों को आवश्यक वस्त्र और उचित स्थान भी नसीब नहीं होता! सारांश यह है कि दूध, घी आदि पौष्टिक पदार्थों के अभाव और अन्न, नमक और वस्त्र आदि के उचित परिमाण में न मिलने के कारण हिन्दुस्तानियों के शरीर क्षीण और निर्बल हो रहे हैं। शारीरिक निर्बलताके कारण केवल जीवन ही कण्टकाकीर्ण नहीं होता परन्तु निःशक्त शरीर महामारियों से संघर्षण करने में असमर्थ होने के कारण बहुधा जीवन से भी हाथ धो

' Chatterjee: Economics, p. 274.

बैठता है। महामारियों का कुठाराघात प्रायः बलिष्ठ पर नहीं होता। उनके शिकार अधिकतर निर्बल ही होते हैं। गण्य मान्य-डाक्टरों का मत है कि 'लोगों को आवश्यकतानुसार भोजन मिलने से वे प्लेग, हैजा और इन्फ्लुएँजा आदि के प्रवाह में नहीं बहसकते।' यह भी बात है कि रेलों ने एक स्थान से दूसरे स्थान तक प्लेग आदि को पहुंचाने में बहुत सहायता दी है—स्थान विशेष में प्लेग का प्रचण्ड प्रकोप होने से रेलें उसे दूर दूर तक फैला देती हैं।

रेलों की कृपासे बन्दरों पर कल कारखानों की वृद्धि होजा ने से (देखो, इसी प्रकरण में, आगामी परिच्छेद), बन्दरों पर बहुत जन-समूह हो गया है। बम्बई में देखा जाता है कि १२ फीट चौड़े और १६ फीट लम्बे एक एक कमरे में ३०-३० स्त्री पुरुष और बच्चे रहते हैं। ऐसे शहरों का स्वास्थ्य खराब होना स्वाभाविक है। यह सत्य है कि इंगलैंड आदि देशों के शहरों में यहाँ के शहरों की अपेक्षा अधिक जन काम करते हैं। परन्तु रहस्य यह है कि वहाँ वाले दिन में शहरों में काम करते हैं पर रहते हैं समीपवर्ती ग्रामों में। वहाँ की रेलें उनके यथासमय आवागमन में सहायता देती हैं और इसीलिये वहाँ के शहरों में काम-करने-वालों का बाहर रहना सम्भव हो रहा है। यहां रेलों की सुविधा कहाँ? बम्बई, कलकत्ते में काम करने वालों में थोड़े बहुत मध्यवित्त-जन निकटवर्ती ग्रामों में रहते हैं सही पर भाड़े की अधिकता और यथासमय जाने आने की सुविधा न होने आदि कारणों से सर्व साधारण, विशेषतः मजदूर, शहरों के बाहर नहीं रह सकते। शहरों की जन-संख्या इतनी बढ़रही है कि वहाँ की जनता विविध व्याधि-यों से ग्रसित रहती है और अत्यन्त दुःखमय जीवन व्यतीत कर

रही है। मद्रास में जन-संख्या की वृद्धि होजाने से, वहाँ के विचारवान पुरुषों ने समीप के ग्रामों में प्रवास करने के लिये चेष्टा की, परन्तु रेलों की सुविधा न होने से उनका मनोरथ सफल न होसका। रेलों के अनुग्रह से उपर्युक्त अनेक अस्वस्थ्य-कारक कारणों का उद्भव होजाने का फल यह हुआ कि:—

(क) बाल-मृत्यु अधिक होने लगी हैं। जितने बालक उत्पन्न होते हैं, उनमें से प्रति सहस्र २०५ एक वर्ष के पहले ही काल-कलवित हो जाते हैं! अतएव उनके जनन और पोषण में वृथा ही शक्ति और धन क्षय होता है। अन्य देशों में यहां से बहुत कम बाल-मृत्यु होती है‡। यहाँ की बाल-मृत्यु की अधिकता का कारण बाल विवाह बताया जाता है। यद्यपि १३-१४ वर्ष से कम आयु की बालिका का विवाह निन्द्य है और किसी अंश में बाल-मृत्यु का कारण भी है, परन्तु बाल-विवाह के अधिकतर विरोधी चाहते हैं कि पाश्चात्य पृथा के अनुसार यहां भी कोर्टशिप—Courtship—की शरण ली जाय और यदि २५-३० वर्ष नहीं तो १७-१८ वर्ष के पहले तो लड़कियों का विवाह होना ही नहीं चाहिये। यह भूल है। धर्म शास्त्रों को तो आज मानता ही कौन है? अतः वैज्ञानिक आधार पर ही इस विषय पर विचार करना आवश्यक है। यहाँ की जल-वायु और प्रकृति इंगलैंड आदि की तरह नहीं है। इंगलैंड आदि शीत प्रधान हैं, भारत उष्ण-प्रधान। इंगलैंड में २० वर्ष तक स्त्रीत्व (Puberty) प्राप्त नहीं होता, यहाँ १३-१४ वर्ष में कन्याएं योवन को प्राप्त होजाती हैं। अतएव यह कहना युक्तिसंगत नहीं कि १८ वर्ष के पहले युवतियों का विवाह होना बाल-

‡ Census Report, 1921, Vol. I, part 1, p. 131-32

मृत्यु का कारण है। बहुत से लोग बाल-मृत्यु का कारण 'टीका' Vaccination न लगवाना बताते हैं। बड़े बड़े डाक्टरों और वैज्ञानिकों का निर्णय है कि टीके से कुछ लाभ नहीं होता, प्रत्युतः यह असंदिग्ध रूप से हानिकारक है! इससे आजतक एक भी प्राणी को जीवनदान नहीं मिला। हां, इसने अगणित प्राणों का अपहरण जरूर किया है†। इससे सिद्ध होता है कि 'टीका' न लगवाना भी बाल-मृत्यु का कारण नहीं। वास्तव में बाल-मृत्यु का एक मात्र कारण माता-पिता को, गर्भवती को, और जनन उपरान्त माता और शिशु को यथेच्छ और पौष्टिक भोजन न मिलना ही है। जो सज्जन १४ वर्ष पहले विवाह-संस्कार होना बाल-मृत्यु का कारण बताते हैं, वे भी यह स्वीकार करते हैं कि उपयुक्त भोजन का अभाव भी बाल-मृत्यु का कारण है*।

(ख) दूसरा दुष्परिणाम यह हुआ है कि यहाँ अधिक और शीघ्र मृत्युएँ होने लगी हैं। १८७१ से १८८१ तक दस वर्षों में प्रति सहस्र २४ मृत्युएँ हुई थीं, परन्तु १८८१ से १८९१ में २८, १८९१ से १९०१ में २९, और १९०१–१९११ में ३२! इंगलैंड अमेरिका आदि में प्रति सहस्र केवल १०-१२ जन ही मरते हैं। हम लोगों की औसत आयु २२–२३ वर्ष की रह गई है! पर इंगलैंड आदि के निवासियों की ४५–५५ वर्ष

† Herbert Spencer; "Facts and Comments,"(1902),—
Chapter on "Vaccination," p. 190–192;
A. R. Wallace: The Wonderful Century, Chapter on Vaccination.

* A. Lankester: Tuberculosis in India, p. 147.

की है। जो शीघ्र और अधिक मृत्युएँ होती हैं उसका कारण यहाँ की प्रकृति बताना ठीक नहीं। जल-वायु का प्रभाव मानसिक शक्ति और शारीरिक स्वस्थता पर पड़ता है अवश्य पर वैज्ञानिक रहन-सहन, यथेच्छ पौष्टिक भोजन, उचित वस्त्राभूषण, और स्वच्छ जल-वायु के सेवन से प्रकृति के दुर्बलता उत्पादक प्रभाव का प्रत्याघात किया जा सकता है। (ग) तीसरा दुष्परिणाम यह हुआ कि प्लेग, हैजा, और इंफ्लुएंजा आदि का प्रकोप दिन पर दिन बढ़ रहा है। केवल एक वर्ष में (१६१८–१६) १२॥ करोड़ जन इंफ्लुएंजा के शिकार हुए थे! और लग भग १॥ करोड़ जन इसकी कालाग्निमें स्वाहा होगये*। हैजा, प्लेग और मलेरिया का तो कहना ही क्या है? इनके द्वारा तो प्रति वर्ष लाखों आदमियों का संहार होता ही है।

कहा जाता है कि 'भारत में अन्य देशों से अधिक सन्तानोत्पत्ति होती है। इंगलैंड में प्रति १० वर्ष में प्रति सहस्र २१ बच्चे होते हैं, पर भारत में ४३। यह आरोग्यता का लक्षण है।' क्या यह बात सत्य हो सकती है कि इस समय यहाँ वालों का स्वास्थ्य इंगलैंड वासियों से अधिक उत्तम है? प्राणि-शास्त्र *Biology* का सिद्धान्त है कि 'अधिक सन्तति दरिद्रता का कारण है। प्रत्यक्ष भी देखते हैं कि धनाढ्यों के कम सन्तान होती है। इसलिये अधिक सन्तानोत्पत्ति आरोग्यता का नहीं परन्तु दरिद्रता का लक्षण है। इस प्रसङ्ग में एक बात यह ध्यान देने की है कि सन्तति की अधिकता दाम्पत्य की बाहुल्यता को सूचित करती है। पाश्चात्यों का सिद्धान्त है कि जनता का अधिक विवाहित होना सुख-समृद्धि

* Census of India, 1921, Vol. 1, part 1, p. 13–14

का द्योतक है। यहाँ यह बात नहीं। यहाँ तो दरिद्री लोग ही शीघ्र विवाह करते हैं और उनमें ही बहुपत्नित्व Polygamy (एक पति के अनेक पत्नि होना) देखा जाता है।

२—कल-कारखानों और कम्पनियों की वृद्धि।

यह तो १३ वें प्रकरण में लिख चुके हैं कि रेलों ने भारत के उद्योग-धन्धों की सहायता नहीं की उलटा उनको जड़से उखाड़ दिया। किन्तु यहाँ कल-कारखानों और उद्योग-धन्धों में संलग्न कम्पनियों की वद्धि दीख रही है। अतएव यह विचारणीय है कि भारत के उत्थान और पतन से इसका क्या सम्बन्ध है? रेलों ने इस वृद्धि में क्या सहायता दी है? इत्यादि। बड़े बड़े कल कारखाने, मिलें, खानें, आदि प्रायः सारी सम्मिलित पूंजी से संघटित कम्पनियों की [Joint Stock Companies] सम्पत्ति है। जो कम्पनियां यहां काम कर रही हैं उनमें ६३४* कम्पनियां तो इंगलैंड आदि में संघटित और रजिस्टर्ड हैं। इनका मूल-धन *Paid-up* capital and Debenture stock रु०७,८५,०४,३६,१६५,। (५२,३३,६२,६१३ पौंड) है†। और भारत में संघटित और रजिस्टर्ड ३६३८ कम्पनियां हैं। इनका मूलधन केवल १,२३,२१,३५,७३६‡ रुपये है। अर्थात् यहाँ कुल ६ अरब रुपये की कम्पनियां काम कर रही हैं। इंगलैंड जैसे छोटे-से देश में ५० अरब की कम्पनियां हैं इंगलैंड की तुलना में तो यहां ४०० अरब की कम्पनियां होनी चाहिये।

---

* रालीब्रादर्स आदि जो अगणित कम्पनियां रजिस्टर्ड नहीं हैं। वे उक्त अङ्क में शामिल नहीं हैं।

† Statistics of British India, Vol. 1, (Commercial), 11th issue, p. 126. ‡ p. 97–107.

अमेरिका आदि देशों में भी बहुत अधिक पूंजी की कम्पनियां हैं। अमेरिका के फोर्ड मोटर के कारखाने में (Ford Motor works) आधे मिनिट में १ सम्पूर्ण मोटर आदि से अन्त तक तैयार हो सकती है!

इंगलैंड, अमेरिका आदि के कारखाने वाले और वहां की कम्पनियां अत्यधिक लाभ उठा रही हैं जिससे देश सम्पत्ति-शाली होता है। यहां यह बात कहां? इंगलैंड आदि में संघटित आठ अरब की उक्त कम्पनियों का तो लाभ विदेशों को चला ही जाता है, पर भारत में संघटित जो एक अरब की कम्पनियाँ हैं उनमें भी अधिकतर पूँजी विदेशियों की लगी हुई है। आसाम और बंगाल की चाय के खेत, बिहार और उड़ीसा की नील की कोठियाँ, मद्रास की काफी के खेत, ट्रावनकोर के रबड़ के कारखाने, बंगाल के कोयले की खानें और कलकत्ते की जूट मिलें प्रायः सारी विदेशियों की सम्पत्ति है† !' ऊन की मिलें, मिट्टी के तेल के कूवे आदि तो विदेशियों के एकाधिकार में ही हैं। सोने आदि की खानें, जहाज कम्पनियाँ, चमड़े, लोहे और इस्पात के कारखाने, कागज की मिलें, इत्यादि भी प्रायः सारी विदेशियों के हाथ में हैं। आटा, तेल, चावल, खांड़ आदि की बहुत सी मिलें विदेशियों की सम्पत्ति है। सारांश यह है कि प्रायः सारे बड़े-बड़े और अत्यन्त लाभप्रद कारखाने, मिलें आदि यहां वालों के हाथ में नहीं, पर विदेशी ही उनसे लाभ उठा रहे हैं‡! विदेशियों के हाथ में जो व्यवसाय है उससे उन्हें कितना लाभ हो रहा है, इसका अनुमान करने के लिये आप कलकत्ते की जूट मिलों को ही देखलें। जूट के व्यवसाय

† Census [1921], Vol. 1, part 1, p. 266–67.

‡ Cotton: New India, p. 109–110,

में भारत को एकाधिकार प्राप्त है, अतएव इससे अतीव लाभ होना स्वाभाविक है। किनीसन Kinnison जूट मिल का मूलधन १५ लाख रुपये है। इसे इतना लाभ हो रहा कि हिस्सेदारों को १००-१००, २००-२०० प्रति सैकड़ा लाभ देने पर भी अब इस के पास एक करोड़ रुपया रिजर्व-फन्ड में हो गया है! पहले तो इस मिल ने २००-२५० प्रति सैकड़ा डिवि-डेंड दिया था पर १६२० में ४०० प्रति सैकड़ा दिया! अर्थात् जिस व्यक्ति ने आरम्भ में इस मिल में १०० रुपये जमा किये थे उसको पहले भी सैकड़ों रुपये प्रति वर्ष मिलते थे, पर १६२० में ४०० रु० मिले! इसी प्रकार अन्य जूट मिलों की व्यवस्था है:—

नाम जूट मिल	मूल-धन लाख रु०	रिजर्वफंड लाख रु०	डिविडेंड प्र० सै० १६१६—२०
केलविल Kelvin	७	७५	३००
कमर्हट्टी— Kamarhatty	२४	११८	२५०
फोर्ट ग्लस्टर— Fort Glostar	१४	१६१	२००
गोरोपुर Gorepore	१२	१७२	४२०

देखा! ये सब और अनेक जूट मिलें विदेशियों के पास हैं*। हम लोगों के हाथ में तो कपड़े और सूत की ही कुछ मिलें हैं। परन्तु एक्साइज Excise Duty और जापान या

* Moral and Material Progress of India, 1913-14 p. 63.

मैंचस्टर की प्रतिस्पर्धा के कारण इनसे अधिक लाभ नहीं होता। कम्पनियों के अतिरिक्त जो कल-कारखानें आदि व्यक्तिगत सम्पत्ति है, उनमें बड़े २ कारखाने या मिलें बहुत कम हैं—नाम मात्र को २-४ हैं। पर छोटी २ बहुत हैं†। इनमें भी बहुत से विदेशियों के हैं, जैसे रुई की जीने, रुई और जूट के प्रेस, इत्यादि।

यहां के कारखाने या मिलें स्वावलम्बित नहीं हैं। यदि मशीनें विदेशों से न आयें तो उनकी स्थापना ही न हो। और अनेक मामूली छोटी २ चीजों के विदेशों से आये बिना मशीनें ही न चलें। रासायनिक-द्रव्य, रंग, और कपड़े बुनने के लिये मांडी, आदि के विदेशों से आये बिना यहां के कारखानों या मिलों में चीजें ही तैयार न हों। अनेक कपड़े की मिलों के लिये तो विदेशों से सूत आता है ! कहने का तात्पर्य यह है कि प्रथम तो विदेशों की तुलना में यहां के कारखाने और कम्पनियां कुछ भी नहीं है, और जो हैं वे देश के लिये लाभप्रद होने के स्थान में देश को लूटने की मशीने हैं। इनके कारण जो लाभ हो रहा है वह और कहीं से तो आता ही नहीं, यहां का धन ही लाभ रूप में संचित हो जाता है और वह विदेशों को चला जाता है; जैसा ऊपर लिख चुके हैं। अन्य देशों में ऐसी भयङ्कर दुर्व्यवस्था नहीं है। वहां के उद्योग-धन्धों के स्वामी स्वदेशी हैं, और वे ही उनका लाभ उठाते हैं। आस्ट्रेलिया में कानून है कि कोई विदेशी-कम्पनी सरकार की आज्ञा बिना व्यवसाय नहीं कर सकती। खानों का स्वामित्व या खनिज द्रव्यों का व्यवसाय तो किसी प्रकार भी। विदेशी लोग वहां नहीं कर सकते [War

† Census [1921] Vol. 1, part 1, para 237, p. 266; Large Industrial Establishments, 1923, p. viii, xi.

Precautions Repeal Act, 1921, Sections 8 and 11); इंगलैंड में यह कानून है कि वहाँ के जहाजों के विदेशी स्वामी नहीं हो सकते (The Merchant Shipping Act 1894 Sec. 13; The Naturalisation of Aliens Act, Sec. 1.) चीन, ग्रीस, फ्रान्स, जापान, रूमेनिया, आदि में भी कानून है कि कोई भी विदेशी कम्पनी वहां की खानों को नहीं खरीद सकती। देशके वाणिज्य-व्यवसाय और उद्योग-धन्धों के लाभ को स्वदेश में ही रखने के लिये अमेरिका आदि देशों में एक न एक रूप में कानून है।

विदेशियों के कल-कारखानों आदि की जो यहाँ वृद्धि हुई है उसमें यहां की रेलों ने बहुत सहायता दी है (देखो, १३वां प्रकरण)। अथवा यों समझिये कि भारतीय उद्योग-धन्धों के नाम पर यदि रेलों ने सहायता दी है तो उसका केवल विदेशियों के कल-कारखानों से ही सम्बन्ध है। अतएव रेलों की इस सम्बन्ध में जो सहायता है वह देश के लिये लाभप्रद होने के स्थान में निस्सन्देह हानिकारक सिद्ध हुई है। यहां वालों के जो कारखाने या मिलें हैं वे अधिकतर बन्दरों पर हैं। उनकी वृद्धि का सत्य रहस्य यह है कि कच्चे माल के निर्यातन में सहायता और उत्तेजना देने के उद्देश्य से बन्दरों के लिये रेलें जो कम किराया लेती हैं, उसके कारण बन्दरों के कारखानों को भी संयोग से सस्ता माल मिलता है। इसी कारण बन्दरों पर कारखानों की भरमार हो गई है। एक स्थान पर कल कारखानों की वृद्धि होना वाञ्छित नहीं। औद्योगिक कमीशन ने भी इस बात पर दुःख प्रकट किया है (रिपोर्ट, पैरा २७४)। कहने का मतलब यह है कि बन्दरों पर जो कारखानों की उन्नति हुई है उसका कारण रेलवे नहीं, क्योंकि उन्हें दैवयोग से कच्चामाल सस्ता मिलता है, न कि रेलवे

की कृपासे। रेलें तो उनकी उन्नति में बाधक ही हैं। बन्दरों पर हम लोगों के जो कारखाने हैं उन में तैयार वस्तुओं को पहुंचाने के लिये रेलवे बहुत भाड़ा लेती है जिससे उन वस्तुओं का प्रचार नहीं होता। बन्दरों के सिवा भारतवासियों के जो कारखाने आदि हैं, उन्हें रेलों से कोई सहायता नहीं मिलती। उन्हें कच्चे माल के लिये अधिक भाड़ा देना पड़ता है और उनके तैयार माल के लिये बहुत भाड़ा लिया जाता है। यही कारण है कि बन्दरों के अतिरिक्त और स्थानों पर बड़े बड़े कारखाने या मिलें नहीं दिखाई पड़तीं। जो हैं भी तो वे रेलवे की कृपा-कटाक्ष पर अनुरक्त नहीं हैं।

३—स्वतंत्रता की रक्षा।

विदेशों में रेलों ने देश की स्वतंत्रता की रक्षा करने में बहुत सहायता दी है। पर यहाँ की रेलों ने देश को विदेशी-शासकों के पञ्जे में दृढ़ता पूर्वक फंसा दिया है। १८५७ के स्वतंत्रता के युद्ध में, जिसे लोग गदर या म्यूटिनी के नाम से कलंकित करते हैं, जो कुछ हिन्दुस्तानियों की विजय हुई थी उसका प्रधान कारण रेलवे का अभाव था। एक सरकारी लेखक का कहना है कि 'गदर के कारण रेलवे के शीघ्र विस्तार की अत्यधिक आवश्यकता प्रत्यक्ष हो गई थी'*। निस्सन्देह सैनिक कार्य के लिये ही इतनी शीघ्रता से रेलों का प्रसार हुआ है†। लार्ड डलहौजी ने स्पष्ट कहा था कि 'राजनैतिक दृष्टि से भारत में रेलों की अनिवार्यतः आवश्यकता है।' अन्य देशों की अपेक्षा भारत में जो बहुत अधिक सैनिक व्यय

* Imp. Gazetter, *Vol.* III, p. 368.

† Loveday Indian Famines, p. 107.

है† उसका और गोरे सैनिकों के लिये अत्यधिक व्यय कर (भारतीय सैनिकों से गोरे सैनिकों का ६ गुना अधिक व्यय है— देखो, Retenchment Com. Report, part XI, Appendix C and D p. 42-4425) उन्हें यहां रखने का, अर्थात् यहां के महान सैनिक संगठन का एक मात्र कारण भारत को अंग्रेजी अधिकार में सुरक्षित रखना है। रेलें इस संगठन में अनिर्वचनीय सहायता देती हैं। विगत युद्ध में हम देख चुके हैं कि रेलों के द्वारा सर्व प्रथम सैनिक कार्य ही होता था। जो यात्रियों और माल के डिब्बे सैनिक कार्य से बचते थे वेही सर्व साधारण के काम में आते थे‡। अब भी हम देखते हैं कि सैनिक कार्य के लिये ही खेबर की रेल में प्रचुर धन व्यय हो रहा है। कलकत्ते के भूतपूर्व गवर्नर लार्ड रेनल्डशा की हाल में ही प्रकाशित "India—A Bird's-Eye View" नामक पुस्तक से हमें पता चलता है कि साम्राज्य-विस्तार के लिये भारत में अतुल धन व्यय हो रहा है और खेबर की रेलवे में अतुल धन राशि के नष्ट करने का भी यही कारण है। कहने का तात्पर्य यह है कि भारत में रेलों का निर्माण

† यहां कुल राजकीय-आय का ६४ प्रति सैकड़ा सैनिक व्यय है। पर इंगलैंड में ५३, आस्ट्रिया में ४८, कनाडा में २४, दक्षिण अफ्रिका में ५, स्पेन में १७, फ्रान्स में २०, इटली में १७, अमेरिका में ३८, और जापान में ४६ प्रति सैकड़ा है— Statesman's Year Book 1922. । यहां जो ६४ प्रति सैकड़ा सैनिक व्यय है उसमें कई रकम शामिल नहीं है। जैसे सैनिक रेलों का व्यय, इत्यादि। इन रकमों के जोड़ने पर ७५ प्रति सैकड़ा से भी अधिक होता है।

‡ "India," 1920, p 127-28; 1921-22, p. 180.

भारत की दासता की श्रृंखला में चिरकाल तक आबाध्य करने के लिये किया गया है और सैनिक कार्य में अनल्प सहायता देकर रेलों ने उक्त कार्य को पूर्णतया सम्पादित किया है।

प्रबल प्रतापी नैपोलियन बोनापार्ट अंग्रेजों को बनिये [A Nation of shopkeepers] बताया करता था। वास्तव में बात है भी यही। ब्रिटिश-साम्राज्य के अधिकाधिक विस्तार के मूल में व्यापार–नीति ही है। जिस विजित या अपहरित देश में इन्हें व्यापारिक लाभ नहीं होता, उसे ये स्वयं छोड़ देते हैं—उससे अपना राजनैतिक सम्बन्ध तोड़ लेते हैं। जैसे ट्रान्सवाल में जब इन्हें कुछ लाभ न हुआ, तब इंगलैंड के उस समय के भाग्यविधाता ग्लेडस्टन Gladstone ने इसे (ट्रान्सवाल को) अंग्रेजी-कब्जे में रखना उचित नहीं समझा। भारत में भी इनके शासन का मूलभूत उद्देश व्यापारिक लाभ है। सन्डे हेरल्ड "Sunday Herald" (इंगलैंड का एक प्रतिष्ठित समाचार-पत्र) में मि० रोबर्ट ब्लेकफोर्ड Robert Blachford का "Is India Worth Keeping ?" शीर्षक एक लेख १६२० में प्रकाशित हुआ था। उसके उत्तर में इंगलैंड के शासक-मण्डल के एक सर्वोच्च पदाधिकारी [Lord Chancellor] लार्ड बिर्केनहेड [Lord Birkenhead] ने लिखा था* कि "भारत से हमें बहुत लाभ है। इसलिये इसे हमें मजबूती के साथ अपने पञ्जे में रखना चाहिये। भारत के बिना हमें युद्ध और वाणिज्य-व्यवसाय में सफलता नहीं हो सकती। यहाँ की तैयार हुई

* "Independent," Allahabad, Dt. Sep. 8, 1920.

अधिकतर वस्तुएं भारत में ही खपती हैं। यदि हमारे माल की बिक्री भारत में न हो तो लंकाशायर पर बहुत घातक प्रहार होगा और हमारे सारे उद्योग-धन्धे जीर्ण शिर्ण हो जायँगे। सारांश यह है कि इंगलैंड की बहुत कुछ सुख-समृद्धि भारत पर अवस्थित है। वहां से हमें अन्न और कच्चा माल मिलता है जो हमारे उद्योग धन्धों के लिये परमावश्यक है। यदि वहां से सामान न आया होता तो हम विगत युद्ध में अच्छी तरह नहीं लड़ सकते थे। युद्ध सामग्रियों को तैयार करने के लिये कई आवश्यक चीजें भारत के अतिरिक्त और कहीं नहीं मिलतीं। वहां के मेंङ्गनीज, बलफ्रम wolfram, और भोडल आदि बिना युद्ध की कई चीजें तैयार नहीं हो सकती थीं। वहां से यदि जूट न आया होता तो न डून्डी की मिलें ही चलतीं और न बोरे ही तैयार हुए होते। और बोरों के अभाव में खाइयों की लड़ाइयाँ (French warfare) किस तरह लड़ सकते थे? वहां के शोरे बिना बारूद नहीं बन सकती थी और वहां के तिलहन बिना युद्ध के लिये आवश्यक ग्लसरिन मिलना असम्भव था। और अराडी के तेल के न होने से वायुयानों की सहायता अप्राप्य हो जाती। भारत से इंगलैंड को जो जो अलभ्य लाभ हैं उनका वह आभास मात्र है। इस अपूर्ण विवरण से भी यह सहज समझ में आ सकता है कि भारत की इंगलैंड को कितनी अधिक आवश्यकता है।"

उपर्युक्त अवतरण से प्रत्यक्ष है कि भारत का इंग्लैंड के दुर्दान्त पञ्जे में फँसे रहने का मूल कारण यही है कि भारत में इंगलैंड की वस्तुओं की बिक्री होती है और भारत से इंगलैंड के कारखानों आदि के लिये आवश्यक कच्चा माल जाता है। यदि वहां की वस्तुओं का यहां प्रचार न हो और यहां से कच्चामाल

वहाँ न जाय तो इंगलैंड स्वयं भारत को तिलाञ्जलि देदेगा—भारत स्वतंत्र हो जायगा। इंगलैंड की वस्तुओं का प्रचार और यहाँ के कच्चे माल का इंगलैंड को निर्यातन यहाँ की रेलों पर ही निर्भर है। रेलें इन कार्यों में सहायता देती हैं और इस प्रकार भारत की परावलम्बता को चिरस्थायी बनाती हैं। अतएव यदि रेलें उक्त कार्यों से अपना हाथ खींचलें तो भारत कल ही स्वतंत्र हो सकता है।

६—शान्ति और सुव्यवस्था।

कहा जाता है कि रेलों के कारण विदेशियों के आक्रमणों से देश की रक्षा हो रही है। अतएव देश में अमनचैन—शान्ति और सुव्यवस्था [Peace, law and order]—है। रेलों ने सैनिक संगठन में अकथनीय सहायता दी इसलिये निस्सन्देह विदेशियों के आक्रमण नहीं हो रहे हैं। किन्तु शान्ति और सुव्यवस्था का यही अर्थ है कि देशवासियों के जीवन और उनकी सम्पत्ति की रक्षा हो। अर्थात् जनता के जीवन पर प्रहार नहो, उनकी अकालमृत्यु नहो, और उनके धन का अपहरण नहो। शान्ति और सुव्यवस्था की इसके अतिरिक्त और क्या परिभाषा हो सकती है? अतएव विचारणीय बात यह है कि रेलों ने वास्तव में जान और माल की रक्षा की अथवा नहीं? यह तो प्रत्यक्ष है कि परचक्रों (विदेशियों के आक्रमणों) द्वारा न तो जन-संहार ही होता है और न सम्पत्ति का अपहरण ही। किन्तु महामारी, दुर्भिक्ष, अस्वस्थता, और अन्न के अभाव से मरना, और विदेशियों के आक्रमणों से मरने में क्या भेद है? दोनों मार्गों से अकालमृत्यु है। परन्तु रेलवे की कृपा से चिर-काल तक भूख की ज्वाला सहकर, महामारी और दुर्भिक्ष के

समय, काल के ग्रास होने से और रेलवे जन्य दरिद्रता और अस्वस्थता के कारण रोग-शोक से शनैः शनैः जीर्ण होकर अकाल में ही काल कलवित होने से तो परचक्रों के कारण चट-पट मरजाना ही श्रेष्ठ है। इसी प्रकार विदेशियों के आक्रमणों के कारण धन नष्ट होने और रेलों की सहायता से विदेशी व्यापारियों द्वारा धन-शोषण में अथवा अज्ञानता और रोग-शोक के कारण दरिद्री रहने में क्या भेद है ? दोनों मार्गों से धनक्षति है। केवल प्रक्रियाएँ भिन्न भिन्न हैं। रेलवे के अनुग्रह से धन के निरन्तर दोहन और शोषण होने की अपेक्षा तो परचक्रों में कभी कभी धन का नाश होना ही उत्तम है। यही कारण था कि शताब्दियों तक विदेशियों के आक्रमणों द्वारा अतुल धन नष्ट भ्रष्ट और अपहरण हुआ, पर भारत का धन-स्रोत कभी शुष्क नहीं हुआ। वह पूर्ववत सजल और कलकल रव से प्रवाहित रहा। निरन्तर का निर्गम और वह भो प्रचुर परिमाण में महासागर को भी निःशेष करदेता है। अर्थात् रेलवे जन्य अविकल धनशोषण ने भारत के धन-सागर को शुष्क करदिया है। सारांश यह है कि इस रेलवे जन्य शान्ति ने शान्ति तो कहां, पर अशान्ति अवश्य की है।

९—मूल्य-वृद्धि।

अन्य देशों में सुवर्ण की अधिकता, सुख-समृद्धि की अभि-वृद्धि, रहन-सहन की अधिकाधिक उत्तमता, और साख की उन्नति [development of credit] आदि वस्तुओं की मूल्य वृद्धि के कारण हो सकते हैं, पर यहां ये कारण नहीं हैं। यहां जो अत्यधिक मूल्य-वृद्धि हुई है उसका वास्तविक कारण रेलवे है। रेलों के कारण भारत का विदेशी बाजारों से सीधा

सम्बन्ध हो गया है। अर्थात् यहां की वस्तुओं का मूल्य अन्य देशों के मूल्य पर निर्भर रहने लगा है। अथवा यों समझिये कि माल के निर्यातन से यहां माल की कमी हो जाती है जिससे मूल्य बढ़ गया है; और रेलवे के कारण यहां के छोटे-बड़े सारे उद्योग-धन्धों का विनाश होने से बहुमूल्य विदेशी वस्तुओं का उपयोग होने लगा है। इस मूल्य-वृद्धि के कारण लोगों का खर्च बढ़ गया है। इंगलैंड और अमेरिका में खर्च बढ़ने का प्रधान कारण रहन-सहन की अधिक उत्तमता है। यहां वालों के खर्च की अधिकता का कारण रहन-सहन की उत्तमता नहीं। दूसरी बात यह है कि अन्य देशों में जितना व्यय बढ़ा है उससे कहीं अधिक उनकी आय हो गई है। मि० डिग्बी ने सप्रमाण सिद्ध किया है कि १८५० में भारतवासियों की औसत आय प्रति दिन दो आने थी, पर १८८२ में वह केवल १॥ आने और १९०० में पौन आना ही† ! अर्थात् भारतवासियों की आय बढ़ने के स्थान में घट रही है*। इसके अतिरिक्त प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि यद्यपि गत वर्षों में बहुत अधिक

† Digby, p. 5?4.

* भारतवासियों की आयन्यूनता का कारण हिन्दुओं की संयुक्त गृहस्थ प्रथा [Joint Family System] बताई जाती है। कहा जाता है कि इस प्रथा के कारण बहुत से व्यक्ति निरुद्योगी रहते हैं। किन्तु वास्तव में इस प्रथा से बहुत अधिक लाभ हो रहा है। सब से महत्वपूर्ण लाभ तो यह है कि इस प्रथा के कारण माता पिता बालक से सम्बन्ध विच्छेद कर उसे बाल्यावस्था में ही संसार सागर में नहीं ढकेल देते, जिसका फल यह होता है कि उसकी कार्य-शक्तियाँ असमय के भार से नहीं कुचली जातीं, इत्यादि।

कर-वृद्धि हुई है तथापि भारत सरकार और प्रान्तीय सरकारों के बजटों में घाटा हो रहा है। यदि आय-वृद्धि हुई होती तो कर वृद्धि के कारण सरकार को बहुत अधिक आय होगई होती और घाटे का कोई कारण नहीं था। कुछ भी हो, इसमें तो सन्देह नहीं कि यदि आय-वृद्धि हुई भी है तो भी जितनी आय वृद्धि हुई है उससे कहीं अधिक (मूल्य वृद्धि के कारण) व्यय बढ़ गया है।

एक जेली को जितना परिमित, सस्ता और अस्वास्थ्यकारक भोजन दिया जाता है, यदि उतना भी प्रत्येक भारतवासी के लिये यथेष्ट समझा जाय तोभी ९० रुपया प्रतिवर्ष प्रति मनुष्य चाहिये क्योंकि एक जेली के भोजन के लिये भी सरकार को कम से कम ९० रुपये प्रति वर्ष खर्च करने पड़ते हैं*। इसके अतिरिक्त वस्त्र, स्थान आदि के लिये १० रुपये प्रति वर्ष भी पर्याप्त समझे जायं तब भी प्रत्येक जन के लिये कम से कम १०० रुपये प्रति वर्ष होना अनिवार्यतः आवश्यक है। किन्तु १९०० से १९२२ तक भारतवासियों की वार्षिक आय अधिक से अधिक ४५ रुपया प्रतिजन है*। इसका दुष्परिणाम देशवासियों की दीन-दुर्बल दशा के रूप में हमारे सम्मुख है। अन्य सुसमृद्ध देशों के समान भारत जैसे दीन हीन देश में वस्तुओं के मूल्य बढ़ जाने से व्यय-वृद्धि होना और उस परिमाण में आय की वृद्धि न होना कितना भयंकर है यह एक रेलवे-विशेषज्ञ के शब्दों में ही सुन लीजिये—'मूल्याधिकता के कारण समाज के प्रत्येक अङ्ग पर बुरा प्रभाव पड़ता है। गरीबों पर तो बहुत ही घातक प्रहार होता है। मूल्याधिकता के कारण दरिद्रता और रोगों की वृद्धि और जन-संहार होता है—[Williams: Ry. Economics, p. 45–46].

* Shah: Wealth etc. of India, p. 253.

६—ग्रामीण-जीवन।

रेलों के पहले ग्रामीण जीवन अत्यन्त सुखमय था। वहां स्वर्गीय आनन्द था—न आधि थी और न व्याधि। जो थी वह थी केवल सुख समृद्धि। यथेष्ट अन्न था। स्त्रियां कातती थीं, पुरुष वस्त्र तैयार करते थे। वस्त्रों की कोई कमी नहीं थी। प्रत्येक घर में गायें थीं, जिससे दूध-दही यथेष्ट था। ऊख से गुड़ और खांड़, और खारी पानी से नमक तैयार कर लिया जाता था। सारांश यह कि गांव स्वावलम्बित*, संतुष्ट और सुखी थे। विदेशी यात्रियों ने उस समय के सुखी जीवन को मुक्त कण्ठ से प्रसंशा की है। १८वीं शताब्दी के एक विदेशी यात्री का कहना है कि 'भारत के गांवों में सतयुग के समय का सुखानुभव होता है। वहाँ के सारे आ-बालवृद्ध प्रसन्नचित्त, स्वस्थ और तेजस्वी हैं‡'। एक प्रतिष्ठित अंग्रेज लेखक का कहना है कि 'हमारे देश वासियों को यह समझना कि हमारे (अंग्रेजों) आने के पहले भारत-वासियों का कैसा सुखी जीवन था, बहुत कठिन है। मुझे दृढ़ विश्वास है कि अब भी करोड़ों भारतवासी पहले के सुखमय जीवन के लिये लालायित हैं†।'

इस बात से प्रायः सारे विचारवान पुरुष सहमत हैं कि रेलों ने उस स्वर्गीय जीवन का समूलतः सत्या-

---

* Sir Bamply Fuller: The Empire of India, p. 49.

‡ Anqvetil du Perron's Brief account of the voyage—(Gentleman's Magazine, 1762)—England's Debt

† Townsend: Asia and Europe, (Digby, 92-93).

नाश कर दिया*—उन प्रतिभा-प्रभावित ग्रामों की भयंकर दुर्व्यवस्था कर दी। वहाँ का अलौकिक जीवन जीर्ण, शून्य और नैराश्यमय होगया। मध्याह्न में इन ग्रामों में अब रोमांचकारी और हृदय-विदारक दृश्य दीखता है। इसका कारण है ग्रामों के अन्न-संचय का निर्यातन और विदेशी विविध वस्तुओं का प्रवेश। जिससे अन्न की कमी हुई, गृह-शिल्प का मूलोच्छेद हुआ। मंहगी हुई, स्वास्थ्य नष्ट हुआ और महामारियों और दुर्भिक्षों की वृद्धि हुई।

७—जल-मार्ग।

सन् १८२८ में एक अंग्रेज यात्री ने लिखा था कि 'गंगा द्वारा जितने माल का गमनागमन होता है, उतना चीन के अतिरिक्त और किसी देश की नदी द्वारा नहीं होता। केवल गंगा पर ३० सहस्र नाविक काम कर रहे हैं‡।' रेलों के कारण नदियों द्वारा आवागमन होना तो रुक ही गया, पर तटस्थ समुद्र द्वारा पहले जितना आवागमन होता था, रेलों के प्रहार के कारण अब उतना नहीं होता। भड़ौंच, सूरत आदि गुजरात के बन्दरों द्वारा बम्बई, काठियावाड़ और कराची आदि के माल का जलमार्ग से जो आवागमन होता था, वह बी० बी० सी० आई० रेलवे की कुटिल-नीति के कारण अब नहीं है†। जिस प्रकार बी० बी० सी० आई०

* Kale: Economics, p. 186; Mukerji: Economics, p. 9; Chatterjee: Economics, p. 243, 248; Industrial Com. Report, paras 9 and 10: K. L. Dutt: Report on High Prices.

‡ H. T. Prinsep (Dutt, Vol. 1, p. 310)

† Acworth Com. Report, Vol. IV, p. 155.

रेलवे ने ब्लाक-रेट की सहायता से भड़ौच आदि के बन्दरों द्वारा जलमार्ग से आवागमन रोक दिया, उसी प्रकार अन्य रेलों ने भी अपने अपने समीपवर्ती बन्दरों की दुर्दशा करदी है। जैसे मद्रास प्रान्त की रेलों ने उस प्रान्त के कई बन्दरों और नदियों द्वारा आवागमन होना रोक दिया*। विगत रेलवे कमेटी ने इस सम्बन्ध में दुःख प्रकट किया है†। रेलों की कृपा के कारण जलमार्ग के सुगम साधन के नष्ट हो जाने से वजनदार माल भी, जो जलमार्ग से अधिक अच्छी तरह जा सकता है, रेलों द्वारा लेजाया लाया जाता है। आर्थिक दृष्टि से यह बहुत बुरा है। संसार में सर्वत्र ही रेलवे-मार्ग के समान ही जलमार्ग (नदियों और तटस्थ समुद्र द्वारा आवागमन) की आवश्यकता समझी जाती है—जलमार्ग रेलवे का केवल सहायक ही नहीं, पर वह उस आवश्यकता को पूरी करता है जो रेलें पूरी नहीं कर सकतीं। जैसे भारी वजन के माल के अथवा ऐसे सस्ते माल के लिये जिसके शीघ्र वाहन की कोई आवश्यकता नहीं, और जो रेल भाड़ा सहने में असमर्थ है, जलमार्ग का साधन अत्यन्त सुगम और सस्ता समझा जाता है। इसी कारण से अन्य देशों में जलमार्ग से अधिकाधिक वाहन हो रहा है। यहां रेलें जलमार्ग को नष्ट कर अपनी उन्नति कर रही हैं। बेलजियम की सुख-समृद्धि का श्रेय रेलवे के समान ही जलमार्ग को है। भारत में तो जलमार्ग की विशेषतः आवश्यकता है। यहाँ के कच्चे माल का आवागमन रेलों की अपेक्षा जलमार्ग से बहुत सुगम और कम

* Acworth Com. Report, Vol. III, p 90–91.

† Ditto, Vol. 1, paras 153–5. इस सम्बन्ध में और भी देखो—Monograph, p. 198;
Acworth Com. Report Vol. IV, p. 108.

व्यय से हो सकता है* । पर सत्य रहस्य यह है कि जलमार्ग से आवागमन होने का मुक्त द्वार मिलने से रेलवे की पक्षपात-पूर्ण नीति सफल नहीं हो सकती--कच्चे माल के निर्यात और तैयार माल के आयात में बाधा उपस्थित होना स्वाभाविक है।

८—धर्म-रक्षा और सामाजिक उन्नति।

'हमारे (अंग्रेज़ोंके) भारत में आने के समय से (१६०० से) रेलों के निर्माणकाल तक (१८५० तक) भारतवासियों के रीति रिवाज में कोई भेद नहीं पड़ा था। यदि किसी अंश में विपरीतता दीखती थी तो वह केवल कलकत्ते और बम्बई के सन्निकट ही थी‡।' किन्तु रेलों के कारण भारत के सामाजिक अङ्ग प्रत्यङ्ग और धर्म-कर्म सारे नष्ट-भ्रष्ट हो गये। 'इनके कारण वर्ण-व्यवस्था का तो सर्वथा ही लोप हो गया†।' अर्थात् यों कह सकते हैं कि 'प्रवर्तं रेलवे-चक्रे सर्वे वर्णाः द्विजातयः'। हिन्दू धर्म का प्रत्येक अङ्ग वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर अवस्थित है। इस का एक मात्र लक्ष्य मानव समाज की सुख-समृद्धि है। अतः वर्णव्यवस्था पर गम्भीर विचार करने से स्पष्ट हो जायगा कि अर्थशास्त्र की दृष्टि से वर्ण-व्यवस्था अत्यावश्यक है। आधुनिक पाश्चात्य अर्थशास्त्रियों ने श्रम-विभाग (Division of Labour) को धन की उत्पत्ति का एक महत्वपूर्ण साधन माना है। हमारी वर्ण व्यवस्था को यदि कोई उच्च आदर्श न दिया जाय तो भी उसे कम से कम श्रम विभाग

* Mukerjee: Economics, p. 286–89, 314.

‡ Fell: *Ry*. Policy, p. 3.

† Macgeorge: Ways and Works, p. 221.

और प्रतिद्वन्द्वता का नियंत्रण (Limitation of competition) तो अवश्य ही समझना चाहिये। अतः वर्ण-व्यवस्था पर रेलवे के कारण जो कुठाराघात हुआ, वह देश के लिये अत्यन्त घातक है। यदि वर्ण व्यवस्था के अनुसार (स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः—गीता) लोग अपने कार्य्यों में संलग्न रहते तो भारत का वर्तमान अधःपतन न होता—अस्त्र-कानून के होते हुए भी भारत निर्वीर्य और निस्तेज न हुआ होता। रेलवे की कृपा से हमारे सामाजिक बन्धन टूट रहे हैं। अनाचार, अत्याचार और व्यभिचार बढ़रहे हैं। जिन स्थानों में रेलवे पहुँच चुकी है उनको, जहाँ रेलवे नहीं पहुंची है उनसे तुलना कीजिये। आपको स्पष्ट विदित हो जायगा कि रेलों ने कैसा भयंकर युगान्तर उपास्थित करदिया है—हमारे सामाजिक और धार्मिक जीवन को किस प्रकार मिट्टी में मिला दिया है। जिन गावों में रेलवे का सौभाग्य-सूर्य उदय नहीं हुआ, वहाँ की सामाजिक और धार्मिक अवस्था ज्यों की त्यों है। वहाँ के लोग अबभी ईश्वर से भय करते हैं और उनको धर्म-कर्म में नेष्ठा है।

९—राष्ट्रीय-एकता।

यहां के विविध रेलपथों पर एक दृष्टि डालने से सहज ही समझ में आजायगा कि उनका किसी एक केन्द्र की ओर लक्ष्य नहीं है। उनकी गति बन्दर-गामी है। रेलें भारत के भिन्न-भिन्न स्थानों का बन्दरों द्वारा इंगलैंड से सीधा सम्बन्ध कराती हैं, नकि उनका (यहां के भिन्न भिन्न स्थानों का) परस्पर में। जैसे मद्रास, नागपुर, हैदराबाद आदि दक्षिण भारत के शहरों और दिल्ली, आगरा, कानपुर, बनारस, इलहाबाद और

बांकीपुर आदि उत्तरीय शहरों के मध्य कोई सीधा रेलमार्ग नहीं है! बहुत चक्करदार मार्ग से आवागमन होता है, जिससे आवागमन में तो अपव्यय और बिलम्ब होता ही है, पर इस व्यवस्था के कारण एक दूसरे प्रान्त का पारस्परिक व्यापारिक सम्बन्ध होने में सहायता नहीं मिलती। केवल इंगलैंड को माल जाने और वहाँ से माल आने में ही उत्तेजना मिलती है। यदि रेलोंका निर्माण देश के भिन्न-भिन्न स्थानों के मध्य व्यापार आदि का प्रसार होने के उद्देश से हुआ होता तो प्रान्तों में घनिष्ठ सम्बन्ध हो सकता था जिससे राष्ट्रीय एकता स्थापित हो सकती थी। प्रान्तों में सीधा सम्बन्ध स्थापित न होने से ही भारत में सभ्यता के केंद्रका अभाव है—(S. V. Ketkar M. A., Ph. D: Indian Economics, p. 16–17).

१०—रेलवे दुर्घटनाएं।

रेलों के परस्पर में लड़ने आदि दुर्घटनाओं के कारण सहस्रों जन प्रति वर्ष हताहत होते हैं। बहुतों को इतनी चोट पहुँचती है कि वे सदैव के लिये निकम्मे—अनुपयोगी—हो जाते हैं। यद्यपि मृत्यु अथवा चोट का हरजाना रेलों से लिया जा सकता है (रेलवे एक्ट धारा ८० और ८६), पर माल की क्षति पूर्ति के मार्ग में जैसी कठिनाइयाँ हैं वैसी ही इस सम्बन्ध में भी हैं। मृतकों के घरवालों को अथवा सर्वथा अनुपयोगी हुए व्यक्तियों को नवप्रसूत Workmen's Compensation Act, 8 of 1923 की धारा २४(३), और ४ के अनुसार और Fatal Accidents Act, 13 of 1855 (रेलवे एक्ट, धारा ७९) के अनुसार क्षति पूर्ति के रूप में कुछ दिया जाता है। पर जो कुछ दिया जाता है वह क्षति की तुलना में सर्वथा अपर्याप्त है।

११—सारांश ।

यहां रेलवे के जो जो भीषण दुष्परिणाम हुए हैं उन्हें संक्षेप में यों लिख सकते हैं कि उद्योग-धन्धों, कला-कौशल, वाणिज्य व्यवसाय, आदि का विनाश हुआ और देश से अतुल धन धान्य का निरन्तर निर्गम होने से देश की हृदय विदारक दुर्दशा हो गई। बर्क महाशय (Edmund Burke) के शब्दों में 'इस समय भारतवासियों के सम्मुख शिकारी के पञ्जे में पड़े हुए पक्षियों के समूह के समान अपने भाइयों के भयानक दृश्य के अतिरिक्त कुछ नहीं है।' संयुक्तराज्य अमेरिका की राज-सभा में भाषण करते हुए श्रीयुत जोसफ-इर्विन-फ्रान्क ने (८ अक्टूबर १९१९ को) कहा था कि "अनुचित बन्धनों में निस्सहाय अवस्था में पड़े हुए भारतवासी निःशक्त, अस्थि-चर्मावशिष्ट और दरिद्राक्रान्त मानवतनुधारी विकराल प्रेता-कृति प्रतिमाओं के रूप में परिणत हो गये हैं। उनकी असह्य व्यथा, दुर्दान्त दरिद्रता, चिन्तनीय अधोगति, शोक संतप्त दुर्दशा आदि से हम भलीभांति परिचित हैं। यह भी जानते हैं कि वहां के निवासी जीवित-अस्थि-पञ्जर के रूप में शोक और अज्ञानता के गहन अन्धकार में जीवन व्यतीत करते हुए प्राणा-धार-शक्ति का क्षय करने वाली बुभुक्षा को अविकल यातना सहने के कारण मृत्यु-लक्ष्य में सदैव ठहरे रह कर भयङ्कर प्लेग, हैजा, और दुर्भिक्ष की कालाग्नि में स्वाहा होते रहते हैं।" रमेश बाबू का कहना है कि 'भारतवासियों को भयङ्कर दरिद्रता और जीवन की उदासीनता का चित्र चित्रण करना सहज नहीं।' उनकी कुटिया शीत और वर्षा से बचने के लिये अपर्याप्त है। उनको जीर्ण-शीर्ण-वसना स्त्रियां घर का काम करलें और

धूलि धूसरित बच्चे गाय आदि चरा लायें, यही उनके सुख की पराकाष्ठा है। प्रति दिन भारतवासिओं का ह्रास हो रहा है और उनका जीवन रक्त शनैः शनैः किन्तु अधिकाधिक शीघ्रता से शुष्क हो रहा है*।'

बड़े २ तत्ववेत्ताओं का अटल सिद्धान्त है कि जब मनुष्य को यथेष्ट भोजन नहीं मिलता तब वह अपनी स्थिति नहीं सम्हाल सकता। मालथस साहब (Malthas) का कहना है कि 'देशवासियों को पेट भर अन्न न मिलने से उनके आचार-विचार आदि का लोप हो जाता है।' कहा है कि 'दारिद्रय देषो गुणराशि नाशी।' × × 'बुभुक्षितः किंन करोति पापम् क्षीणाजनाः निष्करुणा भवन्ति।' निष्कर्ष यह है कि अन्न वस्त्र न मिलने से लोग केवल भूखे और नङ्गे रह कर शारीरिक और मानसिक यातनाएं ही नहीं सहते पर उनका ज्ञान-गुण, आचार-विचार, गरिमा-महिमा, तेज-ओज, धीरता-वीरता, कुलीनता-उदारता, विद्या-बुद्धि, विवेक-बल, आदि सारे प्रस्थान कर जाते हैं। अनाचार और व्यभिचार घर कर लेते हैं। मद्यपान, कन्या विक्रय आदि दारिद्रता के ही फल हैं। धन-हीन जन अपनी सन्तति को ब्रह्मचर्य और सदाचार का पालन नहीं करा सकते। गृहदेवियां पेट के लिये लज्जा और सतित्व को तिलाञ्जलि दे सड़क पर मजदूरी, भिक्षा आदि से पेट भरती हैं। व्यभिचार का कारण नवयुवतियों की उस विषय में प्रवृत्ति नहीं, किन्तु जीविका के लिये उन्हें ऐसा करने को विवश होना पड़ता है—Radhakamal Mukherjee; Principles of Comparative Economics, Vol. II, p. 305.। बहुत से माबाप उदर

* H. M. Hyndman; Bankruptcy of India, p. 152.

पोषणके लिये अपनी दस दस वर्ष की बालिकाओं को वैश्याएं बना देते हैं ! पुरुष-समागमन उपयुक्त बनाने के लिये उन्हें फूलने वाली लकड़ी के साथ जल में बैठा देते हैं ! या इसी प्रकार की और और प्रक्रियाएं काम में लेते हैं (Dr. Chevers: The Medical Jurisprudence । मि० मान्टेगू और लार्ड चेम्सफोर्ड ने कहा है कि 'शिक्षित नवयुवकों को जीवन निर्वाह का उपाय न मिलने सेही बंगाल में इतने राजनैतिक उपद्रव हुए हैं—Montford Report, para 332। एक अंग्रेज पादरी का कहना है कि 'यह बाईबिल का प्रभाव या गुण नहीं जिसके कारण भारतवासी ईसाई बनते हैं। उनके ईसाई बनने का वास्तविक कारण भोजन-वस्त्र के लोभ में पड़ना है।' बहुत से भारतवासी भूख से व्याकुल होकर पत्थर पीसकर खाते हैं। बहुत से लकड़ी चबाकर और घास फूस खाकर निर्वाह करते हैं। अनेक जन बड़े बड़े कीड़ों को पका कर उदर पोषण करते हैं ! जहां सड़कों पर गधे कुत्ते चरते-विचरते हैं, वहां बुभुक्षा-पीड़ित जन रोटियों के टुकड़े आदि ढूंढते फिरते हैं ! और एक एक ग्रास के लिये पिता-पुत्र, पति-पत्नि लड़ लड़ मरते हैं।

सत्रहवां प्रकरण।

उपसंहार।

रेलों के कारण भारत का जो अकथनीय अनिष्ट हुआ है उसकी विशद विवेचना और यहाँ जो सुख-समृद्धि, व्यापारोन्नति आदि दीख रही हैं उनका भी असली रहस्य प्रसङ्गवश उद्घाटन होचुका है। अब एक अतीव महत्वपूर्ण बात पर विचार करना है। यद्यपि रेलों के कारण या यों कहिये कि नौकरशाही Bureaucracy की स्वार्थ-पूर्ण नीति के कारण भारत की दिन पर दिन अधोगति हो रही है तथापि देशी और विदेशी लोगों को रेलवे जन्य या वर्तमान शासन-प्रणाली से होने वाले भीषण दुष्परिणाम क्यों नहीं दीखते?

विदेशियों को भ्रम—

होने का प्रधान कारण इंगलैंड वालों का भारत के सम्बन्ध में भ्रमपूर्ण बातों का प्रचार करना है। अर्थात् अंग्रेजी राजनीतिज्ञ अन्य देशों की सहानुभूति प्राप्त करने के प्रयोजन से अन्यान्य प्रधान प्रधान देशों में इस बात का प्रचार करते हैं कि भारत में उनके शासन करने का एक मात्र उद्देश्य भारत का और संसार का हित है! और उनके शासन में भारत की अभूतपूर्व उन्नति

हुई है और इसलिये भारतवासी उनके शासन से संतुष्ट हैं, इत्यादि ! कुछदिन हुए अमेरिका के डा० सुन्दरलैंड ने लाला लाजपतराय को लिखा था कि 'इंगलैंड वाले भारत के विरुद्ध यहाँ प्रबल आन्दोलन कर रहे हैं'—उपर्युक्त भ्रान्ति-मूलक बातों को फैला रहे हैं। बम्बई के भूतपूर्व गवर्नर लार्ड सिडेन्हेम का एक लेख अमेरिका के करेंट-हिस्ट्री (Current History—Published by the New York Times Co., Times Square, New York. U. S. A). नामक मासिक पत्र की अक्टूबर १६२४ की संख्या में प्रकाशित हुआ है। इस लेख में लार्ड महोदय ने अमेरिकन जनता को यह समझाने का दुस्साहस किया है कि 'अंग्रेजी शासन में भारत की अनल्प उन्नति हुई है, और अंग्रेजों द्वारा भारत का शासन होने से अमेरिका का भी बहुत हित है! इत्यादि।' लार्ड महाशय ने इस लेख की २५ सहस्र प्रतियां मुफ़्त वितरण करने का प्रबन्ध किया है ! इस कार्य में बहुत व्यय होगा, विशेषतः इसलिये कि ये प्रतियां केवल उन अमेरिकनों को भेजी जायँगी जो भारत की समस्या में कुछ दिलचस्पी रखते हैं।

भ्रम फैलने का दूसरा कारण यह है कि जो यात्री यूरुप, अमेरिका आदि से यहाँ आते हैं वे केवल कलकत्ता बम्बई आदि बड़े बड़े शहरों का ही पर्यटन करते हैं। इन शहरों में भी प्रायः गोरों की बस्ती को ही देखते हैं। अर्थात् ये लोग यहां आकर गोरे धन-कुबेरों और राजा महाराजाओं के शोभा-सम्पन्न उपवन, प्रभा-प्रभावित उत्तुङ्ग-प्रासाद, विशाल होटलें, आमोद प्रमोद के रमणीय स्थान, उनके रहन-सहन की उच्चता, गोरे व्यवसायियों के बड़े बड़े कारखाने, मिलें, बैंक, आफिसें आदि को देखकर यहां ही की सुख-समृद्धि का अनुमान कर लेते हैं। अथवा

सरकारी कार्यालयों, कौंसिलों, कालेजों और कोर्टों को या गवर्नरों और अन्य गोरे कर्मचारियों के बाग-बगीचों से सुसज्जित भव्य-भवन देखकर मुग्ध होजाते हैं। पर देश की वास्तविक अन्तरावस्था से सर्वथा अपरिचित रहते हैं। अतएव उन्हें भारत सुखी और समृद्ध प्रतीत होता है। जब ये लोग अपने अपने देश में पहुँचते हैं तब अपने इष्ट मित्रों से, और व्याख्यानों, पत्र पत्रिकाओं और पुस्तकों में अपनी यात्रा का वर्णन करते समय प्रसङ्गवश भारत की सुख-समृद्धि के सम्बन्ध में भी अपना भ्रमपूर्ण अनुभव प्रकट करते हैं।

तीसरा कारण यह है कि सरकारी रिपोर्टों आदि में, और अन्य लेखकों ने भारत की वर्तमान सुख-समृद्धि के सम्बन्ध में बहुत-सी भ्रमोत्पादक बातें लिखी हैं। प्रतिवर्ष सरकार एक रिपोर्ट प्रकाशित करती है। इसका नाम है "भारत की नैतिक और साम्पत्तिक उन्नति—The Moral and Material Progress of India" इस भ्रान्ति-पूर्ण उन्नति के समर्थन में कल कारखानों की, व्यापार को, रेलों को और शिक्षालयों आदि की वृद्धि का इतिहास होता है। "Large Industrial establishment in India" आदि और भी भ्रमोत्पादक पुस्तकें सरकार प्रकाशित करती है। आधुनिक लेखकों ने भारत के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है वह दो भागों में विभक्त किया जासकता है। एक ऐतिहासिक साहित्य, दूसरा साधारण साहित्य। ऐतिहासिक साहित्य के सम्बन्ध में आगे लिखेंगे। जो सामान्य साहित्य है वह सारा अंग्रेजी में है और उसका अधिकांश गोरे लेखकों का प्रसाद है। इन्होंने भारत की वर्तमान सुख-समृद्धि के विषय में बहुत लिखा है। उदाहरणार्थ

सर अलफ्रेड लायल ने लिखा है कि 'It must be affirmed that moral and material civilization of the Indian people has made more progress in the last fifty years than during all the preceding centuries of their history.—Quoted in Montford Report, p. 84. अर्थात् विगत ५० वर्षों में भारतवासियों की जो नैतिक और साम्पत्तिक उन्नति हुई है उतनी पहले कभी नहीं हुई'। इन्हीं भ्रमपूर्ण शब्दों में और अनेक लेखकों ने लिखा है। एक प्रतिष्ठित लेखक का कहना है कि "भारत के सम्बन्ध में अंगरेजी भाषा में जो कुछ लिखा गया है उसके ९० प्रति सैकड़ा लेखकों की कृति से यही भ्रान्ति होती है कि 'अंगरेजी शासन के साथ ही भारत में सुशासन और सुख-समृद्धि आरम्भ होती है—पहले ये बातें नहीं थीं। और अंग्रेजी शासन के बिना भारत का कल्याण असम्भव है'।"—Hyndman: Asia, p. 210.

चौथा कारण यह है कि भारत के सम्बन्ध में लोगों का परम्परागत विश्वास है कि 'भारत सुखी और सम्पत्तिशाली है'। इस मिथ्या विश्वास ने अनेक गण्यमान्य लोगों को भी फँसा लिया है। अलफिन्सटन जैसे विचारशील पुरुष भी इसके फंदे में पड़े बिना न रह सके! मि० डिग्बी का कहना है कि 'इतिहास में अनेकानेक अनिष्टकारक भ्रम-भ्रान्तियों का उल्लेख है, पर भारत की वर्तमान सुख-समृद्धि के सम्बन्ध में लोगों को जो भ्रम हो रहा है उसके समान और इस भ्रम के कारण भारत का जो नैतिक, मानसिक और शारीरिक अहित हुआ है उतना कहीं कभी नहीं हुआ [Digby, p. 24]।

इत्यादि अनेक भ्रमोत्पादक कारणों से ही अन्य देश वालों को यह ज्ञान नहीं होता कि यहाँ जो रेलवे, व्यापार, कल-कारखानों, विद्यालयों, अस्पतालों और अदालतों की वृद्धि हो रही है उससे भारत का कितना भयंकर अहित हो रहा है*? न उन्हें यही पता है कि यहाँ अत्यन्त अधिक और घातक कर लिया जाता है; देशवासियों को सैनिक शिक्षा नहीं दी जाती, अन्य देशों से बहुत अधिक शासन-व्यय, विशेषतः सैनिक व्यय, है; और यहाँ की करेंसी बहुत कुछ कृत्रिम हो गई है†। न उन्हें यहाँ के भयं-

* रेलों आदि के सम्बन्ध में पहले लिख चुके हैं। शिक्षालयों के विषय में आगे विचार करेंगे। अस्पतालें लोगों को कुमार्ग में प्रवृत्त करती हैं। कुमार्गसे जो शारीरिक रोग उत्पन्न होते हैं जब उनकी चिकित्सा का प्रबन्ध रहता है, तब लोगों की विपथ में अधिकाधिक प्रवृत्ति होती है। संयुक्तराज्य अमेरिका से प्रकाशित Harvard Law Review नामक पत्र में बोस्टन के एक बैरिस्टर द्वारा लिखित 'Poverty and civil litigation' नामक लेख से अदालतों की भयङ्करता भली भांति प्रत्यक्ष है। अदालतों ने हमारे अगणित गृहस्थों को मिट्टी में मिला दिया है। पंचायतों को संस्थापित न कर अदालतों को प्रोत्साहन देने का मूल कारण अंग्रेजी-शासन की नींव को सुदृढ़ बनाना है। जिन्होंने प्रचलित इण्डियन-ला-रिपोर्टों के अध्ययन में अपना जीवन व्यतीत किया और उन्हें अपनी आजीविका का एक मात्र साधन समझा, भला वे वर्तमान अदालतों और उन की संरक्षक सरकार का वियोग कैसे सहन कर सकते हैं?

† सुविधा के लिये करेंसी नोटों से काम लिया जाता है, पर

कर धन-शोषण, रोग-शोक, दुःखदारिद्रय आदि का पता है ! न वे यही जानते हैं कि भारतवासियों को न व्यक्तिगत स्वतंत्रता है*, न लेखन, भाषण और संगठन की स्वतंत्रता है†, न व्यक्तिगत प्राण-रक्षा है‡, और न राज्य कार्य में ही कोई अधिकार है § !

जितने नोटों का संचालन होता है उसके बदले उतना ही सोना-चांदी संचित रहता है। पर यहाँ नोटों से बहुत कम सोना चांदी है।

* आर्डिनेन्स और रेगूलेशन आदि द्वारा पुलिस को रिपोर्टों के अतिरिक्त बिना किसी अन्य विशेष प्रमाण के लोगों को जेल में ठूँसा जा सकता है !

† प्रेस एक्ट और पिनल कोड की धारा १२४ अ और १५३ अ द्वारा भाषण और लेखन की और सिडीशस-मीटिंग एक्ट के कारण संगठन की स्वतंत्रता का संहार हो गया है।

‡ उदाहरणार्थ पञ्जाब का हत्याकाण्ड ही पर्याप्त है।

§ जो शासन सुधार हुआ है वह केवल माया जाल है। प्रस्ताव का पास होना तो दूर रहा पर उसका कौंसिल में प्रवेश होना भी शासकों की इच्छा पर निर्भर है। स्वीकृत प्रस्ताव का कार्य में परिणत होना उन्हीं की कृपा पर आश्रित है। और प्रस्ताव के अस्वीकृत होने पर भी उसके अनुसार काम होने लगता है ! अगणित उदाहरणों में से एक देशी राजाओं सम्बन्धी बिल *Princes Protection Bill* ही देखलें। एसेम्बली द्वारा अस्वीकृत होने पर भी यह कानून बना दिया गया। यदि ऐसा न किया होता तो देशी राज्यों में होने वाली उन्नति कैसे रुक सकती थी ? हाँ, शासन सुधारों से शासन व्यय अवश्य बढ़ गया है जिससे अधिकाधिक करों से जनता दब रही है।

न उन्हें इस रहस्य काही ज्ञान है कि सामाजिक और धार्मिक बातों में हस्तक्षेप न करने की नीतिका कहाँतक पालन किया जाता है। अर्थात् भारत को वर्तमान शासन-प्रणाली ने व्यभिचार*, धर्म परिवर्तन†, और द्यूत‡ (घुड़ दौड़ में बाज़ी

* आजकल व्यभिचार निषेधक यहाँ कोई कानून नहीं है। पिनलकोड की धारा ३७६ केवल बल-प्रयोग का निषेध करती है। व्यभिचार के लिये दण्ड होता तो पश्चिमीय घातक सभ्यता का लोग कैसे अनुसरण कर सकते—पाश्चात्य सभ्यता के अनुयायी किस प्रकार कोर्टशिप करने में समर्थ होते? अथवा गोरे-प्रवासी भारतीय ललनाओं को अपने जाल में फंसाने में कैसे सफल हो सकते?

† हमारे शास्त्रों के अनुसार धर्म-पतित (विधर्मी हो जाने पर) दायभाग का अधिकारी नहीं हो सकता—अनंशौ क्लीवपतितौ.........मनु, अध्याय ९, श्लोक २०१। किन्तु Freedom of Religion Act [1850] के द्वारा एक धर्म पतित को दाय भाग का अधिकारी बना दिया गया है। यदि ऐसा न किया गया होता तो ईसाई धर्म का यहाँ कैसे प्रचार हो सकता?

‡ बड़ी व्यवस्थापक सभा के विगत गर्मी के अधिवेशन में घुड़ दौड़ में बाजी लगाना कानून द्वारा रोकने के उद्देश से कुँवर गंगारामसिंह एक बिल पेश करना चाहते थे। पर बिल को कौंसिल में प्रवेश तक न होने दिया. क्या! यदि पिनल कोड की २९४अ धारा में घुड़-दौड़ को भी शामिल करदिया जाता तो, गोरों के लिये जुआ खेलने का क्या साधन रहता? घुड़दौड़ की बाजी में हिन्दुस्तानियों का चाहे कितना ही अनिष्ट क्यों न हो रहा हो, पर अंग्रेजी समाज और सभ्यता में इसे स्थान है अतः भारत में भी इसका होना आवश्यक समझा गया!

लगाना, इत्यादि) आदिके सम्बन्ध में स्वतंत्रता देकर यहाँकी सामाजिक और धार्मिक व्यवस्था पर किस प्रकार कुठाराघात किया है। अथवा यों कहिये कि इनके सम्बन्ध में पहले के समान अब कोई निषेधक कानून न होने से इनको (व्यभिचार आदिको) कितनी उत्तेजना मिल रही है!

इस दुर्व्यवस्था को देखकर या शराब की बढ़ती को देख कर कोई भी विचारशील पुरुष यह नहीं कह सकता कि भारत की उन्नति हो रही है। जिन विदेशियों ने यहां की अन्तरावस्था का निरीक्षण किया है वे ही वास्तव में भारत की वास्तविक अवस्था से परिचित हैं। प्रसिद्ध डाकूर सर फ्रिडरिक ट्रवेस Sir Frederick *T*reves ने अपने भारत-भ्रमण का उल्लेख करते हुए १९०४ में कहा था कि 'भारत में जो विस्मयकारक वस्तुएँ हैं उनमें सर्वोपरि वहाँ के निवासियों का दुःखमय जीवन है'। भारत की वर्तमान अवस्था को लक्ष्य कर एक अंग्रेज का कहना कि 'Is this the picture of a prosperous country?—Lily: India, p. 288. अर्थात् क्या यही सुखी और समृद्ध देश का चित्र है? एक दूसरे अंग्रेज लेखक के शब्द हैं कि 'हमारे शासन काल में भारत की उन्नति नहीं पर अवनति हो हुई है—J. S. Cotton: Colonies and Dependencies, p. 68. । मि० डिग्बी ने भूतपूर्व भारत-मंत्री लार्ड हमिलटन को चुनोती दी थी कि 'निस्सन्देह भारत की दारुण अधोगति होगई है। केवल साम्पत्तिक ह्रास ही नहीं पर और और महत्वपूर्ण विषयों में भी भारत का अधःपतन हुआ है। आप इस बात को कदापि असत्य प्रमाणित नहीं कर सकते'—Digby, p. xiii, xviii। अपनी पुस्तक "Prosperous" British

India के सम्बन्ध में डिग्बी साहबने लिखा है कि 'यदि मेरी पुस्तक के पढ़ने पर भी लोगों को भारत की सुख-समृद्धि के सम्बन्ध में भ्रम रहा तो प्रमाण का कोई मूल्य ही नहीं'। डा० एनी बीसेंट का कहना है कि 'पहले के भारत की सुख-समृद्धि से अंग्रेजी शासन के भयंकर परिणामों की तुलना कीजिये, जिन्होंने अंग्रेजी शासन के भ्रम-मूलक सारे उपकारों को आच्छादित कर दिया है—Compare the reality as shown in History with the nightmare invented to throw up by contrast the so-called "Blessings of British Rule." —New India, Dt. 20th July 1918.

देशवासियों को भ्रम—

होने के उपर्युक्त अनेक गौण कारणों के अतिरिक्त प्रधानतः दो कारण हैं—(१) शिक्षा का अभाव और (२) शिक्षा-प्रणाली।

शिक्षा का अभाव। २९–३० करोड़ भारतवासी बिलकुल अ-पढ़ हैं। ५ वर्ष से अधिक अवस्था के ८ प्रति सैकड़ा भारतवासी शिक्षित हैं। शिक्षित श्रेणी में वे भी शामिल हैं जो केवल अपना नाम लिख सकते हैं—(Census Report 1921, Vol. I, pt. I. p. 175-77। अतएव शिक्षितों की संख्या ३-४ प्रति सैकड़ा से अधिक नहीं है। जापान, इंगलैंड, अमेरिका आदि में ९०–९५ प्रति सैकड़ा शिक्षित हैं। भारत-मंत्री मांटेगू और वाइसराय लार्ड चेम्सफोर्ड ने लिखा है कि 'भारतवासियों को जो शिक्षा दी जा रही है वह केवल परीक्षा में उत्तीर्ण होने के मात्र उद्देश्य से बिना सोचे समझे मुखाग्र करली जाती है। यह भारत के शिक्षा-भिक्षुकों की आवश्यकता से सर्वथा विपरीत है। इस शिक्षा से निम्न श्रेणी के सरकारी कर्मचारियों और

कलहोपजीवियों—वकीलों—की ही अनावश्यक वृद्धि हो रही है। उचित शिक्षा के अभाव के कारण भारत का बहुत अहित हुआ है। लोगों का यह आक्षेप सर्वथा सत्य है कि सरकार ने भारतवासियों को उचित शिक्षा नहीं दी'—Montford Report paras 181–82. । बात यह है कि जो महत्व शिक्षा में होता है, वह हमें जो शिक्षा दी जाती है उसमें नहीं है। यद्यपि जितने जनों को शिक्षा दी जा रही है, वह शासकों को स्वार्थ-सिद्धि के लिये यथेष्ट है तथापि यह संतोष की बात है कि इस प्रकार की शिक्षा की अधिक वृद्धि नहीं हुई।

शिक्षाप्रणाली। जिस प्रकार संयोग और संसर्ग से रेलों ने हमारा अनिष्ट किया उसी प्रकार वर्तमान शिक्षा प्रणाली ने भी हमारे देश के अङ्ग-प्रत्यङ्ग शिथिल कर दिये हैं। साधारणतः तीन प्रकार की पराधीनता होती है—राजनैतिक, आर्थिक और सभ्यता या संस्कृति सम्बन्धी (Cultural)। हमारे ऊपर इंगलैंड का केवल राजनैतिक ही प्रभुत्व नहीं, परन्तु आर्थिक और सभ्यता सम्बन्धी भी है। राजनैतिक प्रभुत्व से आर्थिक-आधिपत्य तो अधिक अहितकर होता ही है, पर एक देश की संस्कृति को—परम्परागत सभ्यता को—उसके निवासियों को अंधकारमय या निस्सार सुझाकर विदेशी सभ्यता और शासन का गुलाम बनाना, राजनैतिक और आर्थिक पराधीनता से भी निकृष्ट है। लोगों को उनकी अपनी सभ्यता आदि के विषय में घृणा कराने का प्रधान साधन शिक्षा-प्रणाली है। पाश्चात्य राजनीतिज्ञों का सिद्धान्त है कि 'यदि जातीय जीवन में कुछ भी परिवर्तन करने की आवश्यकता हो तो देश के विद्यालयों में उसका श्रीगणेश करना चाहिये।'

Bernard Haughton बर्नार्ड-होगटन ने अपनी 'The Psychology of Empire' नामक पुस्तक में लिखा है कि विजयी जातियों ने विद्यालयों द्वारा विजित जातियों में यह भाव उत्पन्न करने की सदैव चेष्टा की है कि "वे 'विजित जन' स्वभाव से ही हीन हैं।"

अंग्रेजी शासन की सुदृढ़ता के लिये यह आवश्यक था कि भारतीय जीवन में युगान्तर उपस्थित कीया जाय। अतएव उक्त सिद्धान्त के अनुकूल वर्तमान स्कूल कालेजों की यहां स्थापना हुई है। अर्थात् भारतवासियों के हृदय में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अत्याचारों के प्रति जो विरोधाग्नि प्रज्वलित हो रही थी उसे शमन करने के लिये; खोई हुई स्वतंत्रता के लिये भारतवासियों के हृदय में जो उद्विग्नता, उत्कण्ठा और चिन्ता के व्यग्र समुद्र की उत्तुङ्ग लहरें लहरा रही थीं, उन्हें शान्त करने के लिये; विजित जाति को विजयी विदेशी और विधर्मी जाति के प्रति जो स्वाभाविक घृणा और विद्वेष के भाव रहते हैं, उन्हें शिथिल करने के लिये; अथवा यों समझिये कि अंग्रेजों को अपनी अस्थिरता का जो भय होना स्वाभाविक था उसे दूर करने के लिये; और इस उद्देश्य की सफलता होने पर आगे को इङ्गलैंड वाले जिन प्रक्रियाओं द्वारा भारत में अपना स्वार्थ सिद्ध करें, वे हम लोगों को असह्य प्रतीत न हों, उलटा अंग्रेजी शासन को दैवी-प्रसाद या अनुग्रह समझें और अंग्रेजों को श्रद्धा और भक्ति से देखते रहें; उनके शासन के गुण-गान गाते रहें; इसलिये यहाँ स्कूल और कालेजों की स्थापना हुई है। देशभक्त श्री० फीरोजशाह महता का कहना है कि 'भारत में अंग्रेजी शासन की सुरक्षा के लिये फौज की तो जरूरत है ही पर स्कूल और कालेजों की भी अनिवार्य

आवश्यकता है। ये ही वास्तव में फौजियों के काम को चिरस्थायी और सुदृढ़ बनाते हैं—Speech at Bombay Graduate's *Association*, *April* 4, 1893.

ध्यान पूर्वक विचार करने से यह प्रत्यक्ष हो जायगा कि स्कूल-कालेजों ने उक्त कार्य को किस खूबी से सम्पादन किया है और कर रहे हैं। इन स्कूल-कालेजों की घातक शिक्षा प्रणाली को हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं—एक, इतिहास का दुराध्यापन; दूसरा, अंग्रेजी भाषा का साम्राज्य।

इतिहास का दुराध्यापन।

हिन्दुस्तानियों के हृदय से राष्ट्रीय स्वतंत्रता की प्रबल उत्कण्ठा को दूर करने के लिये सब से पहले यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि उन्हें अपनी संस्कृति के प्रेम और अनुराग से विरक्त किया जाय। इस ध्येय की प्राप्ति के लिये सब से अच्छा मार्ग इतिहास का दुराध्यापन समझा गया। इतिहास जाति का जीवन है—जाति की उन्नति का एक महत्वपूर्ण साधन है। यदि विजयी जाति स्वार्थ-लिप्सा से अथवा अपने शासन को चिरस्थायी बनाने के उद्देश्य से विजित देश का इतिहास लिखती है तो विजित जाति का जीवन जीवित नहीं रह सकता। विजयी जाति विजित देशका इतिहास इस खूबी से लिखती है कि जिससे विजित जाति को यह भ्रान्ति होने लगती है कि 'हम में परम्परागत हीनता है और शासक समुन्नत और सर्व शक्तिमान हैं अतः विजित जाति विदेशी शासकों के विरुद्ध खड़ा होने का एकाएक साहस नहीं कर सकती। अर्थात् शासन कार्य्य को निर्विघ्न चलाने के लिये और दोहन-शोषण के प्रवाह को सदैव के लिये बहते रहने के लिए इंगलैंड वालों ने भारत के इतिहास को कपोल-कल्पित बातों से कलं-

कित और कूट-कपट से कलुषित कर दिया है जिससे उसके अध्ययन से अनिवार्यतः दासत्वभाव उत्पन्न होता है।

यहां के स्कूल और कालेजों में जो इतिहास ग्रन्थ पढ़ाये जाते हैं, वे केवल इतिहास शब्द से अलंकृत हैं परन्तु उनमें ऐतिहासिक सत्यता का अंशतः भी समावेश नहीं। यहां के इतिहास की जहां इतिश्री है वहां इनकी कथा प्रारम्भ होती है! देश की संस्कृति और सभ्यता का ही इतिहास वास्तव में इतिहास है। किन्तु इनमें भारत की सहस्रों वर्ष की समुन्नत और समुज्वल सभ्यता के विषय में और यहाँ की प्राचीन राजनैतिक, सामाजिक और साम्पत्तिक ऊर्जितावस्था के सम्बन्ध में एक शब्द भी नहीं! आधुनिक सभ्यताभिमानी प्रत्यक्ष-प्रमाण-प्रवीण पाश्चात्यों ने प्रबल प्रमाणों के आधार पर यह मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया है कि "भारत अत्यन्त उन्नतिशाली था—उसके समान कोई देश समुन्नत नहीं था। यहां की राज्यव्यवस्था आदर्श थी, सामाजिक जीवन सर्वथा संतोषप्रद था। वह महालक्ष्मी का क्रीड़-स्थल था। ज्ञान-विज्ञान, शिल्प-वाणिज्य, साहित्य-संगीत आदि के उन्नतम शिखिर पर आरूढ़ था।" उस सर्वाङ्ग समुन्नत और सर्वगुण सम्पन्न भारत के लिये देवता भी यही कहा करते थे कि "धन्यास्तु ये भारत भूमि भागे"। उनकी यही अभिलाषा रहती थी कि हम भी भारत में जन्म लेकर कृत कृत्य हों (श्रीमद्भागवत,५-१६-२१-२२)। जब प्राचीन सभ्यताभिमानी यूनान, रोम और मिश्र, और आधुनिक सभ्यता के केन्द्र यूरुप और अमेरिका, असभ्यता और अज्ञानता के अंधकार में विलुप्त थे तब भी भारत संसार की सभ्यता का मुकुट-मणि था और

ज्ञान विज्ञान में कल्पनातीत उन्नति कर रहा था। यहां वालों ने अपने अकाण्ड पाण्डित्य से सारे संसार को आलोकित कर दिया था।

भारत के पूर्वकालीन समुत्कर्ष के सम्बन्ध-में सहस्त्रों प्रमाण हैं। यहां की भूतपूर्व सभ्यता के एक एक अङ्ग पर आधुनिक निष्णात विद्वानों द्वारा बड़ी गवेषणा से अनेक ग्रन्थ लिखे गये हैं। उदाहरणार्थ-

1 Majumdar: Corporate Life in Ancient India.
2 *B*anerjea: *P*ublic *A*dministration in Ancient India
3 Ghoshal: Hindu Political Thoeries.
4 Sarkar: *P*olitical *I*nstitutions & Theoris of Hindus.
5 Mookerjee: Local Self-Govt. in *A*ncient India.

इत्यादि अनेक पुस्तकों में पूर्व भारत की राज्यप्रणाली और अन्यान्य राजनैतिक बातों का उच्चादर्श प्रतिपादन किया गया है। इसी प्रकार सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और दार्शनिक विषयों पर अनेकानेक ग्रन्थ लिखे गये हैं, किन्तु उन सारे ग्रन्थों का नाम लिखना असंगत है। यहाँ तो भारत के पूर्वोत्कर्ष के सम्बन्ध में दो चार लब्धप्रतिष्ठ विद्वानों के कुछ शब्द ही उद्धृत करना पर्याप्त है—'भारत अत्यन्त सम्पत्तिशाली और अतीव सभ्य था।'—Hyndman: Aisa. p. 209। 'जब मिश्र के पिरामिडों का नाइल की खाड़ी के समीप कोई पता ही न था और रोम और यूनान जो पश्चिमी सभ्यता की जन्मभूमि है जब वे जङ्गली जातियों के निवासस्थान थे, उस समय भारत धन-धान्य परिपूर्ण था'—Thornton: Description of Ancient India। "सर टामस-रो ने (जो भारत में

आने वाले सबसे पहले अंग्रेज यात्री थे) हिन्दुस्तान के विशाल वैभव के सम्बन्ध में जो विस्मयात्मक वृतान्त लिखाथा उसको और उन्होंने मुगल राजत्व काल का जो मनोमुग्धकारी दृश्य अङ्कित किया था उसको जब मैंने युवावस्था में पढ़ा था तब मैं यह समझता था कि 'शायद मैं अरेबियन-नाइट—सहस्र-रजनीचरित्र—पढ़ रहा हूँ'। किन्तु यह मेरा भ्रम था। वास्तव में जो कुछ उन्होंने लिखा वह यथार्थ है"—Rev. Williams Butler D. D: "The Land of the Veda" [Being author's personal reminiscences of India—New York, 1872, chapter *I*, para *I*. ।'भारतीय साहित्य और तत्वज्ञान निस्सन्देह अद्वितीय है'—Victor Cousin (एक प्रसिद्ध फ्रेंच विद्वान): The History of Modern Philosophy, Vol. I, p. 32.

किन्तु प्राचीन भारत की उन्नतावस्था के विषयका स्कूल कालेजों के विद्यार्थियों को साधारण भी ज्ञान नहीं कराया जाता। जो इतिहास पढ़ाये जाते हैं उनमें भारतकी अतीत सभ्यता के सम्बन्ध में जो कुछ लिखागया है, उससे यह प्रभाव उत्पन्न होता है कि पहले भारतवासी असभ्यता के गहन अंधकार में चिन्तनीय पतितावस्था में पड़े हुए थे। सुविख्यात सर W. W. Hunter ने अपनी "A. Brief History of the Indian People" नामक पुस्तक की भूमिका में लिखा है कि "गोरे इतिहास-लेखकों ने भारतका दो सहस्र वर्ष का इतिहास दोचार पृष्ठों में ही समाप्त करदिया है। जब से भारत विदेशियों के पञ्जे में आया है तब से ही, अर्थात् भारत को एक पराजित देश बताते हुए ही उन्होंने अपनी कथा का आरम्भ किया है! यह प्रथा निस्सन्देह आपत्तिजनक है। जब तक

भारतीय नवयुवकों के लिये उनका प्राचीन इतिहास अंधकार में रक्खा जायगा और उन्हें पराधीनता का निष्प्रभ और उदासीन वृत्तान्त बताया जायगा, तब तक भारतीय विद्यालय आत्माभिमानी पुरुषों के पालन-पोषण के स्थान नहीं हो सकते !' कालेजों की उच्च कक्षाओं में जो इतिहास पढ़ाये जाते हैं उनमें भारतीय प्राचीन सभ्यता के विषय का उल्लेख किया गया है सही पर उसे यूनान वालों की अथवा अन्य देशों की अनुगामिनी कह कर कुछ भी महत्व नहीं दिया गया !

मध्यकाल के सम्बन्ध में अर्थात् मुसलमानों के राजत्वकाल के विषय में जो उल्लेख है वह भी उनके शासन की महत्ता, तत्कालीन देश की सुख-समृद्धि का इतिहास नहीं। किन्तु उनके आक्रमणों और अत्याचारों को अत्युक्ति से अलंकृत कर उस समय की दुरावस्था का मिथ्या चित्र-चित्रण किया गया है ! अथवा उनके शासनाधिकार में हिन्दुओं के जीवन को सर्वथा कण्टकाकीर्ण प्रमाणित करने के लिये कपोल कल्पित कहानियाँ लिखी गई हैं। जैसे टीपू सुल्तान के अत्याचारों के सम्बन्ध में जो लिखा गया है वह बिलकुल असत्य है। टीपू ने तो अनेक मन्दिरों की स्थापना की थी और लक्षों रुपयों का दान मन्दिरों को दिया था। जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारी ड्यूटी बिना व्यापार करने लगे तब मीरकासिम ने अपनी आयकी कुछ परवाह न कर, अर्थात् स्वयं हानि सहकर देशवासियों से भी ड्यूटी लेना छोड़ दिया, जिससे कि उसकी प्रजा भी कम्पनी के कर्मचारियों की प्रतिस्पर्धा में व्यापार कर सके ! ऐसा उदारतापूर्ण कार्य कभी कहीं किसी शासक ने नहीं किया—Dutt, Vol. *I*, p. 29--30। मुसलमान शासकों ने

हिन्दुओं को सर्वोच्चपदों पर नियुक्त किया। उनके राज्य में देश क्षीण नहीं हुआ। क्योंकि एसियावासी एसियावासियों का शासन करते थे अतएव उनके हृदय में भारत के रक्त-पान के लिये स्थान नहीं था। उनके पतन काल में भी जब अकबर और औरङ्गजेब के प्रमादी उत्तराधिकारियों ने जो शासन किया वह भी था तो आखिर में देशी ही। इस लिये भारत का कुछ अहित नहीं हुआ—Hyndman: *Asia*, p. 227। किन्तु इन ऐतिहासिक सत्यों को स्कूल और कालेजों के इतिहास-ग्रन्थों में कोई स्थान नहीं!

छत्रपति शिवाजी, राजा रणजीतसिंह आदि के सम्बन्ध में भी मनोरथसृष्ट बातें लिखी गई हैं। महाप्रतापी शिवाजी को निर्लज्ज और अत्याचारी डाकू इत्यादि उपाधियों से आभूषित कर मध्यकालीन हिन्दू शासकों को क्रूरता और नीचता का परिचय देने का घृणित प्रयत्न किया गया है। अर्वाचीन इतिहास के सम्बन्ध में भी कोई ऐतिहासिक सत्यता प्रकट नहीं की गई है। यद्यपि इस सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा गया है, परन्तु वह अंग्रेजों के शासनाधिकारी होने के समय से—१७५७ के पलासी युद्ध के समय से—अपने शासन के गुण-गान में है। लिखा गया है कि 'मुगल साम्राज्य के पतन के समय यहां जो भयंकर अराजकता फैल रही थी उससे अंग्रेजों ने भारत का उद्धार किया।' किन्तु मेजर B. D. Basu की The Rise of the Christian *Power* in India नामक पुस्तकों से हमें पता लगता है कि इस दुरावस्था और खून-खराबी का प्रधान कारण ईस्ट-इण्डिया-कम्पनी ही थी। अस्तु। कम्पनी की हृदयविदारक क्रूरता और घृणित अत्याचारों का कहीं वर्णन नहीं। यदि प्रसङ्ग

से उनका कहीं कुछ ज़िक्र करना पड़ा है तो यह कहकर उसका समाधान करदिया गया कि 'राजनैतिक दृष्टि से,' 'अनिवार्य आवश्यकता के कारण,' 'वस्तु-स्थिति से विवश हो कर,' ऐसा करना पड़ा ! अंग्रेजी शासनकाल में भारत की जो अभूतपूर्व अधोगति हुई है उसको छुपा कर ऐसी हृदयग्राही बातें बनाकर लिखीगई हैं जिससे अंगरेजों का शुभागमन एक दैवी अनुग्रह प्रमाणित होता है !

संक्षेप में यों कह सकते हैं कि पूर्वकालीन भारत की अवस्था का मिथ्या चित्र-चित्रण कर यह प्रभाव उत्पन्न करने का भरसक उद्योग किया गया है कि "भारत का अतीत अतीव अंधकारमय था। हम जङ्गली थे। ज्ञान-विज्ञान की बातें तो दूर रहीं साधारण सांसारिक बातों से भी हम समुचित परिचित नहीं थे। हम अत्यन्त दीन हीन थे। हमारे राजा-महाराजा और राजनीतिज्ञ डाकू, लुटेरे, प्रजापीड़क, उपद्रवी, प्रमादी, अन्यायी, स्वेच्छाचारी और अत्याचारी थे। उनके राज्य में न सुख था और न शान्ति। हमारा कोई जातीय संगठन नहीं और शताब्दियों से हम ऐसी दुरावस्था में रहते आये हैं कि हम स्वयं राजप्रबन्ध के सर्वथा अयोग्य और असमर्थ हैं ! हम सदैव ही युद्धों में पराजित हुए हैं, क्योंकि हम स्वभाव से ही हीन प्रकृति के हैं ! और हम ऐसे वंश के वंशज हैं कि हम अपने देश का आप शासन नहीं कर सकते !" और मुसलमान शासकों के सिर अत्याचार और क्रूरता का कलङ्क लगा कर हिन्दुओं के हृदय में मुसलमानों के प्रति घृणित भाव उत्पन्न कर पारस्परिक विद्वेषाग्नि प्रज्वलित की गई है। परन्तु ईश्वरीय प्रसाद से अंगरेजों के शासनाधिकारी होने से अब अत्याचारों का अन्त हो गया बताया।

जाता है! वर्तमान में ज्ञान-विज्ञान और सुख समृद्धि की उन्नति की मृगमरीचिका दिखाई जाती है और इस प्रकार मिथ्या प्रमाण दे वर्तमान शासनप्रणाली में अनुराग उत्पन्न करने की यथासाध्य चेष्टा की गई है। निष्कर्ष यह है कि अंगरेजों के पहले की अवस्था के कृत्रिम भयंकर दृश्य दिखा कर उसकी तुलना में वर्तमान सुख-समृद्धि का मिथ्याभास कराया जाता है !

इस प्रकार इतिहास के दुराध्यापन के कारण विद्यार्थियों को अपना अतीत अंधकारमय, शून्य और दोष पूर्ण दीखने लगता है और वर्तमान गजभुक्तकपित्थवत उन्नति का मोह होने लगता है। और प्रसंगवश वे यह भी सीखलेते हैं कि 'कितने कुलीन और उदारभावों से प्रेरित होकर गोरे-शासक भारत का शासन कर रहे हैं। कितनी उत्तम उनकी शासन-प्रणाली है और इसका कितना उत्कृष्ट परिणाम रेलों आदि के रूप में हमारे सम्मुख है।' कलकत्ते के भूतपूर्व न्यायाधीश श्रीयुत वुडरफ साहब का कहना है कि "भारतीय नवयुवकों में उनकी हीनता के भाव निरन्तर और दृढ़ता से उत्पन्न कराये जाते हैं। इसलिये अब वे अपने आप को भूल गये हैं। उन्हें सिखाया जाता है कि 'तुम्हारा कोई समुज्वल अतीत नहीं! उन्नतिशाली पाश्चात्य ही जड़ प्राच्य से उत्तम है! अतएव तुम्हारी उन्नति का एक मात्र साधन अपनी परम्परा-गत जङ्गली रीति-रिवाजों को तिलाञ्जलि देकर पाश्चात्य का अनुकरण कर उसके समान होना है! अर्थात् तुम अपने शिक्षकों और शासकों के समान स्वयं बन जाओ।' आगे वुडरफ महाशय कहते हैं कि 'यदि इस तरह की अपनी निकृष्टता के और पाश्चात्य सभ्यता की श्रेष्टता के कुभाव

बालकों के हृदय-पटल पर निरन्तर अङ्कित किये जायँ तो असंदिग्ध रूप से वे अपनी जाति और सभ्यता से घृणा करने लगते हैं ! "Seed of the Race." p. 33-34.

पाठक ! आप भी विचारिये ! जब ऐसे छलछद्मपूर्ण इतिहास पाठ्य विषय में हों, तब यदि इनका अध्ययन करने वाले अपने पूर्वजों पर लज्जित हों और वर्तमान शासन प्रणाली और रेलों आदि पर मुग्ध हों तो आश्चर्य ही क्या है ?

अंग्रेजी भाषा का साम्राज्य ।

यहाँ की शिक्षा प्रणाली के सम्बन्ध में दूसरी विचारणीय बात अंग्रेजी भाषा के साम्राज्य की है। अंग्रेजी शासन के कारण व्यावहारिक और राजनैतिक दृष्टि से अंग्रेजी भाषा का थोड़ा बहुत ज्ञान निस्सन्देह आवश्यक है। किन्तु देशी भाषाओं की उपेक्षाकर एकमात्र अंग्रेजी भाषा को ही शिक्षा का लक्ष्य आरोपित करना देशके लिये निस्सन्देह भयंकर हानिकारक है। यह सत्य है कि प्राणी-शास्त्र भूगर्भशास्त्र आदि जो यहां हैं वेही पश्चिम में हैं। पर साहित्य, दर्शन और इतिहास आदि अवश्य विभिन्न हैं। वुडरफ साहब के दुःखभरे शब्दों में 'भारतीय धर्म को अंधविश्वास (false superstitions), वहां के दर्शन शास्त्र को अनुपयोगी और कपोल-कल्पित [antiquated guess-work without present value], वहां की विद्या को अपूर्ण, वहां के साहित्य को असंस्कृत और अश्लील और उनके विज्ञान को घी-दूध का समुद्र बताने वाला समझ-समझाकर उनकी शिक्षा न देना और अंग्रेजी भाषा और शास्त्र काही अध्ययन कराना निस्सन्देह आपत्तिजनक है।" भारतीय विद्यार्थी कालिदास के रघुवंश आदि को पढ़े बिना ही साहित्य में और यहाँ के

दर्शन शास्त्रों का दर्शन किये बिना ही तत्वज्ञान में एम० ए०, बी० ए०, की उच्च उपाधि प्राप्त कर सकते हैं ! अर्थात् विद्यार्थियों को अपने देश के ज्ञान और विज्ञान का परिज्ञान हुए बिना ही वे विदेशी भाषा के ही अध्ययन से बड़ी बड़ी परीक्षाएँ पास कर लेते हैं !

हम यह नहीं कहते कि आधुनिक विज्ञान की शिक्षा न दी जाय। वैज्ञानिक शिक्षा बहुत जरूरी है और J. Scott Russel के शब्दों में आधुनिक संसार में वही जाति सर्वाग्रणी हो सकती है जो अपने देशवासियों को व्यवहारोपयोगी वैज्ञानिक शिक्षा देती है "Systematic Technical Education," p. 79.। किन्तु दुःख तो इस बात का है कि मातृ भाषा की शिक्षा भी एक विदेशी भाषा द्वारा—अंग्रेजी भाषा द्वारा—दी जाती है ! स्वर्गीय सर गुरुदास बनर्जी के शब्दों में 'शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी जैसी क्लिष्ट भाषा होना अत्यन्त हानिकारक है। इस से विद्यार्थियों का समय और बुद्धि ही नष्ट नहीं होती किन्तु विचार-शक्ति भी कुचल जाती है, क्योंकि वह विदेशी भाषा के परिमित ज्ञान की सीमा के आगे परिवर्धित नहीं हो सकती
–(University Com. Report, Vol. VIII p. 17–18)। अंग्रेजी तर्क शास्त्र के प्रसिद्ध पण्डित फाउलर का कहना है कि 'जिस भाषा में लोगों की विचार धारा स्वभावतः ही बहती है, वही भाषा विचारों के लिये सर्वोत्तम है—The language in which man habitually thinks must be the fittest medium for analising their thoughts.—Fowler's Preface to the Deductive Logic'। यदि देशी भाषा द्वारा शिक्षा दी जाय तो इतिहास, अर्थशास्त्र आदि अनेक साधारण विषयों के ग्रन्थों के अध्यापन की कोई आवश्यकता ही न हो—इन्हें लोग

स्वयं पढ़ और समझ सकते हैं। किन्तु विदेशी भाषा के कारण इनका अध्यापन आवश्यक होगया है, जिससे वृथा ही समय, धन और शक्ति का दुरुपयोग होता है। अंग्रेजी भाषा माध्यम होने के कारण विद्यार्थियों को इतना परिश्रम करना पड़ता है कि ५० प्रति सैकड़ा विद्यार्थी भयंकर रोगों से ग्रसित रहते हैं —Lt. Col. Kanta Prasad: Health and Mortality in the Educated Indians, p. 4.।

विदेशी शिक्षा अपने अनुयायियों को पश्चिम के जड़वाद में फँसा कर उनके नैतिक और आध्यात्मिक ज्ञान का अभिवर्धन नहीं होने देती। यह हमें निस्सहाय बना देती है। लोक-व्यवहार शून्य और पाठ्यग्रन्थों में ही परिमित रहने वाली यह शिक्षा हमारी बुद्धि का विकास नहीं होने देती। देशी शिक्षा के अभाव के कारण ही आजकल के शिक्षित लोग निरीश्वरवादी और अपने आदर्श से च्युत होते हैं। उनका सामाजिक जीवन और चरित्र भ्रष्ट हो गया है। उनमें न देश प्रेम है और न राष्ट्रीय-उत्थान की ही उत्कण्ठा। हाँ, इसने पाश्चात्य हिंसावाद के अङ्कुर, जो देश के लिये निस्सन्देह घातक हैं, किसी अंश में अवश्य उत्पन्न कर दिये हैं। शायद इन बातों को विचार कर ही वुडरोफ साहब कहते हैं कि 'क्या भारतीय शास्त्रों का कोई मूल्य नहीं जिससे उनके अध्ययन की आद्यावधि उपेक्षा की गई और अब भी की जारही है? एक देश के वासियों को उनके अपने शास्त्रों से बहिर्मुख रखना देश के लिये असंदिग्ध रूप से घातक है—Woodroff: Seed of the Race, p. 31.।

किन्तु रहस्य यह है कि विदेशी भाषा और शास्त्रों के अध्ययन से देश का चाहे कितना ही अनिष्ट क्यों न हो पर

ये रेलों आदि के गुणगान में अतः देश को गुलाम बनाने में सहायता देते हैं अतएव इनका साम्राज्य है। डच लोगों की कहावत है कि "No Language no Nationality" अर्थात् मातृभाषा बिना राष्ट्रीय भाव जागृत नहीं हो सकते। भारत में अंग्रेजी भाषा की शिक्षा के जनक Rev. Alexandar Duff ने लिखा है कि 'रोम वालों ने अपने विजित देशों में रोमन भाषा और साहित्य की शिक्षा का प्रचार किया था जिससे विजित जातियों की भाव-भावनाएँ, आचार-विचार आदि सम्यक प्रकार से परिवर्तित हो गये और वे रोमवालों के अनन्य भक्त बन गये'।—Exposition of the Late Governor General of India's Last Act, 1837.। इसी उद्देश्य से यहां अंग्रेजी भाषा का साम्राज्य है। भारत में अंग्रेजी भाषा के आदि प्रवर्तक सुविख्यात मैकोले साहब का १८३५ का भारतीय शिक्षा सम्बन्धी लेख बहुत प्रसिद्ध है। इसमें आपने लिखा है कि अंग्रेजी शिक्षा द्वारा हमें ऐसे पुरुष तैयार करने चाहिये जो रंग-रूप में भारतीय हों पर उनकी रुचि-मति, नीति-रीति हमारे अनुकूल हो—Macaulay's Educational Minute of 1835। मद्रास के गवर्नर सर ट्रवेलियन Sir C. Travelyan ने अपनी "On the education of the people of India" नामक पुस्तक में १८३८ में लिखा था कि 'हिन्दुस्तानियों को अंग्रेजी भाषा की शिक्षा देने से हमारा उनके साथ चिरस्थायी सम्बन्ध हो जायगा। जब वे (भारतवासी) हमारे साहित्य आदि से सुपरिचित होंगे तब हम उन्हें विदेशी प्रतीत न होंगे—वे प्रबल विरोधी और उद्विग्न स्वधर्मानुयायी न रह कर हमारे उत्सुक सहयोगी बन जायँगे। प्रत्यक्ष है कि जो विद्यार्थी हमारे स्कूलों में

पढ़ रहे हैं वे हम से घृणा नहीं करते प्रत्युतः हमारे सहयोग के लिये लालायित हैं। और हमें अपना सहायक और उपकारी समझते हैं!' १८८० में कलकत्ता यूनीवर्सीटी के कोन्वोकेशन में भाषण करते हुए सुप्रिम कौंसिल के मेम्बर Sir Alexander J. Arbuthnot K. C. S. I., ने कहा थाकि 'जो शिक्षा हम हिन्दुस्तानियों को दे रहे हैं, उसके कारण वे हमारे शासन के गुणगान करने में अच्छी योग्यता प्राप्त करलेंगे'। इन्हीं शब्दों में Sir Richard Temple Bart. ने अपनी सुविख्यात "India in 1880" नामक पुस्तक में लिखा है। इसीलिये आज रेलों आदि के भीषण दुष्परिणाम लोगों को नहीं दीखते।

विदेशी शिक्षा के कारण विदेशी-सभ्यता के संक्रामक रोग के कीटाणु हम लोगों में प्रवेश करगये हैं। आजकल के शिक्षित लोग हमारी स्त्रियों को सामाजिक अत्याचार की शिकार और शिक्षा का अर्थ केवल अंग्रेजी भाषा का ही ज्ञान समझने लगे हैं! योग्यवर की प्राप्ति के लिये कुमारियों को अंग्रेजी पढ़ाई जाती है! विवाहित युवतियों को उनके पति इसलिये अंग्रेजी सिखाने को व्यग्र हैं कि बिना अंग्रेजी के ज्ञान के उनमें सभ्यता का संचालन न होगा! बहुत से अंग्रेजी शिक्षित भारतवासी इसलिये असंतुष्ट हैं कि उनकी महिलाएं अंग्रेजी से अपरिचित हैं! इन बेचारों का दोष ही क्या? जो शिक्षा इन्हें दी गई है वही इन नीच भावों की जननी है। १९२३ में अलवर नरेश के सम्मानार्थ इंगलैंड में जो भोज दियागया था उसमें भाषण करते हुए भारत के भूतपूर्व वाइसराय लार्ड कर्जन ने कहा कि 'एक बार एक देशी नरेश ने मुझ से कहा था कि आगामी गर्मी में मैं घर जाऊँगा। घर से उनका अर्थ इंगलैंड से था'। मेयो-कालेज आदि राजकुमार शिक्षालयों में भी और पढ़ाया ही क्या

जाता है ? चाहे विचार से हो चाहे अविचार से पर बहुत से अंग्रेजी पढ़े हुए लोग इंगलैंड के लिये घर "Home" शब्द का निस्संकोच उपयोग करते हैं। इसका एकमात्र कारण विदेशी भाषाका साम्राज्य है। यदि वर्तमान शिक्षा प्रणाली कुछ समय और जीवित रही तो देशवासी अपने आप को सर्वथा भूल जायँगे और रेलों आदि के गुणगान में मस्त रह कर देश को मिट्टी में मिला देंगे।

इति

परिशिष्ट।

इस पुस्तक में जिन जिन पुस्तकों आदि के संक्षिप्त नाम का उपयोग किया गया है उनका पूरा नाम निम्न लिखित सूची में है:—

संक्षिप्त नाम	पूरा नाम
Acworth Com. *R*eport.	Report of the *I*ndian Railway Committee, 1920–21.
Acworth; Rys. and Traders.	W. M. *A*cworth; *T*he Railways and Traders (1891).
*A*cworth: Ry. Economics.	W. M. Acworth; The Elements of *R*ailway Economics 1911.
Acworth; State Ownership.	W. M. Acworth: Historical Sketch of State *R*ailway Ownership.
*A*dams; Civilization and Decay.	Brooks Adams; *T*he Law of Civilization and Decay.
A. L. J.	Allahabad Law Journal.
Assembly Debates.	Report of the Indian Legislative Assembly Debates.
Banerjea; Economics.	Pramathnath Banerjea; A Study of Indian Economics

Banerjea: Fiscal Policy.	Pramathnath Banerjea: Fiscal Policy in India.
Bell: Ry. Policy.	Horace Bell: Railway Policy in India. 1894.
Bom. L. R.	Bombay Law Reporter.
Census Report.	Report of Census of India 1921.
Chatterjee: Economics.	Prof. H. S. Chatterjee: An Introduction to Indian Economics.
Classified List.	Classified List of State Railway establishment etc, 1923.
Constitutional Report.	See. Montford Report.
Cotton: New India.	Sir Henry Cotton K. C. S. I., M. P: New India. 1909.
Council Proceedings.	Proceedings of the Imperial Legislative Council.
Cross: Self-Govt. in India.	Cecil Merne Putnam Cross The Development of Self Government in India. 1922.
C. W. N.	Calcutta Weekly Notes.
Devas: Economy.	Charles S. Devas: Political Economy (1913).
Digby.	Wm. Digby: "Prosperous British India."
Dutt, Vol. I.	R. C. Dutt: The Economic History of India (Early British Rule).

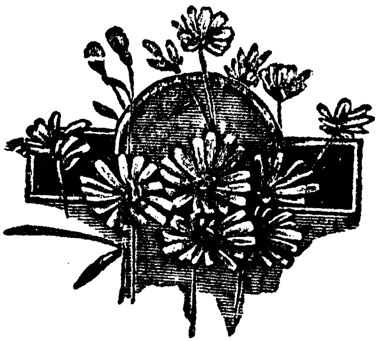
Dutt, Vol. II.	R.C. Dutt: (Victorian age).
English *Ry*. Act. 1888.	Railway and Canal Traffic Act, 1888 (of England).
English Ry. Act. 1921.	Railway Act 1921 (of England).
Exchange Com. *Report*.	Report of the Committee on Indian Exchange and Currency, 1919–20.
Fiscal Com. Report.	*Report* of the Indian Fiscal Commission, 1921–22.
Ghose: Ry. Economics.	S. C. Ghose: Indian Railway Economics.
Ghose: *Ry*. Problems.	S. C. Ghose: Indian Railway Problems.
Grunzel: Protectionism.	J. Grunzel: Economic Protectionism.
Huddleston: E I.Ry.	G. Huddleston: History of the East Indian Railway.
Hyndman: Asia.	H. M. Hyndman: The Awakening of Asia.
I. L. R. All.	Indian Law Reports, Allahabad.
I. L. R. Bom.	„ „ Bombay.
I. L. *R*. Cal.	„ „ Calcutta.
I. L. R. Mad.	„ „ Madras.
Imp. Gazetteer.	The Imperial Gazetteer of India (The Indian Empire).

Industrial Com. Report.	Report of the Indian Industrial commission, 1918.
Kale: Economics.	V. G. Kale: Indian Economics.
Kirkaldy: Transport Economics.	Kirkaldy and Evans: History and Economics of Transport.
Lily: India.	W. S. Lily: India and Its Problems.
List: Economy.	Friedrick List: *The* National System of Political Economy,
Loveday: Indian Famines.	A Loveday: History and Economics of Indian Famines.
Macdonald: Govt.of India.	J. RamsayMacdonald: The Government of India.
Macdonald: India.	J. Ramsay Macdonald: *The* Awakening of India.
Macgeorge: Ways and Works.	G. W. Macgeorge: *W*ays and Works in India (1894).
Mackay Com. Report.	Report of the Indian Railway committee 1907-8.
Mannings: Ancient India.	Mrs. Mannings: Ancient and medieval India 1869.
Meyer: Ry. Legislation.	B. H. meyer: Railway Legislation in the United States of America.
Mill: Economy.	James Stuart Mill: Principles of Political Economy.

Mill: History of India.	James Mill: The History of *B*ritish India, 4th Ed. with Notes and continuation by H. H. Wilson. 1848.
Monograrph.	S. C. Ghose: Monograph on Indian Railway Rates. (Government Publication).
Montford Report.	Report on the Indian constitutional Reforms. 1918.
Mookerji: Indian Shipping.	*R*adhakumud Mookerji: A History of Indian Shipping etc.
Mukerjee: Economics.	Radhakamal Mukerjee: The Foundations of Indian Economics.
Mukerji: Indian Agriculture.	N. G. Mukerji: Handbook of Indian Agriculture. 1923.
Ninth Report.	Ninth *R*eport of the House of Commons Select committee on administration of Justice in India. 1783.
Pigon: Economics.	A. *C*. Pigon: The Economics of *W*elfare. 1920.
*P*riestley: American Rys.	Neville Priestley's Report on the American Railways. 1903.
Rai: England's Debt.	Lajpat Rai: England's Debt to India [New York]
Ranade: Economics.	M. G. Ranade: Essays on Indian Economics.

*R*aper: *R*y. Transportation.	C. L. Raper: *R*ailway Transportation.
Retrenchment *C*om. Report	Report of the Indian Retrenchment Committee [1922–23], Part 2 on Railways.
Risk Note Com. Report.	Report of the Committee on Indian Railway Risk Notes, 1922.
Robertson's Report.	Report on Indian *R*ailways by Thomas Robertson C.V.O.
Ry. Act.	Indian Railways Act, 1890.
*R*y. Finance Com. *R*eport.	*R*eport of the Indian Railway Finance *C*ommittee 1921. – Gazettee of India 17–12–1921.
Ry. Police Com. Report	*R*eport of the Indian *R*ailway Police Committee, 1921
*R*y. *R*eport.	Annual Report of Indian Railways.
Select Com. Report.	Report of the Parliamentary Select Committee on Indian Railways
Service Com. *R*eport.	*R*eport of the Royal Commission on the *C*ivil Services in India, 1924.
√Shah: Indian *T*rade.	K. T. Shah: Trade, Tariffs and Transport in India.
√Shah: Wealth of India.	K. T. Shah and K. J. Khambata: Wealth and Taxable Capacity of India.

Shore: Indian Affairs.	Frederick John Shore: Notes on Indian Affairs. 1837.
Smith: Weath of Nations.	Adam Smith: Wealth of Nations.
State Council Debates.	Report of the Indian Council of State Debates.
Store Com. Report.	Report of the Store Purchase Committee, 1920.
Tariff Board Report.	Report of the Indian Tariff Board [Steel Protection] 1924,
Tiwari: Indian Rys:	C. P. Tiwari Rai Sashib: Indian Railways. 1921.
Trade Review.	Review of the Trade of India 1922-23,
University Com. Report.	Report of the Calcutta University Commission, 1917-19
U. S. A's Ry. Act.	United States of America's Interstate Commerce Law-The Act to Ragulate commerce.
Voelcker: Indian Agriculture	Dr. Voelcker's Report on the Indian Agriculture 1889–93.
Williams: Ry. Economics.	S. C. Williams: The Economics of Railway Transport.



शुद्धि पत्र।

इस पुस्तक में प्रूफ संशोधन सम्बन्धी अनेक अशुद्धियाँ छुट गई हैं। रेफ और मात्राएं बहुत जगह नहीं उठी हैं। प्रेस के प्रेतों की गलतियां भी कुछ कम नहीं हैं। अनेक स्थानों पर (द्ध) की जगह द्व), 'ब' की जगह 'व', और 'व' की 'ब' छप गया है। हमने 'लिये' 'रुपये' 'चाहिये' 'इसलिये' आदि में 'ये' का उपयोग किया है, पर कहीं कहीं 'ए' हो गया है, इसी प्रकार कहीं कहीं 'ए' के स्थान में 'ये' हो गया है। इस प्रकार की अन्य अशुद्धियों को भी निम्न लिखित सूची में नहीं लिखा है।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	११	विप्लेषण	विश्लेषण
६	अन्तिम	शुद्धाशुद्धी	शुद्धाशुद्धि
१३	२६	दरिद्र	दारिद्र
१८	१६	करण	कारण
२२	७	शाक्ति	शक्ति
२३	१२	अन्यत्र	अन्यत्
,,	,,	यथोक्तं	यदुक्तं
२४	१	taStistics	Statistics
३७	१२	धोगत	द्योतक
६५	२०	है।	है *।
८१	१२	हुआ था ‡।	हुआ था §।
,,	१५	लिये †।	लिये ‡।
८४	१३	स्वथ्य-रक्षा	स्वास्थ्य-रक्षा
,,	१६	इंगलैंड	इंगलैंड
८५	४	था।	था *।
,,	,,	अविष्कार	आविष्कार
८६	१७	कारणों का	कारणों के

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
९९	२०	६९४	६८४
"	"	७१७॥	७०७॥
१०१	६	हुई थी ‡ ।	हुई थी † ।
"	८	भी है § ।	भी है ‡ ।
"	१०	नहीं है * ।	नहीं है § ।
१०३	१६	अन्तरगत	अन्तर्गत
११५	१३	उत्कृष्ट	उत्कट
११६	१३	पारलियामेंट्री	पार्लियामेंट्री
१२८	१३	आवश्यकाएं	आवश्यकताएं
१२९	३	विदेशी, शासन	विदेशी शासन
१३२	११	Alignment	Alignment ।
१३४	१०	आवश्कवता	आवश्यकता
"	१३	ऊंचे-बांध-टीले-	ऊंचे बांध—टीले—
१३६	१२	बहुत से-स्लीपर	बहुत से स्लीपर
१४३	८	कम्पनीयों	कम्पनियों
१४४	१६	Anstralia	Australia.
१४६	२०—२१	ऋण	ऋण
१५८	८	उदाहरणार्थ	उदाहरणार्थ
१६२	२४	स्वामी सरकार	स्वामी—सरकार
१६४	२	स्वीकर	स्वीकार
१६८	१५	मार्गसे-	मार्ग से—
१७०	१	जोड़गा	जोड़ना
१७७	१८	अवशम्भावी	अवश्यम्भावी
१८६	१८	अल	अल्प
१८९	४	पाराकाष्ठा	पराकाष्ठा
१९२	१८	व्यवस्थायक	व्यवस्थापक

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२००	१६	शिल्पकला	शिल्पकला
२०६	१२	तीर्थयात्रिओं	तीर्थयात्रियों
२१५	१७	कहते	करते
२१७	१	भाड़ालिया	कमभाड़ालिया
"	२०	कल्पना	कल्पना
२१६	१२	डिब्बे	डिब्बों
२२०	८	जाँयगी	जायँगी
२३५	६	अपतत्र	अतएव
"	१४	रेलवेकी	रेलवेके
"	२१	बनगए	बनगये
२३६	३	होती है।	होता है।
२४६	१४	उसके	उससे
२५१	५	जानने के	जानने की
"	१३	रेलोंकी	रेलोंके
२५६	२३	टेंडर	टेंडर—
२६६	४	Wmillam	William
२६६	१०	बहु	बहुत
"	१७	किन्तु यदि ऐसा	किन्तु ऐसा
२७५	१	खना	खान
२७६	११	डमोह	दमोह
२८३	अन्तिम	पर-	पर—
२६७	"	18.87	1887.
२६८	१७	मुकद्दमों	मुकदमों
३०१	७	कि लें प्रथम	कि प्रथम
"	"	इङ्गड	इङ्गलैंड
३११	१३	जिमता	जितना
३१८	५—६	पुनर्मिगम	पुनर्निर्गम

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३२०	१९	अन्तरजात	अन्तर्जात
"	२४	अर्थशात्र	अर्थशास्त्र
३२१	२६	*p603–4.	†p.603–4.
"	२७	† Banerjee	‡*Banerjea*
३२३	१३	उखड़तो	उखड़ती
३२५	१२	उन्नतावस्थ	उन्नतावस्था का
"	१३	उन्नतावस्थाक	उन्नतावस्था
३२७	१२	करने	करने के
"	अन्तिम	सहस्त्र	सहस्र
३६३	९	hnman	human
३६५	१६	पौंड ही !	पौंड ही *!
३६७	८	कलवित	कवलित
"	१४	पृथा	प्रथा
३७३	१०	रासायनिक	रसायनिक
३८०	३	कलवित	कवलित
३८३	१४	समभना	समभाना
३९०	२	भारतवासिओं	भारतवासियों
"	१७	द्रारिद्रता	दरिद्रता
४०५	४	सम्बन्ध–में	सम्बन्ध में
४१०	१०	कपित्थवत	कपित्थवत्

अधीन, अरब डाइरेक्टर, सिवा, आदि के स्थान में क्रमशः आधीन, अर्ब, डाईरेक्टर, सिवाय आदि भी हैं। पिछला प्रयोग भी होता है अतएव इन्हें ऊपरवाली सूची में नहीं लिखा है। और भी अनेक अशुद्धियां छुटगई हैं। अशुद्धियों की अधिकता के लिये हमें हार्दिक दुःख है।